प्रथम वर्ष बी. ए.

हिन्दी प्रश्न पत्र क्र. १

हिन्दी ऐच्छिक

मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई (आई. डी. ओ. एल.)के पाठ्यक्रमानुसार

© UNIVERSITY OF MUMBAI

डॉ. राजन वेळूकर
कुलगुरू,
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई.

डॉ. धनेश्वर हरिचंदन
प्राध्यापक-नि-संचालक
दूर एवं मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई.

कार्यक्रम समन्वयक :
एवं संपादक
डॉ. संध्या एस. गर्जे
समन्वयक हिन्दी
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई.

लेखक :
: डॉ. ए. एन. पाण्डेय
सेंट गोंसालो गार्सिया कॉलेज,
वसई, जिला - ठाणे

: डॉ. सुमनिका सेठी
सोफिया कॉलेज,
भुलाभाई देसाई रोड़, मुंबई - ४०००२६

: डॉ. शशि मिश्रा
एम. डी. कॉलेज,
परेल, मुंबई - ४०००१२

जुलै २०१५, प्रथम वर्ष बी.ए., हिन्दी प्रश्न पत्र क्र. १, हिन्दी ऐच्छिक

प्रकाशक : प्राध्यापक व संचालक, दूर एवं मुक्त अध्ययन संस्था,मुंबई विश्वविद्यालय,
विद्यानगरी, मुंबई-४०० ०९८.

अक्षर जुळणी : अश्विनी आर्टस्,
गुरुकृपा चाळ, एम्. सी. छगला मार्ग, बामणवाडा,
विलेपार्ले (पूर्व), मुंबई - ४०० ०९९.

प्रकाशन :

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	**कालजयी हिन्दी कहानियाँ - डॉ. रेखा सेठी, डॉ. रेखा उप्रेती**	**०१**
१.	कहानी का स्वरुप	०२
२.	कफन - प्रेमचंद	१०
३.	अपना अपना भाग्य - जेनेंद्र	२१
४.	गर्मियों के दिन	२९
५.अ	वापसी	३८
५.आ	दोपहर का भोजन	४६
६.अ	उमस	५५
६.आ	अपराध	६४
२.	**गद्यज्योति - डॉ. रामकिशोर शर्मा**	
७.अ	डायरी से	७२
७.आ	माँ भारती	७९
७.इ	धरती और धान	८३
८.अ	कुटज	८७
८.आ	गौरा गाय	९२
९.अ	राजर्षि का जीवन दर्शन	९७
९.आ	जहाँ आकाश नहीं दीखता	१०१
१०.अ	मातादीन चाँद पर	१०६
१०.आ	खेल	१११
११.अ	शनि : सबसे सुंदर ग्रह	११६
११.आ	हिमालय	१२०
३.	**सेवासदन - प्रेमचंद**	
१२.	सेवासदन	१२५
१३.	प्रश्नोत्तर - I	१३३
१४.	प्रश्नोत्तर - II	१३८
१५.	उपन्यास के प्रमुख पात्र	१४३
१६.	संदर्भ सहित व्याख्या	१४६

I

प्रथम वर्ष बी.ए.
हिन्दी प्रश्न पत्र क्र. १,
हिन्दी ऐच्छिक

१) कालजयी हिंदी कहानियाँ – डॉ. रेखा सेठी, डॉ. रेखा उप्रेती

पाठ्यक्रम हेतु निर्धारित कहानियाँ –

१. कफन - प्रेमचंद
२. अपना – अपना भाग्य - जेनेन्द्र
३. गर्मियों के दिन - कमलेश्वर
४. वापसी - उदा प्रियवंदा
५. दोपहर का भोजन - अमरकांत
६. उमस - ममता कालिया
७. अपराध - उदयप्रकाश

२) गद्यज्योति – संपादक; डॉ. रामकिशोर शर्मा (संकलित सभी रचनाएँ)

३) सेवासदन – प्रेमचंद,

प्रथम सत्र
'कालजयी हिंदी कहानियाँ'

यूनिट ०१	व्याख्यान १०-	कफन, अपना-अपना भाग्य, गर्मियों के दिन
यूनिट ०२	व्याख्यान ०८-	वापसी, दोपहर का भोजन
यूनिट ०३	व्याख्यान ०८-	उमस, अपराध गद्य ज्योति
यूनिट ०४	व्याख्यान १०-	'डायरी से', 'कुटज', 'गोरा गाय'
यूनिट ०५	व्याख्यान ०९-	माँ भारती, धरती और धान, राजर्षि का जीवन-दर्शन
यूनिट ०६	व्याख्यान १५-	प्रस्तुतीकरण, प्रकल्प, चर्चा, वाचन, लेखन तथा अन्य रचनात्मक कार्य तथा कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य

द्वितीय सत्र

'सेवासदन'

यूनिट ०१	व्याख्यान १०-	पाठ वाचन एवं व्याख्या (प्रकरण १ से २४ तक)
यूनिट ०२	व्याख्यान १०-	पाठ वाचन एवं व्याख्या (प्रकरण २५ से ४२ तक)
यूनिट ०३	व्याख्यान १०-	पाठालोचन एवं प्रश्न-चर्चा गद्य ज्योति

यूनिट ०४	व्याख्यान ०८-	जहाँ आकाश नहीं दिखाई देता, इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर, खेल
यूनिट ०५	व्याख्यान ०७-	शनि सबसे सुन्दर ग्रह, हिमालय
यूनिट ०६	व्याख्यान १५-	प्रस्तुतीकरण, प्रकल्प, चर्चा, वाचन, लेखन तथा अन्य रचनात्मक तथा कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य

आई. डी. ओ. एल. के विद्यार्थियों हेतु – कुल अंक १०० = समय तीन घंटे

प्रश्नपत्र का प्रारुप

प्रश्न १.	संदर्भ सहित व्याख्या	(तीनों पुस्तकों में से विकल्प सहित)	२७
प्रश्न २.	दिर्घोत्तरी प्रश्न	(तीनों पुस्तकों में से विकल्प सहित)	३०
प्रश्न ३.	संदर्भ सहित व्याख्या	(तीनों पुस्तकों से एक उत्तर अपेक्षित)	०८
प्रश्न ४.	सामान्य प्रश्न	(तीनों पुस्तकों से एक उत्तर अपेक्षित)	१०
प्रश्न ५.	टिप्पणियाँ	(तीनों पुस्तकों में से विकल्प सहित)	१५
प्रश्न ६.	लघुत्तरी प्रश्न (वस्तुनिष्ठ)	(तीनों पुस्तकों में से कूल -१०)	१०

❖❖❖❖

कालजयी हिन्दी कहानियाँ –
डॉ. रेखा सेठी, डॉ. रेखा उप्रेती

लेखक – डॉ. ए. एन. पाण्डेय

१

कहानी का स्वरूप

इकाई की रुपरेखा

१.१ हिंदी कहानी का स्वरूप
१.२ कहानी के तत्व
१.२.१ कथावस्तु
१.२.२ चरित्र चित्रण
१.२.३ संवाद योजना
१.२.४ देश काल- वातावरण
१.२.५ उद्देश्य
१.२.६ शैली और शिल्प
१.३ हिंदी कहानी का विकास
१.३.१ आरंभ काल
१.३.२ उत्थान काल
१.३.३ उत्कर्ष काल

१.१ हिंदी कहानी का स्वरूप

कहानी गद्य साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय रूप है। भारत में कथा-साहित्य की लम्बी और विकासमान परम्परा रही है। वेदों, उपनिषदों, बौद्धजातकों, पुराणों और महाभारत के अनेक प्रसंगों में विभिन्न कथाओं के सूत्र बिखरे हुए हैं। आज कहानी से अभिप्राय गद्य की विधा-विशेष से है जिसने बीसवी शताब्दी में अनेक मोड़ लिए है और जो वर्तमान साहित्य-रूपों में सबसे अधिक लोकप्रिय है। कथा-साहित्य में भी उपन्यास की अपेक्षा कहानी के पाठक अधिक होते हैं। आज के व्यस्त जीवन में बड़े-बड़े ग्रन्थों को पढ़ने के लिए मनुष्य के पास समय कहाँ है? इस समयाभाव में मनुष्य की रूचि को बढ़ाने वाली विधा कहानी ही मानी जा सकती है। इसकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यही है कि वह युग-जीवन के अधिक अनुकूल पड़ती है।

कहानी के सम्बन्ध में विद्वानों का मत अलग-अलग है। अमेरीकी लेखक एडगर एलन पो का कहना है कि, "यह एक प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है, जिसे एक बैठक में सुविधापूर्वक पढ़ा जा सके।" हडसन का कहना है कि, "कहानी में चरित्र की अभिव्यक्ति होती है।" ह्यू वाल

पोल ने कहानी में घटना और आकस्मिकता का होना आवश्यक माना है। जॉन फॉंस्टर का कहना है कि "कहानी असाधारण घटनाओं की वह परस्पर सम्बद्ध श्रृंखला है, जो एक चरम परिणति की ओर उन्मुख हो।" सामरसेट माम ने कथावस्तु की अपेक्षा शिल्प को अधिक महत्त्व दिया है। एलरी सेजविक महोदय ने कथा-नियोजन में आदि और अन्त को अधिक महत्त्व दिया है।

हिन्दी के प्रमुख समीक्षक श्री श्याम सुन्दरदास ने इसे नाटकीय आख्यान माना है तो गुलाब राय ने इसे स्वत:पूर्ण रचना मानकर परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। प्रेमचन्दजी ने उपन्यास और कहानी के अन्तर को समझाते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं जिसको जानना अतिआवश्यक है-"(कहानी) ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव जीवन का सम्पूर्ण बृहद रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का मिश्रण होता है। यह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल, बूटे सजे हुए हों; बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधूर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक लेखक के लिए कहानी एक चुनौती की तरह दरपेश होती है एक आलोचक के लिए भी वह उसी तरह सामने होती है। कहानी को पढ़ते हुए, उस पर सोचते हुए, उसके बारे में कुछ तय करते हुए बहुत सी चीजें नेपथ्य में होती हैं। यहाँ कहानी तो होती है, उसका लेखक तो होता ही है; इनके साथ वह ऐतिहासिक समय और यथार्थ भी होता है, जिसे आत्मसात करते कहानी चली है। आज कहानी वस्तु, दृष्टि और रचना तीनों स्तरों पर चुनौतियों का सामना करती दिखाई देती है। वर्तमान दौर में कहानी में बौद्धिकता बढ़ी है। अत: चिन्तन के स्तर पर कहानी पुष्ट हुई है। पहले की कहानी, घटना प्रधान होती थी, आज कहानी में घटनाओं के बिना भी कथ्य सुरक्षित रहता है। आज कथ्य का महत्त्व घटनाओं की अपेक्षा कहीं अधिक है। इन सारी बातों पर ध्यान देते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि हमें कहानी के तत्वों पर विचार करना चाहिए। कहानी के तत्वों के जानने के बाद ही प्रत्येक कहानियों का सही-सही विश्लेषण किया जा सकता है।

१.२ कहानी के तत्व

१.२.१ कथावस्तु

घटनाओं के तंतुजाल को कथावस्तु कहते हैं। कथावस्तु या कथानक कहानी का मुख्य ढांचा होता है। इस बीज को जीवन से ग्रहण कर लेखक अपनी प्रतिभा और कल्पना के बल पर उसे और भी रोचक बनाता है। साधारण पाठक का मन इसी के कारण कहानी में बँध जाता है। कहानी का विषय सामाजिक धार्मिक, मनोवैज्ञानिक आदि में से कोई भी हो सकता है। कहानी में केवल बाह्य घटनाएं ही नहीं बल्कि आन्तरिक घटनाएं भी महत्त्व रखती हैं। घटनाओं के घात प्रतिघात का आयोजन करते हुए लेखक व्यक्ति के मनोभावों को भी जानने का प्रयत्न करता है

इस लिए वह अन्तर्द्वन्द्व का भी सहारा लेता है। आज की कहानियों में अन्तर्द्वन्द्व को प्रर्याप्त महत्त्व दिया जा रहा है।

कहानी की कथा का विकास धीरे-धीरे होता है। इस कथा विकास की चार स्थितियाँ होती हैं-

(१) **आरम्भ :** कहानी के शीर्षक और आरम्भिक अनुच्छेद से ही कथा-सूत्रों का पता चल जाता है। कहानी के आरम्भ करने की अनेक विधियाँ हैं जैसे किसी पात्र के परिचय से, पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप से, वातावरण-विशेष चित्रण से आदि। कहानी का आरम्भ पाठक के मन में कौतुहल पैदा करता है और पाठक आगे की कहानी पढ़ने के लिए उत्सुक हो उठता है। अगर आरम्भ पाठक में जिज्ञासा पैदा कर दे तो आरम्भ सफल कहा जाएगा।

(२) **आरोह :** कहानी के आरम्भ में पात्रों तथा घटनाओं के बीच की सामान्य जानकारी के उपरान्त अवरोह की स्थिति होती है। इसके अन्तर्गत घटनाओं की सहजता और पात्रों के मनोविकास की ओर ध्यान दिया जाता है। कथावस्तु के प्रवाह की दृष्टि से यह स्थिति महत्त्वपूर्ण है।

(३) **चरम स्थिति :** कथानक के जिस स्थल द्वारा पालक के मन में कौतुहल अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाए, उसे चरम स्थिति कहते हैं। इसमें पाठक उत्सुकता आशा और आशंका के बीच उलझता हुआ कथानक के अन्तिम मोड़ के लिए लालायित हो उठता है।

(४) **अवरोह :** अवरोह या अन्त की महत्ता असंदिग्ध है क्योंकि कहानी के उद्देश्य अथवा मूलभाव का प्रतिफलन इसी के अन्तर्गत होता है। अगर कहानीकार इस ओर ध्यान न दें तो उसकी कहानी कमजोर पड़ जाएगी। कहानी के अवरोह में संक्षिप्तता और मार्मिकता का विशेष महत्त्व होता है।

१.२.२ चरित्र-चित्रण :

कहानी में चरित्र-चित्रण का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। कथा का विकास पात्रों के द्वारा ही होता है। कहानीकार पात्रों के माध्यम से ही अपने मनोभावों को व्यक्त करता है। चरित्र-चित्रण की कई प्रणालियाँ हैं। सबसे सामान्य प्रणाली है- लेखक द्वारा पात्र का प्रत्यक्ष वर्णन। कभी-कभी लेखक पात्रों की अच्छाई-बुराई न बताकर उसके क्रिया-कलाप के द्वारा तो कभी कथोपकथन द्वारा पात्रों के व्यक्तित्व का उद्घाटन करने का प्रयत्न करता है।

पात्रों की परस्पर तुलना, प्रासंगिक घटनाओं के माध्यम से चरित्र की व्यंजना, अन्तर्द्वन्द्व की अवतारणा आदि चरित्र-चित्रण की प्रचलित शैलियाँ हैं। पात्रों के व्यक्तित्व की संक्षिप्त स्पष्ट और संकेतात्मक अभिव्यक्ति कहानी का उल्लेखनीय गुण है।

१.२.३ संवाद योजना :

कथोपकथन कहानी का प्रमुख तत्व है। कथोपकथन में रोचकता, सजीवता, स्वाभाविकता का होना आवश्यक है। कथोपकथन की गरिमा के लिए उन्हें पात्र, वातावरण, स्थान और समय के अनुकूल रखा जाता है। संवादों में पात्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व तथा मनोभावों को प्रकट करने की शक्ति होनी चाहिए। संवाद संक्षिप्त हों, बड़े बड़े संवाद प्राय: बोझिल और कठिन लगने लगते हैं।

१.२.४ देश काल- वातावरण :

कहानी का कथानक और पात्र किसी न किसी देश और काल से सम्बन्धित रहते हैं। वातावरण कहानी को प्रभावोत्पादक बनाता है। वातावरण के चित्रण से कथात्मक रचनाओं में रसात्मकता और मनोवैज्ञानिक प्रभान्विता बढ़ जाती है। वातावरण के द्वाराही कहानीकार घटनाओं, प्राकृतिक-सौन्दर्य एवं पात्रों से सम्बद्ध स्थानों आदि का युगानुरूप चित्र प्रस्तुत करता है। कुछ लेखक कहानी का आरम्भ वातावरण के चित्रण से करते हैं जैसे जैनेन्द्र ने 'अपना-अपना भाग्य' में नैनीताल के सौन्दर्य के चित्रण से ही कहानी का आरम्भ किया है।

१.२.५ उद्देश्य :

आज कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन कराना ही नहीं है बल्कि पाठक को संदेश देना भी है।। इसलिए हर कहानी में कोई न कोई सन्देश अवश्य ही समाविष्ट रहता है। कहानीकार अपनी कहानी में जीवन के प्रति क्या दृष्टि रखता है उसका उल्लेख वह उद्देश्य के अन्तर्गत करता है। कहानी के जीवन की मार्मिक अनुभूतियों की सहज व्याख्या सोद्देश्य प्रस्तुत की जाती है। कहानी का उद्देश्य उपदेशात्मक नहीं बल्कि व्यवहारिक तथा जीवनोपयोगी होना चाहिए।

१.२.६ शैली और शिल्प

शैलीसे तात्पर्य लेखकद्वारा कथा वर्णन के लिए अपनाई गई विशिष्ट पद्धति से है। इस शैली से अलग शिल्प भी होता है, जो कहानी को प्रस्तुत करने के ढंग अथवा तकनीक के लिए व्यवहृत होता है। कहानी की अनेक शैलियाँ हो सकती हैं जैसे वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक, पत्रात्मक और डायरी शैली आदि। लेखक अपनी सुविधा के अनुसार इन शैलियों मे से किसी एक शैली को अपनाता है।

कला की दृष्टि से कहानी में सौन्दर्य का विधान शैली के माध्यम से ही होता है। शैली सौन्दर्य के लिए लेखक द्वारा अलंकार, लोकोक्ति, प्रतीक आदि उपकरणों से सहायता ली जाती है। कहानीकार कहानी के विषय के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। नयी कहानियों में फंतासी का प्रयोग बढ़ चढ़कर होने लगा है। उदयप्रकाश फंतासी और यथार्थ दोनों को एक-दूसरे में प्रक्षेपित करके जिस जादुई यथार्थ की निर्मिति करते हैं, वह वास्तव में उद्भुत है नयी कहानी दौर के बाद कहानी की भाषा में एक मुक्त-भाव लक्षित होता है, जिसकी परिणति अद्यतन भाषा के रूप में लक्षित होती है।

आज की कहानियां में कथ्य और शिल्प दोनों को महत्त्व दिया जाता है। इसके आधार पर भी कहानी की अच्छाई बुराई जाँची जाती है।

१.३ हिंदी कहानी का विकास

हिन्दी कहानी के विकास को समझने के लिए हमें पौराणिक आख्यानों के रचना-काल तक जान होगा। पुराणों की कहानियों में सामाजिक, काल्पनिक, ऐतिहासिक और शिक्षाप्रद विषयों का सुन्दर रीति से समावेश किया गया है। इसके बाद लिखी गई जातक-कथाओं में महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों की घटनाओं का वर्णन मिलता है। पचतंत्र की कहानियाँ तो आज तक प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त 'वृहत्कथा' 'शुक-सप्तति', 'वेतालपंचविंशति' में भी शिक्षाप्रद और मनोरंजक कथाओं के दर्शन होते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश में भी कहानियाँ विद्यमान हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी के विद्वानों के समक्ष प्रचुर परम्परागत कला साहित्य विद्यमान था और वे उससे प्रेरणा ले सकते थे। फिर भी हिन्दी कहानी का उद्‌भव पर्याप्त विलम्ब से हुआ। गद्य की अन्य विधाओं की भाँति कहानी का विकास भी आधुनिक युग में ही हुआ। कहानी के विकास के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ आलोचक कहानी का आरम्भ मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' और इंशाअल्ला खाँ की 'रानीकेतकी' की कहानी से मानते हैं। किन्तु इन कहानियों में आधुनिक कहानी के तत्वों का समावेश नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'राजा भोज का सपना' कहानी की रचना की लेकिन इस कहानी में चमत्कार, कल्पना और आदर्श की प्रधानता है, इसे आधुनिक कहानी की श्रेणी मे रखना उचित नहीं लगता। कुछ लोग हरिश्चन्द्र की 'एक अद्‌भुत और अपूर्व स्वप्न' को भी आधुनिक कहानी की पहली कहानी मानते हैं पर यह भी आधुनिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। अधिकांश विद्वानों ने किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमति' को हिन्दी की पहली कहानी मान्य की है। लेकिन इस पर भी विद्वानों में मत भेद है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हम हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं:-

१.३.१ आरंभ काल :

सन १९०० से १९१० तक जो हिन्दी कहानियाँ प्रकाश में आती हैं वे हैं- किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमति' (१९००) माधव प्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता' और 'टोकरी भर मिट्टी' (१९१०) रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (१९०३), गिरिजा दत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' (१९०६), बंगमहिला की 'दुलाईवाली' (१९०७), वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबन्द भाई' (१९०९), इनमें से 'इन्दुमति' पर यह आरोप किया जाता है कि यह कहानी मौलिक कहानी नहीं है इस पर शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' का प्रभाव है। लेकिन कथानक की समरसता, वातावरण का सजीव चित्रण और भाषा प्रवाह की दृष्टि से इस कहानी को हिन्दी की पहली कहानी माना जा सकता है।

उपरोक्त कहानियों से हिन्दी कहानी में शिल्प-विधान के प्रति जागरुकता के लक्षण दिखाई देने लगे; क्योंकि इसमें कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण आदि के सभी तत्वों के

समावेश की ओर ध्यान दिया गया है। इस काल में मौलिक कहानियों की अपेक्षा अनुवादों को ज्यादा बढावा मिला। बंगमहिला और पार्वतीनन्दन ने बंगला से, राधाकृष्ण दास ने संस्कृत से अनेक कहानियों का हिन्दी में अनुवादित किया।

१.३.२ द्वितीय उत्थान काल

इस काल को विकास काल भी कहा जाता है। इसका समय १९११ से १९४६ तक माना जाता है। सन १९११ में गुलेरी जी की 'सुखमय जीवन' और प्रसाद जी की 'ग्राम' और जी.पी. श्रीवास्तव की 'पिकनिक' कहानियों के प्रकाशन से हिन्दी में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इस युग के प्रमुख कहानीकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक; जयशंकर 'प्रसाद', चण्डीप्रसाद, हृदयेश, विनोदशंकर व्यास, रामशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र', यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि माने जाते हैं। इस युग की पत्रिकाओं– 'इन्दु', 'सरस्वती', 'सुधा', 'माधुरी', 'चाँद', 'कमला' अभ्युदय आदि में हिन्दी कहानियों को उपयुक्त स्थान प्राप्त हुआ। कहानी लेखन को एक नई गति मिली।

हिन्दी कहानी का यह द्वितीय उत्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस काल में बहुत सी मौलिक कहानियाँ सामने आई, जो हिन्दी कहानी साहित्य की स्थायी निधि बन गई। इस युग में भावमूलक और यथार्थवादी दो प्रकार की कहानियाँ लिखी गई। भावमूलक कहानियों के जनक प्रसाद और यथार्थवादी आदर्शोन्मुख कहानियों के प्रेमचन्द थे। प्रसाद जी की कहानियाँ भावमूलक हैं। उनके कथोपकथन कवित्वमय और हृदय में चुभन वाले है। उनमें प्राचीन समय की संस्कृति और वातावरण का सफल मिश्रण हुआ है। प्रसाद जीकी कहानियों का शिल्प-विधान सर्वथा मौलिक है। उसका प्रारम्भ इतना मनोवैज्ञानिक तथा नाटकीय होता है कि पाठक को वे स्वत: ही आकर्षित कर लेती हैं। उनका अन्त भी प्रभावशाली और अप्रत्याशित होता है कि पाठक का मन झकझोर उठता है और वह एक समस्या पुन: सुलझाने लगता है। प्रसादजी की कहानियों ने हिन्दी को एक नई दिशा प्रदान की और इस प्रकार की कहानियों की एक नवीन धाराही प्रवाहित हो चली जिसमें राय कृष्णदास, वाचस्पति पाठक आदि प्रमुख हैं।

जिस प्रकार प्रेमचन्द उपन्यास साहित्य के सम्राट हैं उसी प्रकार हिन्दी कहानी के भी सम्राट माने जा सकते हैं। हिन्दी कहानी के विकास में इनका प्रमुख स्थान है। पहली बार प्रेमचंदने हिन्दी कहानी को सामाजिकता से जोड़कर देखने का प्रयत्न किया। इनकी कहानियां 'मानसरोवर' के नाम से आठ भागों में प्रकाशित हैं, जिसमें भारतीय जन-जीवन की समस्त आशाओं आकांक्षाओ और विसंगतियों का दर्शन किया जा सकता है।

प्रेमचन्द-युग के अन्य कहानीकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा कौर्शिक ने आदर्शवादी दृष्टिकोण से सामाजिक और पारिवारिक कहानियों की रचना की है। इनकी कहानियों में जहाँ प्रेमचन्द्र जैसी सरल व्यवहारिक भाषा मिलती है, वहाँ हृदयेश की प्रवृत्ति प्रसाद की संस्कृत-निष्ठता और कवित्वपूर्ण शैली की ओर है। विनोद शंकर व्यास की कहानियों में प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानी कला का समन्वय मिलता है। इसके विपरीत राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानियों में भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। इनकी कल्पनामूलक यथार्थवादी कहानी 'कानों में कंगना' (१९१६) की गणना हिन्दी की श्रेष्ठतम कहानियों में की जाती है।

इसी समय सुदर्शन ने प्रेमचंद और कौशिक की भॉति सामाजिक तथा पारिवारिक कहानियों की रचना की, जिसमें आदर्शवादी मनोवृत्ति पर अधिक बल, दिया गया। इनकी कहानियाँ 'सुदर्शन-सुमन', 'सुदर्शन-सुधा', 'तीर्थयात्रा', 'सुप्रभात' आदि संग्रहों में संकलित हैं। 'चतुरसेन शास्त्री' ने सामाजिक कहानियों के अतिरिक्त ऐतिहासिक कहानियों की भी रचना की जिनमें 'भिक्षुराज' तथा 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' विशेष प्रसिद्ध है। निराला की कहानियां भी इसी काल के अन्तर्गत आती हैं जिसमें 'सुकुल की बीवी', 'सखी', 'चतुरी चमार' लिली प्रमुख हैं।

विकासकाल के अधिकांश कहानीकार प्रेमचन्द की, शैली से प्रभावित रहे हैं। सियाराम शरण की कहानियों में मनोवैज्ञानिक यथार्थ की पृष्ठभूमि में आदर्शवादी जीवनदृष्टि पर अधिक ध्यान दिया गया है। वृन्दावनलाल ने ऐतिहासिक और सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानियाँ भी प्रेमचन्द की प्रभाव-परम्परा में आती हैं। दूसरी और 'उग्र' और यशपाल की कहानियाँ में सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को उघाड़ा गया है।

प्रेमचन्द के पश्चात जैनैन्द्र का नाम कहानी क्षेत्रमें विशेष रूप से लिया जाता है। इन्होनें कहानी को मनोविज्ञान से जोड़कर एक नयी दिशा दी। इनकी कहानियों में व्यक्ति की भावनाओं को स्थान मिला है। इसी प्रकार के कहानीकार इलाचन्द्र जोशी भी हैं। इनकी कहानियाँ 'छाया', 'आहुति', 'दिवाली' आदि में संकलित हैं। ये फ्रायड के सिद्धान्त से प्रभावित हैं। अज्ञेय भी मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में आते हैं। इन पर भी फ़ायड के सिद्धान्त का प्रभाव है। ये व्यक्तिवाद से प्रेरित दिखाई देते हैं। इनके कहानी संग्रह-'कोठारी की बात', 'विपथगा', 'कड़ियाँ', 'जयदोल', 'ये तेरे प्रतिरूप' और 'अमर बल्लरी' हैं। इस काल में कुछ प्रगतिवादी कहानियाँ भी लिखी गई, जिसमें यशपाल, रागेय राघव, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, पहाड़ी की कहानियाँ प्रमुख हैं।

विकास काल की अन्य उपलब्धियों में जी. पी. श्रीवास्तव और अन्नपूर्णनन्द की हास्यरस की कहानियाँ तथा महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, उषा देवी मित्रा होमवती देवी, कमला चौधरी आदि की पारिवारिक की कहानियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विकास काल में समाज, राजनीति इतिहास, मनोविज्ञान आदि से सम्बद्ध विविध प्रकार की कहानियाँ लिखी गई। इनमें या तो आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रमुख है अथवा यथार्थ का आदर्शोन्मुख चित्रण किया गया है। मनोविज्ञान, दर्शन आदि का स्वर भी इस युग की कहानियों में मुखारित हुआ है।

१.३.३ उत्कर्ष काल :

इसका समय १९४७ से अब तक माना जाता है। प्रेमचंद युग में कहानी-कला प्रायः सभी दिशाओं में विकसित हो चुकी थी तथापि उत्कर्ष काल में कुछ प्रवृत्तियाँ उभरीं। आंचलिक कहानी और नई कहानी इस दृष्टि से विशेषतः उल्लेखनीय हैं। आंचलिक कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, रागेय राघव और राजेन्द्र अवस्थी प्रमुख हैं। इस युग की दूसरी उल्लेखनीय प्रवृत्ति नई कहानी है, जिसका उदय सन १९५५ के लगभग हुआ। वर्तमान कहानीकार देशकाल की सीमा में आबद्ध रहकर समग्र विश्व की घटनाओं से प्रभावित

हैं। समकालीन जीवन की उलझनों में व्यक्ति की कुठाओं और समस्याओं का अंकन इनका मूल उद्देश्य है। ऐसे कहानीकार मोहन राकेश, कमलेश्वर राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, मन्नू भण्डारी, आदि हैं जो विषय की प्रमाणिकता और कथा शिल्प पर अधिक जोर देते हैं। नई कहानी ने अपने को पूर्ववर्ती कहानी को जिन जड़ताओं से मुक्त किया था १९६२-६४ तक आते-आते वह स्वयं कुछ बंधे बंधाये फार्मुलों नुस्खों की गुंजलक में पड़कर चुकने लगती है। १९६४-६५ के बाद नये कहानीकारों ने कहानी को एक नया तेवर प्रदान किया उसे समकालीन कहानी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। समकालीन कहानी नई कहानी से जिन भूमियों पर अलग हुई, उनकी चर्चा विभिन्न कहानीकारों और कथा समीक्षकों द्वारा बड़े-बड़े दावों के साथ की गई। नई कहानी और समकालीन कहानी के मध्य पहचान के बिंदु इतने सुस्पष्ट नही थे जितने नई कहानी और पूर्ववर्ती कहानी के बीच । फिर भी समकालीन कहानी में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें अलग पहचान देती हैं वे हैं- यथार्थ की ओर नया प्रयाण, रचना-प्रक्रिया का मौलिक अन्तर, परिवेश के प्रति अतिशय जागरूकता, नई मूल्य दृष्टि, सम्बन्धों के परम्परा गत रूप का नकार, नया नैतिक-बोध, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में दृष्टि का बदलाव, कहानी में जीवन के आर्थिक पक्ष की प्रधानता व्यवस्था के प्रति रोष, विद्रोही स्वर और दुर्दम जिजीविषा, कहानी काराजनीतिक परिप्रेक्ष्य, नगर और महानगर को मुख्य कथा भूमियाँ, भाषा की नई तराश और समृद्ध शिल्प आदि।

नई कहानी और उसके बाद के कहानी आन्दोलनों में महिला लेखिकाओं ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मन्नू भंण्डारी, कृष्णा सोबती, शिवानी, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, मेहरुन्निसा, चित्रा मुद्गल, नासिरा, मृदुला गर्ग, मैत्रीय पुष्पा, चन्द्रकान्ता आदि अनेक लेखिकाओं ने नारी जीवन को केन्द्र बनाकर समकालीन समाज के जटिल यथार्थ को अभिव्यक्त किया। नारी को एक अलग पहचान दी।

नई कहानी के बाद हिन्दी कहानी नई दिशाओं में विकसित होती रही। हिन्दी कहानी को कई आन्दोलनों से गुजरना पड़ा है जैसे अकहानी, समान्तर कहानी, सचेतन कहानी, जनवादी कहानी आदि। उत्कर्ष काल में इन आन्दोलनों को भी समेटना आवश्यक है।

बदलते समय के साथ समस्याएं भी बदल रही हैं। राजनीति, व्यवस्था के सभी रूपों पर हावी होकर उसे भीतर से खोखला कर रही हैं। भूमंडलीकरण के नाम पर पूंजीवाद का नया संकट सामने आ रहा है। मीडिया की ताकत का बोलबाला है और उसके सामने व्यक्ति अस्मिता संकट ग्रस्त हो रही है इन सभी बातों का प्रभाव आज के कहानीकारों पर पड़ता दिखाई देतां है। ऐसे कहानीकार हैं उदय प्रकाश, अब्दुल्लाह, शिवमूर्ति, सृजय, संजीव, संजय खाती, सतीश जमाली, धीरेन्द्र आस्थाना, स्वयं प्रकाश, अरुण प्रकाश, अलका सरावगी, ओमप्रकाश बाल्मिकि आदि। इस प्रकार हिन्दी कहानीआज भी कथ्य और शिल्प के नए प्रतिमान रचते हुए विकास की अनेक दिशाओं की ओर उन्मुख है।

२

कफ़न - प्रेमचंद

इकाई की रुपरेखा

२.० रूपरेखा
२.१ प्रेमचंद : जीवन परिचय और कृतियाँ
२.२ कफ़न और प्रेमचंद
२.३ कफ़नः कथावस्तु
२.४ कफ़न कहानी की चारित्रिक विशेषताएँ
२.५ कफ़न में देशकाल, परिस्थिति और वातावरण
२.६ कफ़न कहानी का उद्देश्य
२.७ संदर्भ सहित व्याख्या
२.८ संदर्भ सहित व्याख्या के लिए अन्य अवतरण
२.९ बोधप्रश्न
२.१० लघूत्तरी प्रश्न
२.११ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

२.१ प्रेमचंद : जीवन परिचय और कृतियाँ

जनसामान्य के प्रबल समर्थक श्री प्रेमचन्दजीका जन्म २१ जुलाई १८८० में बनारस के पास लहमी गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम अजायबलाल और माँ का नाम आनंदी देवी था। प्रेमचंदजी के घर का नाम धनपतराय था, उनके ताऊ उन्हें प्यार से नवाब कहकर बुलाते थे। इनका पारिवारिक जीवन अभावों से परिपूर्ण था। विपत्ति और उससे संघर्ष की ताकत उन्हें जीवन से मिली। वे आजीवन जूझते रहे। वे निराश कहीं भी नहीं लगते। उन्होंने जीवन को अधिक निकट से देखा और अपने संपूर्ण साहित्य में जातिहीन, वर्गविहीन, शोषण-रहित आदर्श समाज का चित्र अंकित किया। कला के नाम पर अन्य साहित्यकारों की भाँति उन्होंने अपने साहित्य में सस्ते शृंगार का चित्रण नहीं किया बल्कि उन्होंने जो देखा, जो सुना, जो भोगा, जो अनुभव किया, उसी को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इसीलिए प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य अपने युग की उपज कहा जाता है। वह समसामयिक परिस्थितियों से जहाँ प्रेरित है, वहीं उन्हें प्रभावित करने में भी पीछे नहीं है।

जैसी प्रेमचन्द की शैली है वैसे ही इनका व्यक्तित्व देखने को मिलता है। वे बहुत सीधे-सादे व्यक्ति थे। उनका रहन-सहन तौरतरीका गाँव में रहने वालों जैसा था। हिन्दी साहित्य में शोषितों और पद दलितों, गरीबों और ग्रामीण किसानों का इतना प्रबल पक्षधर आजतक कोई नहीं हुआ । उनके सम्पूर्ण साहित्य में गाँव की मिट्टी की सुंगन्ध समाहित है। उनका साहित्य ग्रामीण जीवन का दस्तावेज है। इन्होंने उनके दु:खों का विशाद वर्णन प्रस्तुतकर उनका मार्ग प्रशस्त किया। ये आदर्शोन्मुखयथार्थवादी साहित्यकार माने जाते हैं, लेकिन जब हम इनके आगे की साहित्यिक-यात्रा का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि वे अपने पूर्व निर्मित जमीन को नितरन्तर तोड़ते तथा उसमें से नई सम्भावनाओं को खोजते दिखाई देते हैं। जीवन की कडुवाहट ने प्रेमचंद की दृष्टि को यथार्थवादी बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रेमचंद रचना-फलक व्यापक है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक आदि विधाओं पर अपनी कलम चलाई। उपन्यास साहित्य के तो वे सम्राट कहे जाते हैं। ग्रामीण जीवन पर आधारित उनका उपन्यास 'गोदान' न केवल हिन्दी साहित्य का वरन विश्व साहित्य का अपूर्व धरोहर है। 'गोदान' के अतिरिक्त, 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

यथार्थ को ज्यादा सहज और रोचक ढंग से पाठक तक पहुँचाने के लिए प्रेमचन्दजी ने 'संग्राम', 'कर्बला और प्रेम की बेदी' जैसे नाटक भी लिखे। 'जमाना', 'माधुरी', 'जागरण' और हंस पत्रिकाओं का कुशल सम्पादन कर पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपनी योग्यता का परिचय इन्होंने दिया।

प्रेमचन्द और उनकी कहानियाँ :

प्रेमचन्दजी केवल उपन्यास साहित्य के ही सम्राट नहीं है बल्कि कहानी के क्षेत्र में भी वे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्होंने हिन्दी कहानी को शैशव से प्रौढावस्था तक पहुँचाया। १९१९ तक प्रेमचन्दजी बराबर उर्दू कहानियाँ लिखते रहे। १९०८ में उनका पहला कहानी संग्रह 'सोजेवतन' (उर्दू) में छपा जो प्रबल राष्ट्रीयता की भावना से युक्त होने के कारण जब्त कर लिया गया। हिन्दी कहानी के क्षेत्र प्रेमचन्द का पदार्पण १९१६ से हुआ। प्रेमचन्द की आरम्भिक कहानियाँ 'सप्त सरोज' में संग्रहीत हैं और इसके पश्चात हिन्दी कहानी साहित्य को इन्होंने प्राय: ३०० कहानियाँ प्रदान की।

प्रेमचन्द की कहानियाँ 'मानरोवर' के ८ भागों के अन्तर्गत प्रकाशित हैं। इन कहानियों में कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो विवादों से रहित स्वस्थ परम्परा का प्रतीक मानी जाती हैं जैसे 'बाप की बीमारी', 'शंखनाद', 'पंचपरमेश्वर', 'शतरंज का खिलाड़ी', 'दार्शनिक का प्रेम', 'राजाहरदौल' और 'बड़े घर की बेटी' आदि पर कुछ कहानियों को विवादों से जोड़ दिया जाता है। इनमें 'कफन', 'पूस की रात', 'सवासेर गेहूँ' आदि कहानियाँ आती हैं। 'कफन' कहानी प्रेमचंद के जीवन की आन्तिम कहानी मानी जाती है।

२.२ कफ़न और प्रेमचंद

कफन कहानी समाज की खोरवली आदर्शवादिता से मोहभंग की कहानी है। यहाँ प्रेमचन्द जमीनी हकीकत से सीधे टकराते दिखाई देते हैं। यह कहानी जब १९३६ के उत्तरार्द्ध में 'चाँद' में प्रकाशित हुई तो पूरा साहित्यिक जगत चौक पड़ा। प्रगतिशील लेखकों ने इस कहानी को सर्वश्रेष्ठ कहानी और इस घटना को प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन में क्रान्तिकारी मोड़ बताया। 'कफन' में प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुखता की परत झड़ गयी है। यहाँ उनका नग्न यथार्थ साकार होता दिखाई देता है। यह कहानी प्रेमचन्द के बदलते तेवर का प्रतीक है। प्रेमचन्द लीक के फकीर नहीं थे। वे समय और परिस्थिति के धड़कन को समझते थे और समय-समय पर अपने साहित्य के माध्यम से अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते थे। अपने चारों ओर के विशाल समाज की समस्याओं को उनके कठोर, क्रूर और कुरूपतम् यथार्थ के साथ पेश करना, उनकी तह में जाकर उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उनसे उत्पन्न उनके जटिल चरित्रों को आत्मसातकर एक जीवन दृष्टि के साथ पेश करना प्रेमचन्द अपने लेखन का मूल बिन्दु मानते थे। यही कारण है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ ह्रदय परिवर्तनवादी दौर से आरम्भ होकर 'कफन' में अति यथार्थवाद का रूप धारण करके क्रान्ति का संदेश देतीहैं।

प्रेमचन्द की 'कफन' कहानी शोषणवादी व्यवस्था और हमारे धार्मिक अडम्बरों पर करारा व्यंग्य करती है। प्रेमचन्द ने 'कफन' कहानी यह दिखाने के लिए लिखी थी कि श्रम के शोषण पर आधारित वर्तमान समाज ही श्रम से जी चुराने वाले घीसू और माधव पैदा करता है; जो धार्मिक मान्यताओं की अवहेलना करके कफन के पैसों से शराब पीते हैं और इस निष्ठुर समाज पर व्यंग्य करते हैं, ''जो मनुष्य को जिन्दगी में तो भूखा नंगा रखता है, लेकिन मरने पर 'कफन' जरूर देता है।''

२.३ 'कफन' की कथावस्तु

कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है कि झोपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों बुझे अलाव के सामने बैठे हैं। भीतर माधव की पत्नी बुधिया प्रसव-पीड़ा से कराह रही है लेकिन दोनों में से कोई भी उठकर उसकी सहायता के लिए नहीं जाता क्योंकि डर है कि अगर वह चला गया तो दूसरा (घीसू) आलुओं का ज्यादा भाग न खा जाए।

जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डुबी हुई, सारा गाँव अन्धकार में लय हो गया था। जब धीसू नि:संग भाव से कहता है कि वह बचेगी नहीं तो माधव चिढ़कर उत्तर देता है कि ''मरना है तो जल्दी क्यों नहीं मर जाती देखकर क्या करूँ? '' जिस औरत ने घरको एक व्यवस्था दी थी, इन दोनों कामचोरों के पेट भरती थी और आज ये दोनों इस इन्तजार में हैं कि वह मर जाये, तो आराम से सोएं। आकाशवृत्ति पर जिंदा रहने वाले बाप-बेटे के लिए भुने हुए आलुओं की कीमत उस मरती हुई औरत से ज्यादा है। हलक और तालू जल जाने की चिन्ता किए बिना जिस तेजी से वे गर्म आलू खा रहे हैं उससे उनकी मारक गरीबी का अनुमान सहज ही हो जाता है। घीसू को बीस साल पहले हुई ठाकुर की बारात याद आती है उसके बाद उसे वैसा

पेट-भर खाना नहीं मिला। माधव उस पूरी, चटनी, रायता, रसेदार तरकारी, मिठाई की केवल कल्पना कर सकता है। वह अपने पिता घीसू से पूछ बैठता है कि ''अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।'' घीसू कहता है कि, ''अब कोई क्या खिला एगा? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो, पूछो गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे? बटोरने में तो कमी नहीं है। हॉ खर्च में किफायत सूझती हैं। '' इस प्रकार बातें करते-करते आलू खाकर दोनों अलाव के सामने धोती ओढ़कर पाँव पेट में डाले सो जाते हैं और सुबह तक बुधिया परलोक सिधार जाती है।

बुधिया के मर जाने पर दोनों जोर-जोर से छाती पीट-पीटकर रोने लगते हैं। पड़ोसवाले रोना-धोना सुनकर इकत्रित हो जाते हैं और उन दोनों को समझाने लगते हैं।

''ज्यादा रोने-पीटने का अवसर नहीं था। कफन और लकड़ी की फिक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले से मांस। घीसू अपने कॉइयाँपन का परिचय देते हुए गाँव के जमींदार, बनिये, महाजनों से बुधिया के कफन के लिए पाँच रूपये इकड्ठे कर लेता है। जब वे दोनों कफन खरीदने के लिए बाजार जाते हैं तो किसी अनजानी प्रेरणा से उनके पैर शराबखाने की ओर मुड़ जाते हैं। वहाँ वे कफन के पैसे से जीवन-भर की साध पूरी करते हैं। भरपेट भोजन करते हैं। शराब पीते हैं और बुधिया को दुआएं देते हैं। अपने भोजन की तृप्ति से ही वे दोनों मृतक की सद्गति की कल्पना कर लेते हैं। अपनी उम्र के अनुरूप घीसू ज्यादा समझदार है। उसे मालूम है कि लोग फिर कफ़न की व्यवस्था करेंगे भले ही इस बार रूपया उनके हाथ में न आवे। नशे की हालत में माधव जब पत्नी के अथाह दु:ख भोगने की बात सोचकर रोने लगता है तो घीसू उसे चुप कराता है- "हमारे परम्परागत ज्ञान के सहारे- कि मर कर वह मुक्त हो गई है और इस जंजाल से छूट गई है।" नशे में नाचते-गाते, उछलते-कूदते, सब ओर से बेखबर और मदमस्त, वे वहीं गिर कर ढेर हो जाते हैं। इस प्रकार कहानी का अन्त होता है। कहानी में गतिशीलता है। इसे कथावस्तु की दृष्टि से एक सफल कहानी कह सकते हैं।

२.४ 'कफ़न' कहानी के पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ

प्रत्येक साहित्यकार अपने विचारों और सिद्धान्तो के अनुरूप अपने साहित्य में पात्रों की सृष्टि करता है। प्रेमचन्द इसके अपवाद कैसे हो सकते हैं? उन्होंने 'कफ़न' में अपने पात्रोंको एक निश्चित उद्देश्य के साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया है। प्रारम्भिक काल की इनकी कहानियों के पात्र सीधे सरल सजीव लगते हैं लेकिन जैसे-जैसे इनकी कहानियों के तेवर बदलते गये वैसे-वैसे प्रेमचन्द के पात्र भी जटिल और क्रूर अमानीय रूप धारण करते हुए भी गहरी मानवीय संवेदना भरते दिखाई देते हैं। 'कफन' कहानी इसका उदाहरण है। कफन की एक मात्र नारी नारी पात्र बुधिया है जिसका पति माधव और ससुर घीसू है। कहानी का आरम्भ इसकी प्रसव वेदना से होती है और अन्त भी कहानी की, इसके 'कफन' से ही होती है। बुधिया जब घीसू और माधव के जीवन में, एक बहू और पत्नी के रूप में प्रवेश करती है तो देखती है कि घीसू और माधव का जीवन अस्त-व्यस्त जीवन है। उनके फटेहाल जिन्दगी को बदलने की वह पूर्ण कोशिश करती है। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर-भर आटे का इन्तजाम कर दोनों बे-

गैरतो का दोजख भरने लगती है। बुधिया उनके अधेरे जीवन में एक ज्योति पुंज बनकर आती है जो जिन्दा रहने पर उन्हें सुख देती है और मरने के बाद भी उनके जीवन की साध पूरी करती है, इसीलिए शराब के नशे में धुत वे (धीसू माधव) आशीर्वाद देते हैं कि ''वह बैकुंठ की रानी बनेगी।'' इस प्रकार कफन कहानी में बुधिया एक आदर्श गृहणी के रूप में दिखाई देती है।

प्रेमचन्द के चरित्र सृष्टि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे एक ही साथ व्यक्ति और वर्ग दोनों को उपस्थित करते हैं लेकिन यह आरोप निरर्थक, है, कि उनके चरित्र 'व्यक्ति' कम टाईप अधिक हैं। प्रेम चन्द ने वर्ग के प्रतिनिधियों की वैयक्तिक पहचान रखकर प्रस्तुत किया है। 'व्यक्ति' और टाईप में विरोधाभास नहीं है। असल में हर व्यक्ति में टाइप के कम अधिक तत्व होते हैं, और चरित्र एक ही साथ 'टाईप' होकर भी व्यक्ति के रूप में उभर सकता है । इस प्रकार की विशेषताएं प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों में ढूढ़ी जा सकती हैं। प्रेमचन्द्र ने स्वयं पात्रों का परिचय देने के बजाय उनके कार्य-कलापों को अधिक मुखर होने दिया है।

जिससे उनके सीधे लगते पात्र भी कहीं टेढ़े मेंढे लगने लगते हैं। जैसे 'कफन' कहानी में घीसू और माधव दालभात में मुसरचन्द की तरह खडे हैं। देखने में वे आलसी, अकर्मण्य, कामचोर, भूख-परस्त लगते हैं। चार-पाँच फाके हो जाने के बाद ही पेड़ से लकड़ियाँ तोड़ते हैं। उनके दिल में जैसे मनुष्यता मर चुकी है। प्रेम, दया, करुणा, आत्मसम्मान, औरत की मर्यादा आदि समस्त गुण जैसे उनके अन्दर से खत्म हो गये हैं। झोपड़ी के अन्दर बुधिया दम तोड़ रही है लेकिन इनका दिल नहीं पिघलता, बड़े मजे से बैठकर गरम-गरम; आलुओं को निगलते हैं। बुधिया से बढ़कर उनके लिए आलू की कीमत ज्यादा है। माधव जैसा पात्र अपनी पत्नी को देखने के लिए इसलिए नहीं जाता क्योंकि उसे लगता कि अगर वह प्रसव वेदना से तड़पती बुधिया के पास चला जायेगा तो उसका बाप घीसू सभी भूना हुआ आलू खा जाएगा। दोनों यही सोचते हैं कि बुधिया कितनी जल्दी मरे ताकि वे आराम से सो सकें। ऐसा लगता है कि उनका ह्रदय-ह्रदय नहीं बल्कि पत्थर बन गया है। उनके लिए सम्पूर्ण विश्व का ऐश्वर्य और वैभव सम्पूर्ण सभ्यता और संस्कृति एक सूखी रोटी बन गई है। वे केवल इसे निगलना जानते हैं। घीसू को साठ वर्ष की लम्बी जिन्दगी की सबसे बड़ी और ताजी याद अगर कोई है तो वह बीस वर्ष पहिले ठाकुर की बारात। ठाकुर की बारात की पुरियों, मिठाइयों और कचौरियों की भीनी-भीनी सुगन्ध अब भी घीसू की नाक में महक रही है। जिन्दगी में पहली बार उसको ऐसा भोजन भर पेट मिला था। माधव बेचारा सुनकर आनन्द लेता है। उसे तो यह भी नसीब नहीं हुआ। भर पेट भोजन ही उनकी सबसे सुखद-स्मृति है। जो साध बाकी थी वह बुधिया के कफन के लिए इकट्ठे पाँच रूपयों ने पुरी कर दी। उन दोनों ने उससे शराब, पुरियों का भरपेट रसास्वादन किया और उसे ह्रदय से आशीर्वाद दिया।

कहानी के अन्त में शराब के नशे में नाचते घीसू और माधव यह प्रश्न अवश्य खड़ा करते हैं कि वे नायक हैं या खल नायक? क्या वे इस सभ्य समाज में मानवीयता के नाम पर कलंक हैं? वास्तव में वे न तो नायक हैं न तो खलनायक हैं वै मुखौटे लगाने वाले शोषक, पूंजीपतियों और धार्मिक आडम्बरों के शुभचिन्तक पण्डितों और पुरोहितों की पोल खोलने वाले पात्र हैं। ये विषमता-ग्रस्त समाज में अन्तहीन गरीबी की जिन्दगी जीने वाले समाज के तथाकथित आदर्श मानवीय मूल्यों के विध्वंस के प्रतीक हैं। इन दोनों की अकर्मण्यता एक प्रकार का विद्रोह है, उस समाज के विरुद्ध जो बाहर से लगे मुखौटों के अन्दर अत्यन्त क्रूर और अमानवीय रूप छिपाये बैठे हैं।

२.५ 'कफन' देशकाल, परिस्थिति और वातावरण

'कफन' कहानी में देशकाल और परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। अगर 'कफन' कहानी के समाज और अर्थशास्त्र का अध्ययन करे तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय जनता उस समय साम्राज्यवाद के जुए के नीचे पिस रही थी। उस साम्राज्यवाद के प्रमुख दलाल, पूंजीपति, मिल मालिक, जमींदार और हमारे धार्मिक पुरोहित पंडे, कठमुल्ले थे जो किसानों, मजदूरों और जनसामान्य का खुलकर शोषण करने में लगे थे। इसी लिए प्रेमचन्द के जीवन काल में ही देश के भीतर लडाकू मजदूर दल पनपने लग गया था। सन १९२८ में मुंबई के कपड़ा-मजदूरों की, हड़ताल छह महीने तक चली थी। किन्तु इस तरफ ध्यान नहीं दिया गया। रूस की क्रांति का प्रभाव भारतीय राजनीति पर भी दिखाई देने लगा था। १९३६ में प्रेमचन्द जी प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष बने और अपने अध्यक्षी भाषण में उन्होंने कहा कि सच्चा साहित्य वही है जो गरीबों, पददलितों, मजदूरों, किसानों की वकालत करे। शोषक वर्ग तथा देशी शासक इसी वर्ग से भयभीत थे। इसी वर्ग की संगठित चेतना द्वारा ही जागरूक मजदूर वर्ग के नेतृत्व में देश के भीतर क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकना सम्भव था। इसीलिए इसी वर्गका सबसे अधिक शोषण और दमन क्रिया गया। युगों से सामन्तवाद अपनी जंगली, अमानुषिक जुल्म और ताकत से इनको बन्धनों में जकड़े रहा है। एक तरफ सामन्तवाद अपने दरोगे, पटवारी, भाँति-भाँति के कानून और लठैतों के बल पर इन्हें कब्जे में रखता है और दूसरी तरफ अपने पुजारियों और धर्म उपदेशकों द्वारा उन्हें भरमाये रखता है। युगों-युगों से शोषकों का यही तरीका रहा। इन शोषकों के कारण किसान, मजदूर और सामान्य भारतीय जनता की हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। लोग हताशा और उदासी में जीने के लिए मजबूर हो रहे ते। रोटी ही उनकी संस्कृति बनने लगी थी। मजदूर किसान, जनसामान्य की मनोवृत्ति बदलने लगी थी। कुछ लोग घीसू माधव की तरह सोचने लगे थे कि करोंगे तो भी भूखे मरोगे इससे अच्छा है शारीरिक श्रम से बचा जाय। कफन में घीसू माधव की अकर्मण्यता का कारण आनुवंशिक नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था है। इस व्यवस्था में अकर्मण्यता और भूख में कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्हीं के गाँव में उनसे बढ़कर अकर्मण्य हैं, किन्तु वे फटेहाल नहीं बल्कि गाँव के जमींदार हैं-मालिक हैं। जिनके पास हजारों की सम्पत्ति है। ये भी समाज के किसी उपयोगी कार्य में हाथ नहीं बँटाते, और घीसू माधव की अकर्मण्यता भी किसी दूसरों को हानि नहीं पहुँचाती। लेकिन दूसरी ओर जमींदारों की अकर्मण्यता को जुटाने के लिए-कोटि-कोटि किसानों को अथक परिश्रम करना पड़ता है। कफन में व्यक्त समाज व्यवस्था ही कुछ ऐसी है जिसमें मेहनत करने वाले भूखे रहते हैं और कामचोर जमीदार, पूंजीपति, धर्म के ठेकेदार आनन्द करते हैं। श्रम किसान करते हैं उपज पर अधिकार जमींदार का होता है। जिस समाज में श्रम मजदूर करते हो तिजोरी पूंजीपतियों का भरता हो, वे भूखे मरने के लिए विवश हो। श्रम का कोई पुरस्कार नहीं। समाज के सारे गोरख धन्धे कामचोरी को प्रोत्साहन देते हों, उस समाज में घीसू माधव का अकर्मण्य हो जान आश्चर्य की बात नहीं है। अकर्मण्यता चाहे घीसू और माधव का हो, चाहे जमींदार व महाजन का हो उसको एक सा समान परिणाम घोषित करना चाहिए । परन्तु वास्तविकता यह उस समय नहीं थी। प्रेमचन्द्र ने अपनी कहानी 'कफन' के घीसू और माधव के चरित्रों द्वारा समाज की इसी विडम्बना की ओर लक्ष्य किया है। इसीलिए देशकाल और वातावरण की कसौटी पर भी 'कफन' उपन्यास खरा उतरता है। अगर यह कहा जाय कि 'कफन' अपने युग का दस्तावेज है तो गलत नहीं होगा।

२.६ 'कफन' कहानी का उद्देश्य

'कफन' कहानी एक सफल कहानी है। प्रेमचन्द ने इस कहानी में आर्थिक विषमता, गरीबी, अभाव ग्रस्त समाज का बैज्ञानिक विश्लेषण किया है। अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सारी विषमता, अकर्मण्यता और भूखमरी का कारण यह शोषण वादी व्यवस्था है। इसीलिए घीसू माधव के माध्यम से समाज की विसंगतियों का उघाड़ा है। जमींदार, पूंजीपतियों, धर्म के ठेकेदारों पर करार प्रहार किया है और कहा है कि हमारे धर्म रीतिरिवाज, पण्डा पुरोहित सभी समाज के शोषक हैं। गरीबी, अभाव में किसानों, मजदूरों, और जन सामान्य को जीने के लिए ये शोषक मजबूर कर देते हैं। जमींदार, पूंजीपति पण्डा पुरोहित सभी चोर-चोर मौसेरे भाई हैं। यही लोग घीसू माधव जैसे लोगों को अकर्मण्य, कामचोर, और औरों के खेतों से आलू और मटर चुराकर खाने के लिए मजबूर करते हैं। श्रम के शोषण पर आधारित समाज ही श्रम चुराने वाले घीसू माधव को पैदा करता है। उनकी कुत्सित मानसिकता रचनेवाले यही शोषक वर्ग के लोग हैं इसीलिए इस ओर संकेत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है कि, ''जिस समाज में मेहनत करने वालों की स्थिति ऐसे निकम्मे लोगों से बेहतर नहीं है वहाँ ऐसी मनोवृत्ति का पैदा हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है। इस कथन से समाज का वह विकृत चेहरा उद्घाटित होता है जो घीसू माधव को इस नियति की ओर ढ़केल रहा है।

प्रेमचन्द का उद्देश्य पूंजीपतियों, जमींदारों, धर्म के ठेकेदार पन्डा, पुरोहितों का भंडाफोड करना है इसीलिए वे सामाजिक रीति-रिवाजों पर प्रश्न अपने घीसू माधव पात्र के माध्यम से उठवाते हैं कि "कैसा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढ़कने को चीथड़ा न मिले उसे मरने पर नया कफन चाहिए।'' इतना ही नही वे पंडा पुरोहितों पर भी करारा प्रहार करते हुए कहते हैं, ''जो लोग परलोक के नाम पर हजारो रूपये ब्राह्मणोंको देते हैं, उस पर लोक को किसने देखा है? उन्होंने दिखावा करने वाले मुखौटे लगाने वाले मोटे-मोटे जमींदारों, साहूकारों, पूँजीपतियो पर भी व्यंग्य किया है कि यदि बुधिया बैकुन्ठ न जाएगी तो क्या मे मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं।''

इस प्रकार प्रेमचन्द का उद्देश्य गरीबी, अभाव, की जिन्दगी को दर्शाते हुए जमींदारों, पूंजीपतियों, पन्डा पुरोहितों के शोषणवादी प्रवृत्ति को उघाड़ना था जिसमें प्रेमचन्द जी पूर्ण सफल सिद्ध हुए हैं।

भाषा-शैली :

प्रेमचन्द की कहानी-कला में केवल विषय और पात्रों की विविधता के ही दर्शन नहीं होते हैं, वरन् भाषा, शैली-शिल्प और कहानी की विविधता के भी दर्शन होते हैं। उनकी भाषा जनसामान्य की भाषा है जन सामान्य तक पहुँचना वे अपने साहित्य का उद्देश्य समझते हैं। कफन कहानी संवेदना और शिल्प दोनों की दृष्टि से एक सफल कहानी है। यह कहानी नाटकीय व्यंजक कहानी है। इस कहानी में आरम्भ से अन्त तक एकसूत्रता बनी रहती है एक प्रसंग दूसरे प्रसंग की भूमिका बनता है और उसे पुष्ट करता है। इस कहानी में मुहावरों और कहावतों का सटीक प्रयोग हुआ है जैसे ''घर में पैसा इस तरह गायब था जैसे चील के घोसले से मांस।'' यह वाक्य विषमता भरे वातावरण के दृश्य को और सजीव कर देता है। पूरी कहानी में लेखक का व्यंग्यात्मक तेवर देखने योग्य है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चाहे कथानक हो, चाहे कथोपकथन हो, चाहे पात्र चरित्र-चित्रण हो, वातावरण देशकाल की परिस्थिति हो, चाहे उद्देश्य और भाषा-शैली हो सभी दृष्टियों से कफन कहानी एक सफल और सार्थक कहानी है। यह कहानी प्रेमचन्द के बदलते तेवर का परिचायक कही जाय तो गलत नही होगा।

२.७ व्याख्या के लिए महत्वपूर्ण अवतरण

''कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढ़ँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।''

सामान्य परिचय : प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक कालजयी हिन्दी कहानियाँ के 'कफन' नामक शीर्षक से उद्धृत है। इसके लेखक मुंशी प्रेमचंदजी हैं। मुंशी प्रेमचन्द महान कहानीकार और उपन्यासकार हैं। इनकी कहानियों में भारतीय जन-जीवन अपनी समस्त आशाओं, आकांक्षाओं और विसंगतियों के साथ मुखरित हुआ है। 'कफन' कहानी प्रेमचन्द की प्रगतिशील चेतना का प्रतीक है।

संदर्भ : प्रेमचन्द सामाजिक रूढ़ियों गलत परम्पराओं और धार्मिक पाखाण्डों के प्रबल विरोधी रहे हैं। इनकी मान्यता है कि पूंजीपति, धार्मिक रीति-रिवाज प्रगतिवाद के रास्ते में विघ्न पैदा करते हैं। दोनों में चोर-चोर मौसेरे भाई का सम्बन्ध है। पूंजीपति, धार्मिक पंडे, पुरोहित और धर्म के ठेकेदारों के माध्यम से सामान्य जनता को भरमाये रखते हैं। धर्म पूंजीपतियों के शोषण का एक हथियार है जो मजदूरों किसानों, गरीबों में धार्मिक आस्था का भाव भरकर उन्हें कमजोर और भाग्यवादी बना देता है। धर्म का आतंक दिखाकर धार्मिक ठेकेदार युगों से भोली-भाली जनता का शोषण करते आ रहे हैं। इसी का परिणाम आज आर्थिक विषमता है। विषमता मनुष्य की सोच को कुंठित कर देती है। व्यक्ति निराशित, कामचोर, क्रूर बन जाता है। प्रेमचन्द जी इस बात को स्पष्ट करने के लिए घीसू और माधव को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। घीसू माधव को पूंजीवादी व्यवस्था ने कामचोर, असंवेदशील, धूर्त बनने के लिए विवश कर दिया है। इसीलिए जब बुधिया मर जाती है, वे चन्दे के पैसे से बाजार में कफन लेने जाते हैं तो 'कफन' लेने के कसमकस में समाज की सड़ी-गली, रूढ़ियों गलत परम्पराओं को जन सामान्य को गरीबी, विवशता, फटेहाल जिन्दगी का कारण मानते हैं। वे समाज के दिखावे से चिढ़ जाते हैं। वे मुर्दे को सम्मान देने वाली और जीवित व्यक्ति को अपमानित तथा फटेहाल जीने के लिए मजबूर करनेवाली व्यवस्था तथा धार्मिक रीति-रिवाजों पर करारा व्यंग्य करते हैं।

व्याख्या : प्रेमचन्द मानते हैं कि पूंजीपति और धर्म के ठेकेदारों में चोली-दामन का सम्बन्ध हैं। इनके कारण ही शोषण की प्रवृत्ति को बढावा मिलता है। इसीलिए मार्क्सने धर्म को धतूरा माना है। धार्मिक ठेकेदार धर्म का आतंक दिखाकर जन सामान्य को भ्रमित कर देते हैं जिससे सामान्य जनता कर्मच्युत हो भाग्य पर जीने के लिए मजबूर हो जाती है। उसके अन्दर की क्रान्ति भावना कुंठित हो जाती है। हमारे धर्म, पुराण मरने के के बाद 'कफन' को आवश्यक मानते हैं पर जीते जी लोगों की नग्नता पर चुप हो जाते हैं। मुर्दों को सम्मान और जिन्दों को तिरस्कृत करने वाली व्यवस्था मानवता विरोधी व्यवस्था है। इसीलिए जब घीसू माधव कफन लेने बाजार जाते हैं। वे

सामाजिक नियमों, रूढियों पर करारा प्रहार करते हैं। समाज के पूंजीपतियों, धर्म के ठेकेदारों और सामाजिक नियमों की पोल खोलते हुए कहते है कि समाज के जो भी नियम, कानून बनाये गये हैं। वे शक्तिशाली लोगों के पक्ष को ही मजबूत करते हैं। ये पूंजी-पति, पंडे पुरोहित बड़ी चालाकी से वर्षों से जनसामान्य की भावना से खेलते आ रहे हैं। जिन्दा आदमी के जीवन को नरक बनाने वाले यही शक्तिशाली पूंजी पति और धार्मिक ठेकेदार हैं। इसके कारण खून-पसीना एक करके भी जन सामान्य न तो एक जून की रोटी जुटा पाता है और न तो सही ढंग से अपने तन को ढ़कने के लिए कपड़े का प्रबन्ध कर पाता है। उसकी फटेहाल जिन्दगी को देखकर किसी का भी दिल नहीं पसीजदा लेकिन जब वह मर जाता है तो घडियाले आँसू बहाने वालों का ताता लग जाता है। इसीलिए वे (घीसू माधव) 'कफन' के खरीदने के 'कसमकस' में सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उन्हें जिस बुधिया को जमींदारों तथा गाँव के शक्तिशाली लोगों ने 'कफन' के लिए चन्दा दिया, उसमें उनकी आत्मीयता नहीं, उनकी चालाकी का आभास होता है। वे समाज के इस दिखावे से चिढ़ जाते हैं इसीलिए समाज के नियमों को व्यर्थ सिद्ध करते हुए कहते हैं 'वह सामाज', पुरातनता का प्रतीक है जो कि मुर्दों के तन को ढ़कना आवश्यक मानता है और जिन्दों को नग्न जीवन जीने के लिए विवश करता है।

उनके कहने का मतलब यह है कि जब बुधिया जिन्दा थी, प्रसव वेदनासे तड़प रही थी तब किसी के ह्रदय में बुधिया के प्रति सहानुभूति जागृत नहीं हुई। अगर उस समय समाज बुधिया के प्रति संवेदनशील होता तो शायद बुधिया बच जाती। जीते-जी बुधिया फटे-पुराने कपड़ों से अपना तन ढ़कती रही। उस समय किसी ने भी उसकी दशा को देखकर सहानिभूति नही प्रकट की। लेकिन मरने के बाद हमदर्दी जताने के लिए लोग एकत्रित हो गये। 'कफन' के लिए चन्दा देने के लिए तैयार हो गये। समाज के दिखावे और सहानुभूति को वे (माधव घीसू) व्यर्थ समझते हैं। ऐसे लोगों के प्रति वे अपनी विद्रोह भावना व्यक्त करते हैं। उनका मानना है कि ये सारे सामाजिक नियम मानवता विरोधी हैं। इनमें समाज की उन्नति और कल्याण की भावना कहीं भी दिखाई नहीं देती। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इन नियमों को खोखला और व्यर्थ समझने के लिए विवश होगा। जो समाज या व्यवस्था जड़ता का समर्थन करे मानवीय प्रगति में रोड़े डाले, जिन्दे के तन को ढ़कना आवश्यक न माने, मूर्दे के तन को ढ़कना आवश्यक समझे, वह समाज जड़ता का प्रतीक है। ऐसा समाज समता का विरोधी, विषमता का समर्थक माना जाएगा।

इस प्रकार प्रस्तुत अवतरण के माध्यम से प्रेमचन्दजी ने खोखले सामाजिक नियमों, रूढ़ियों, एवं गलत परम्पराओं के प्रति अपना विद्रोह दर्शाते हुए अपनी प्रगतिवादी चेतना का परिचय दिया है।

विशेष : प्रेमचन्द जी ने जो कुछ देखा था, भोगा था, उसे अपने साहित्य में, सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यहाँ उनकी मानवतावादी दृष्टि का पता चलता है। वे मनुष्य की प्रगति के प्रवल समर्थक हैं इसीलिए जहाँ भी उन्हें शोषित, पददलित, गरीब, मजदूर, किसान, परेशान, दु:खी दिखाई देता है वे उनकी आवाज बनकर खड़े हो जाते हैं। उनकी मान्यता है जो धर्म और समाज जिन्दा मानव को अपमानित करे मरनेवालों के प्रति संवेदना व्यक्त करे वह प्रगतिवादी समाज का शत्रु है। हमारे यहाँ आज भी कुछ रूढ़िया गलत परम्पराएं विद्यमान हैं जो एकदम खोखली एवं व्यंर्थ हैं । जैसे शोषण के कारण जिन्दे को नग्न रहने के लिए मजबूर होना और मरने पर कफन आवश्यक मानना, जिन्दा पिता को अपमानित करना, उसे भूखे रखना,

मरने पर पितृपक्ष में कौओं को खाना खिलाकर माता-पिता के प्रति अपनी गहरी आत्मीयता व्यक्त करना।'' इस प्रकार के दिखावे से प्रेमचन्दजी को एकदम चिढ़ है। वह ऐसे नियमों, रूढ़ियों धार्मिक रीति रिवाजों के प्रति इस अवतरण में भी घीसू-माधव के माध्यम से अपना विद्रोह दर्शाया है। यहाँ प्रेमचन्द के विद्रोही प्रवृत्ति का दर्शन होता है।

सुमित्रानंदन पन्त ने भी अपनी कविता 'ताज' में भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की है-

'मानव ऐसी भी क्या विरक्ति।' प्रस्तुत अवतरण की भाषा सीधी-सरल और स्वाभाविक है। भाषा का व्यंग्यात्मक तेवर भी दर्शनीय है। यहाँ भाषा का रागात्मक प्रयोग नहीं बल्कि यहाँ भाषा यथार्थ जीवन में सीधा हस्तक्षेप करती हुई दिखाई देती है जिसमें कहीं अनगढ़ता भी है। सम्प्रेषण की दृष्टि से भाषा बोधगम्य एवं प्रवाह पूर्ण है।

किसी ने ठीक कहा है कि ''लेखक की शैली उसके व्यक्तित्व का प्रतीक होती है।'' यह कथन प्रेमचन्द के लिए भी सही एवं सटीक लगता है यहाँ उनके सरल-सीधे स्वभाव के विपरीत विद्रोही स्वभाव का दर्शन होता है।

२.८ संदर्भ सहित व्याख्या के लिए अन्य अवतरण

१. तू बड़ा बेदर्द है बे। सालभर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी कें साथ इतनी बेवफाई।

२. जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपए देंगे।

३. जिस समाज में रात-दिन मेहनत करनेवालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ-उठाना जानते थे, कही ज्यादा सम्पन्न थे वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जान कोई अचरज की बात न थी।

४. अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो, पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे ? बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ खर्च में किफायत सूझती है।

५. कफन लगाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता।

६. ''बड़े आदमियों के पास धन है, चाहे फूँके! हमारे पास फूँकने कों क्या है?''

७. ''वह न बैकुंठ में जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढाते हैं।''

८. बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिए।

९. दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँभनों को हजारों रुपए क्यों देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है कि या नहीं।

१०. जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोएं-रोएं से आशीर्वाद दे, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं।

२.९ बोधप्रश्न

१) 'कफन' कहानी की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए।
२) 'कफन' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
३) चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कफन कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
४) 'कफन'कहानी अपने युग की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है। इस कथन की पुष्टि कीजिए।
५) कहानी तत्वों के आधार पर 'कफन' कहानी की समीक्षा कीजिए।
६) प्रेमचन्द ने इस कहानी का शीर्षक 'कफन' क्यों रखा ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

२.१० लघूत्तरी प्रश्न

१) घीसू माधव प्रवस वेदना से तड़पती बुधिया के साथ कैसा-व्यवहार करते हैं ?
२) घीसू माधव को लोग काम करने के लिए क्यों नहीं बुलाते थे ? बुलाने पर घीसू माधव क्या करते थे ?
३) प्रेमचन्दजीने 'कफन' कहानी के माध्यम से हमारी सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों पर किस प्रकार व्यंग्य किया है ? समझाकर लिखिए।
४) घीसू माधव किसानों के खेतों से आलू-मटर, ऊख चोरी से उखाड़ने के लिए मजबूर क्यों हो जाते हैं ? स्पष्ट किजिए।
५) घीसू माधव के विद्रोही स्वभाव का वर्णन कीजिए।
६) घीसू माधव 'कफन' के लिए इकत्रित पैसे का क्या करते हैं ?
७) घीसू को किसकी बारात याद आती है और क्यों ? उसकी प्रतिक्रिया माधव पर क्या होती है ?

२.११ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१) घीसू और माधव जब बुझे अलाव के सामने बैठे थे तो किसकी और कैसी आवाज सुनाई दी ?
२) घीसू किससे ज्यादा विचारवान था ?
३) घीसू बीस साल पहले किसकी बारात में गया था ?
४) घीसू के अनुसार अब लोगों को क्या सूझती है ?
५) जमींदार साहब ने बुधिया के 'कफन' के लिए कितने रुपए दिये ?
६) घीसू के अनुसार बुधिया किस जाल से मुक्त हो गई ?
७) माधव आसमान की तरफ देखकर दुनिया के दस्तूरके बारे में क्या कहा ?
८) माधव जब काम करने जाता था तो क्या करता था ?
   क) मेहनत से काम करता था ख) खून-पसीना बहाता था
   ग) झगड़ा करता था ध) आधे घंटे काम तो घंटे भर चिलम पीता था।
९) दो-चार फाके हो जाने पर घीसू माधव क्या करते थे ?
१०) 'तू मुझे ऐसा गधा समझता है ?' यह वाक्य किसने – किससे कहा है ?

❖❖❖❖

३

अपना अपना भाग्य - जैनेंद्र

इकाई की रुपरेखा

३.१ जैनेंद्र कुमार : जीवन परिचय और साहित्य
३.२ 'अपना अपना भाग्य' कहानी का मूल विन्दु
३.३ कहानी की कथावस्तु
३.४ चारित्रिक विशेषताएँ
३.५ उद्देश्य
३.६ समीक्षात्मक प्रश्न
३.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न
३.८ व्याख्या के लिए अन्य अवतरण

३.१ जैनेंद्र कुमार : जीवन परिचय और साहित्य

प्रेमचन्दजी ने जैनेंद्र कुमार को हिन्दी का गोर्की कहा है। इस बात को आज भी कुछ लोग सनद के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसीलिए विजयेंद्र स्नातक लिखते हैं, 'जो जैनेन्द्र को नहीं समझते उनसे कुछ कहना व्यर्थ है किन्तु जो जैनेन्दर के कथा-साहित्य की शक्ति से पूरी तरह परिचित हैं उनसे मेरा यही निवेदन है कि वे जैनेन्द्र के प्रदेय को उसी रूप में स्वीकार करें जिस रूप में प्रेमचन्द्र ने स्वीकार किया था।' इस कथन से जैनेन्द्र की साहित्यिक मान्यता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है। जैनेन्द्र नेकहानी को मनोविज्ञान से जोड़कर एक नई परम्परा का सूत्रपात किया। इनका जन्म सन १९०५ ई.में अलीगड़ (उ.प्र.) में हुआ। हस्तिनापुर के गुरुकुल में आरम्भिक शिक्षा के बाद उन्होंने काशी विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश लिया लेकिन प्रबल राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होने के कारण वे स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के लिए अपनी पढाई बीच में ही छोड़ दिए। उनकी राष्ट्रीयता की प्रवल भावनाएं उनकी कहानियों में प्रवाहित होते दिखाई देती हैं। इसी पृष्ठभूमि में जैनेन्द्र की क्रान्तिकारी संदर्भोवाली कहानियां पढ़कर उत्साहातिरेक में यदि प्रेमचन्द ने उन्हें गोर्की कहकर पुकारा तो कोई अस्वाभाविक नहीं है।

जैनेन्द्र एक कुशल पत्रकार, उपन्यासकार, कहानीकार के रूप में हिन्दी साहित्य में जाने जाते हैं। 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', जैसे इनके उपन्यास हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। 'फाँसी', 'वातायन',

'नीलम देश की राजकन्या', 'एक रात', 'दो चिड़िया', 'पाजेब', 'जयसन्धि', इनके कहानी संग्रह हैं।

३.२ 'अपना अपना भाग्य' कहानी का मूल विन्दु

अगर जैनेन्द्र की कहानियों का अध्ययन किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी कहानियां मानव मनोविज्ञान से मूलतः प्रेरित हैं। इसी लिए उनकी कहानियाँ, बाह्य परिवेश को आन्तरिक भाव जगत में खोजती दिखाई देती हैं। 'अपना अपना भाग्य' कहानी बाहर सड़क पर होने वाली सामान्य घटना को मनुष्य की आन्तरिक मनुष्यता की कसौटी पर कसती है। इस कहानी में प्रेम, वर्गभेद और समाज की जीर्णता पर भी कुछ टिप्पणियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विद्यमान हैं। जिससे उनकी समष्टि चेतना का अनुमान लगाया जा सकता है। इस कहानी में अंग्रेजों की कुवृत्तियों और उनकी स्त्रियों के खुलेपन तथा पहाड़ी लोगो की दीन-हीन दशा और उनकी कुचलती मान प्रतिष्ठा को दर्शाते हुए बच्चों की शोषणवादी व्यवस्था की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है।

३.३ कहानी की कथावस्तु

कथानक की दृष्टि से इस कहानी को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है। पहला दृश्य नैनीताल की सड़क पर सैलानियों के व्यवहार और उनकी प्रकृति के विश्लेषण पर केन्द्रित है। दूसरा हिस्सा उस दसवर्षीय बच्चे से जुड़ा है जिसने अपनी छोटी उम्र में ही भयावह यथार्थ को करीब से देखा और पहचाना है । तीसरा हिस्सा मानवीय सरोकारों से सम्बन्धित है।

नैनीताल प्रकृति की मनोरम स्थली है। यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने के लिए सैलानियों का ताँता लगा रहता है। कहानी का आरम्भ लेखक के द्वारा नैनीताल की संध्या सुन्दरी के अवलोकन से होता है। सडक के किनारे निरुद्देश्य घूमने के बाद लेखक अपने मित्रों के साथ बेंच पर बैठ कर नैनीताल के सौन्दर्य को निहारता हुआ रंग-विरंगे बादलों में मानों खो जाता है। उसके पीछे पोलोवाला मैदान फैला हुआ है और सामने अंग्रेजों का एक प्रमोद-गृह है जहाँ सुहावना रसीला बाजा बज रहा है।

ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज यात्रियों को लेकर, इधर-उधर खेल रही हैं। कुछ साहब कटिया डालकर मछली फंसाने की प्रतिक्षा में एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ होकर बैठे हुए हैं। पोलो-लॉन में बच्चे शोरगुल करते हुए हाँकी के खेल में मग्न हैं। खेल के दरम्यान गाली-गलौज के स्वर भी सुनाई देते हैं। उन्हें आगे की चिन्ता नहीं, बीते का खयाल नहीं है। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी हैं।

कहानीकार जैनेन्द्र ने प्रकृति के इस अपार सौन्दर्य के बीच मानव मन की असुन्दरता का उद्घटन करते हुए अपना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य का अंतर्जगत उसके बाह्य जगत की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और जटिल होता है और वही जीवन को प्रेरित और निर्देशित करता है। इस कहानी में मनोविज्ञान का पुट देकर लेखक ने

सड़क के किनारे चलनेवाले अंग्रेज, उनकी पत्नी, बच्चों के क्रिया-कलाप और हिन्दुस्तानी नर-नारी के क्रिया-कलाप की तुलना करते हुए उनके मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। लेखक को सैलानियो के अविरत प्रवाह में से नैनीताल की सड़क पर अधिकार-गर्व से तने अंग्रेज सैलानी, और चिथड़ो से सजे, घोड़ों की बाग थामे पहाड़ी भी चलते हुए दिखाई देते हैं। अंग्रेजों की स्त्रियां और बच्चें हँसते-कूदते तेजी से और हिन्दुस्तानी बच्चे अपने पिता की उँगली पकड़े तथा भारतीय स्त्रियाँ सहमी सहमी सड़क के किनारे-किनारे चल रहीं थी। इसी भीड़ में ऐसे हिन्दुस्तानी जो अपनी चमड़ी के रंग के बावजूद स्वयं को अंग्रेज से ज्यादा अंग्रेज समझते थे, जो अंग्रेज को देखकर अनुगत होते थे और देशवासियों को नेटिव कहकर उन्हें वितृष्णा भरी निगाहों से देखते थें।

इस प्रकार लेखक का ध्यान यहाँ परिवेश के बीच से उभरती दो संस्कृतियों के बीच की टकराहट पर गया है। लेखक ने सुन्दरता की पहचान, पहाड़ों की सुन्दरता और रोशनियों से ज्यादा मनुष्यता को दिया है।

लेखक तथा उसके मित्रगणों को उस बेंच पर बैठे-बैठे रात के ग्यारह बज गये। इसलिए कड़कड़ाती सर्दी और टप-टप टपकते कोहरे के बीच उन्हें अपने-अपने होटल की ओर चल देना पड़ा। सब ओर सन्नाटा छाया था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियाँ दीप-मालिका-सी जगमगा रही थी। देखते-देखते एक घने पद ने आकर सब को ढ़क लिया। जगमगाहट लुप्त हो गयी। मार्ग अब बिलकुल निर्जन चुप था। चलते-चलते रास्ते में दो मित्रों का होटल आ गया। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये, लेखक और उसके एक मित्र का होटल आगे था इसलिए वे दोनों आगे बढ़े। कड़ाके की ठण्ड के कारण लेखक बेचैन था। वह जल्द से जल्द अपने होटल पर पहुँचकर, उन भीगे कपड़ों को बदलकर गरम विस्तर में छिपकर सोना चाहता था, पर लेखक का मित्र बड़ा विचित्र था। वह रास्ते में पड़ी लोहे की बेंच पर फिर से लेखक को बैठने के लिए कह रहा था, लेकिन वह लेखक की एक भी बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। अचानक इस कड़कती सर्दी और टपकते कोहरे के बीच लेखक के मित्र ने लेखक का ध्यान एक दस वर्षीय बच्चे की ओर खीचा। बच्चे का उदास मलीन चेहरा और उसकी देह पर वैसी ठंड में गंदी-सी कमीज, नंगे सिर, नंगे पैर आगे बढ़ते लड़खड़ाते कदम उसके जीवन की विडॅम्बना को साफ अभिव्यक्त कर रहे हैं।

लेखक और उसके मित्र जिज्ञासावश उससे उसके जीवन की कहानी सुनना चाहते हैं, जिस कहानी में अभाव और अपमान के सिवा कुछ भी नहीं था। वह इस कम उम्र में भूख और पिता की मार से लाचार होकर एक दूसरे लड़के के साथ घर से भाग आया था। वहाँ उसने साहब की मार खाकर अपने साथी को मरते देखा था । स्वयं बहुत सा काम करते हुए भी एक रुपया और जूठे भोजन खाकर खुद को जिन्दा रखने की कोशिश कर रहा था कि नौकरी से निकाल दिया गया। बेसहारा, विवश उस लड़के के लिए अब कोहरे और बर्फ में सड़क पर रहने के सिवा कोई विकल्प नहीं था। उसकी कहानी सुनकर दोनों मित्र द्रवीभूत हो उठते हैं। उसकी नौकरी लगाने के लिए रात, एक बजे अपने साथी वकील के पास जाते हैं लेकिन वहाँ निराशा ही हाथ लगती है। अभावों में पैदा हुए गरीब और कुम्हलाए चेहरे वाले बच्चे अपने चरित्र पर शैतान होने का दाग लिए आते हैं। ऊँचे होटलों में रहने वाले किसी भी सड़क चलते मासूमियत पर विश्वास नहीं कर सकते। लेखक और उनके मित्र लाख आश्वासन देते हैं कि, ''वह अच्छा निकलेगा'' उसे वकील साहब नहीं मानते। वे इन्कार करते हुए सोने के लिए होटल में चले जाते हैं।

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब टटोली पर झट कुछ निराशभाव से हाथ बाहर कर वे लेखक की ओर देखने लगे। उस बालक को कुछ देना चाहते थे लेकिन उनकी जेब में दस-दस के नोट थे। लेखक ने कहा कि ''मैं भी देखता हूँ'' लेकिन उनके पास भी दस-दस के ही नोट थे। मित्र ने पूछा - ''तब'' लेखक ने कहा कि ''दस-दस का नोट ही दे दो'' मित्र महोदयने सकपकाकर कहा कि ''अरे यार, बजट बिगड़ जाएगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतना पैसा तो नहीं है।''उनकी बात सुनकर लेखक ने कहा, ''अरे यार, बजट बिगड़ जाएगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतना पैसा तो नहीं है।'' उनकी बात सुनकर लेखक ने कहा, ''तो जाने दो; यह दया ही इस जमाने में बहुत है।'' स्वार्थ की फिलास्फी परमार्थ की भावना से कहीं शक्तिशाली हो गई। इसलिए सब कुछ जानते-समझते हुए भी उसे (बालक) केवल आश्वासन के सहारे उस कड़कड़ाती सर्दी में सड़क पर छोड़कर दोनों आगे चल दिये।

उन्होंने अगले दिन उस बालक को अपने होटल पर बुलाया था पर सुबह मोटर में बैठते हुए, उस लड़के की मृत्यु की खबर उन तक पहुँचती है जिसे वें ''अपना-अपना भाग्य'' कह कर सन्तोष कर लेते हैं। कहानी का शीर्षक ''अपना-अपना भाग्य'' है इससे कहानी का अन्त भी होता है। यह अन्त एक ओर अग्रेज सैलानियों के गर्व और उनकी पत्नियों के खुलेपन तथा भारतीयों की दयनीयता और गरीब बच्चों की शोषणवादी व्यवस्था तथा उनके प्रति कोरे आश्वासन की ओर संकेत करता हुआ कहानी के उद्देश्य को समेटता दिखाई देता है। इसलिए शीर्षक की दृष्टि से भी यह कहानी सही और सार्थक कहानी कही जा सकती है।

३.४ चारित्रिक विशेषताएँ

जैनेन्द्र की कहानियां प्राय: चिन्तन प्रधान होती हैं। उनको समझने के लिए पाठकों को भी चिन्तनशील और परिष्कृत मस्तिष्क का होना अनिवार्य है। जैनेन्द्र की कहानियों में हल्का मनोरंजन न मिलकर उनके आधार पर हृदय की रागात्मक-तृप्ति का विवेचन होता है।

जैनेंद्र अपने विचारों के अनुरूप अपने कहानी के पात्र भी गढ़ते हैं। कहानी के पात्र और उनका परिवेश पूरीतरह से काल्पनिक लगते हैं लेकिन मनोविज्ञान के पुट के कारण उनकी कहानियाँ बाह्य परिवेश को आन्तरिक भावजगत में तलाशती हैं। ''अपना अपना भाग्य'' कहानी बाहर सड़क पर होने वाली सामान्य घटना को मनुष्य की आन्तरिक मनुष्यता की कसौटी पर परखती है। नैनीताल के उस अपार सौन्दर्य के बीच घूमते-फिरते लोगों के मन को टटोलने तथा उनको मनोवृत्ति को समझने का भरसक प्रयत्न लेखक ने किया है। लेखकने इस कहानी में पहाड़ों की सुन्दरता से ज्यादा महत्त्व मनुष्यता को दी है। इस कहानी में भले ही गिने-चुने पात्रों का कोई चारित्रिक विकास नहीं दिखाई दे रहा है लेकिन लेखक ने द्वन्द्वपूर्ण स्थिति के माध्यम से उन चरित्रों के अन्तर और बाह्य के बीच जो अन्तर है उसे पूरी गहराई और सूक्ष्मता से स्वर दिया है।

यह कहानी भारत की पराधीनता के यथार्थ को बखूबी से व्यक्त करती है। नैनीताल की सड़क पर चलने वाले तीन प्रकार के चरित्र का उद्घाटन इस कहानी में हुआ है। पहला चरित्र उभर कर जो सामने आता है- वह उन अधिकार गर्व से तने उच्च भावना से प्रेरित अंग्रेज और उनकी पत्नी और बच्चों का है। अंग्रेज अपने को इस देश का शासक मानते थे। हमे गुलाम

समझकर निम्न भावना से देखते थे। उनकी स्त्रियाँ उस सड़क पर धीरे-धीरे नहीं, तेज चलती थी। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में लाज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़ों पर बैठ सकती थी और घोड़े के साथ ही साथ, जरा जी होते ही किसी हिन्दुस्तानीपर भी कोड़े फटकार सकती थी। अंग्रेजों के बच्चे स्वतंत्र स्वच्छन्द थे उनके साथ उनके अंग्रेज पिता भी भाग रहे थे । उनको किसी प्रकार की न तो चिन्ता थी न संकोच। वे हँसते-खेलते उस सड़क पर नजर आते हैं पर कुछ भारतीय बच्चे अपने पिता की ऊँगली पकड़े चल रहे थे।

दूसरा वर्ग गुलाम जैसे पहाड़ियों का है जो अभाव और गरीबी में पले नीरीह लग रहे थे, घोड़ों की बाग थामे चल रहे थे। वे गुलामी में मानों अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को भी बेच दिये हैं। लेखक ने भारतीय नारी के लज्जालु रूप को हमारे सामने रखते हुए कहा है कि भारत की कुछ लक्ष्मियाँ ''सड़क के बिल्कुल किनारे-किनारे, दामन बचातीं और सम्हलती हुई, लोकलाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा, आदर्श को छिपाये सहमी-सहमी चल रही थी।''

इस कहानी में लेखक ने ऐसे काले अंग्रेजों का भी पर्दाफाश किया है जो अपने को अंग्रेजों से ज्यादा अंग्रेज समझते थे। भारतीयों को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंग्रेजी के साथ पूंछ हिलाते चलने में अपना सम्मान समझते थे।

कहानीकार ने इस कहानी में ऐसे चरित्रों को भी उभारा है जो संवेदनशील और भावुक हैं लेकिन आर्थिक मजबूरी उनकी दयार्द्रता को क्षीण कर देती है। इस सन्दर्भ में लेखक और उसके मित्र के चरित्र को उद्घाटिक किया जा सकता है। लेखक और उसके मित्र जब उस गरीब लडके की दर्द भरी कहानी सुनते हैं तो वे द्रवीभूत हो उठते हैं। उसे नौकरी दिलाने के लिए रात एक बजे अपने वकील मित्र के होटल पर पहुँचते हैं लेकिन तर्कशील वकील के सामने लाख आश्वासन देने पर कि 'यह लड़का अच्छा निकलेगा' कुछ नहीं कर पाते हैं। उसकी सहायता करने के लिए वे दोनों अपनी जेबे टटोलते हैं लेकिन दस-दस के नोट होने के कारण वे उसे केवल कोरा आश्वासन देकर 'कल होटल पर आओ' कह कर कड़कड़ाती सर्दी में सड़क पर छोडकर चल देते हैं। यहाँ इनके संवेदनशीलता पर अवश्य ही प्रश्न चिन्ह खड़ा हो जाता है। कहानीकार ने ऐसे पूंजीपतियों, सेठों तथा शोषक मालिकों का चेहरा भी बेनकाब किया है जो नौकरों से दूना काम लेते हैं, भर पेट उन्हें भोजन और सही मजदूरी नहीं देते, उनकी मजबूरी का गलत लाभ उठाते हैं। उन पर अन्याय करते हैं और मार-मार कर मृत्यु के घाट उतार देते हैं। इसको स्पष्ट करने के लिए लेखक ने उस मलीन गरीब लड़के के मित्र का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसको उसका मालिक मार डालता है।

इस प्रकार हम 'अपना-अपना भाग्य' कहानी को चरित्र-चित्रण की दृष्टि से एक सफल कहानी कह सकते हैं।

३.५ उद्देश्य

प्रत्येक कहानीकार की कहानी के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी इसका अपवाद कैसे हो सकती है? अवश्य ही इस कहानी का भी उद्देश्य है। कहानीकार ने अपने उद्देश्य की पुर्ति के लिए पहले नैनीताल की प्राकृतिक सुन्दरता के बीच

सैलनियों के व्यवहारों का विश्लेषण करते हुए पराधीन भारत के यथार्थ को उघाड़ने का प्रयत्न किया है, फिर गरीबी, बेकारी, शोषण की चक्की में पिसते उस बालक की दर्द भरी कहानी कह कर यह सन्देश दिया है कि गरीब, दीनहीन, मलीन, बेकार बच्चों को शाब्दिक (कोरी) सहानिभूति नहीं चाहिए बल्कि उन्हें जीवन निर्वाह के लिए आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। भारत में हजारों बच्चे हैं जो गरीबी, बेकारी और माता-पिता की मार से त्रस्त हो, भागकर जीविकोपार्जन के लिए नगरों, महानगरों, पर्यटन क्षेत्रों में शरण लेते हैं लेकिन वहाँ शोषणवादी शक्तियाँ कार्यरत हैं, वे उनकी विवशता से लाभ उठाने के लिए उन्हें होटलों और दुकानों में काम दे देती हैं। वहॉ उन्हें न सही खाना मिलता है न सही मजदूरी फिर भी अपनी परिस्थिति समझकर वे काम करने के लिए मजबूर होते हैं । कभी-कभी ऐसे क्रूर मालिक से उनका पाला पड़ जाता है कि उन्हें जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है। जब ऐसे गरीब बच्चों को समाज से कोई सहारा नहीं मिलता तो सड़कों, प्लेटफार्मों पर ये चोरी करते, भीख मांगते नजर आते हैं। अन्त में फटे हाल जिन्दगी ढोते-ढ़ोते आकाश के खुले आंगन में मरने के लिए विवश हो जाते हैं जिसे सभ्य समाज 'अपना-अपना भाग्य' कहकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान लेता है। लेखक ने 'अपना-अपना भाग्य' को शोषणवादी व्यवस्था का हथियार माना है जिसकी आड़ में पूंजीपति, सेठ, महाजन, मालिक सभी लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। यह गरीबी, बेकारी से त्रस्त मानवता के ऊपर कलंक है। यह भाग्य शब्द अन्तर्विरोध का आवरण है। यह एक नैतिक ढ़ोंग है। कहानी का पूरा ढ़ाचा इस नैतिकला पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।

इस प्रकार अगर इस कहानी का मूल्यांकन वातावरण और कथोपकथन तथा शिल्प-विधान की दृष्टि से भी किया जाय तो भी यह एक सफल कहानी सिद्ध होती है। लेखक के संवाद कहीं-कहीं ज्यादा सार्थक और मार्मिक लगते हैं जैसे ''यह दया ही इस जमाने में बहुत है।'' यह वाक्य आज के सन्दर्भ को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। जैनेन्द्र की इस कहानी में अनुभव की प्रकृति कहानी के शास्त्रीय ढ़ाचे को चुनौती देती है। कहानी में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग दर्शनीय है- ''नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी।'' या सब सन्नाटा था। प्राकृतिक दृश्यों के काव्यात्मक संयोजन के साथ नाटकीय संवादों की सृष्टि हुई है। इस कहानी में लाक्षणिक, मुहावरे से युक्त भाषा का भी प्रयोग हुआ है, जो अमूर्त को मूर्त करने में सक्षम है। आत्मविश्लेषण कथा शैली के प्रयोग से यह कहानी संवेदना और शिल्प दोनों दृष्टि से खरी उतरती है।

३.६ समीक्षात्मक प्रश्न

१. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी का कथानक अपने शब्दों में लिखिए।

२. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के पात्रों की मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

३. 'अपना-अपना भाग्य' कहानी के माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है ? सोदाहरण समझाइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न:-

१. कहानीकार ने भारत की पराधीनता के यथार्थ को इस कहानी में किस प्रकार उजागर किया है ?

२. दस वर्षीय बालक ने लेखक के मित्र से अपने सम्बन्ध में कौन-कौनसी बातें बतायी ? उसकी आप-बीती सुनकर लेखक तथा उसके मित्रने उसके लिए क्या किया ?

३. दस वर्षीय बालक की मृत्यु कैसे हुई ? उसकी मृत्यु का समाचार पाकर लेखक और उसके मित्र पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है ?

४. लेखक ने इस कहानी में दो संस्कृतियों के बीच होने वाली टकराहट को किस प्रकार दर्शाने का प्रयत्न किया है ?

५. लेखक ने 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में नैनीताल के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किस प्रकार किया है ?

३.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. पोलो-लॉन में बच्चे कौन सा खेल-खेल रहे थे ?

क) क्रिकेट, ख) हॉकी, ग) फुट बॉल, घ) बालीबॉल

२. नैनीताल की सड़क पर अंग्रेज रमणियाँ किस प्रकार चल रही थीं ?

३. लेखक ने कुहरें की सफेदी में कुछ हाथ दूर से क्या देखा ?

४. भारत की कुछ लक्ष्मियाँ नैनीताल की सड़क के किनारे-किनारे किस प्रकार चल रही थी ?

क) तेजी से, ख) जोर-जोर से चिल्लाती,

ग) नाचती-गाती, घ) दामन बचाती

५. दस वर्षीय बालक अपने घर से क्यों भागा था ?

६. दस वर्षीय बालक को नौकरी में कितना रूपया मिलता था ?

७. दस वर्षीय बालक के मित्र की मृत्यु कैसे हुई ?

८. लेखक और उसके मित्र उस गरीब बालक को नौकरी दिलाने के लिए किसके पास ले गये ?

निम्पलिखित पर टिप्पटियाँ लिखिए-

क) नैनीताल की सड़क पर चलनेवाले अंग्रेज और उनका परिवार
ख) दस वर्षीय बालक
ग) गरीब बालक के प्रति लेखक और उसके मित्र की सहानिभूति
घ) लेखक के वकील मित्र
च) तल्लीताल की सुन्दरता

३.८ व्याख्या के लिए महत्त्वपूर्ण अवतरण

१. उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का खयाल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की संपूर्ण समाई के साथ जीवित थे।

२. ''अरे यार बजट बिगड जाएगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतना पैसा तो नहीं।''

३. मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ो में कमीज मिली! आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

४. अपने कालेपन को खुरच-खुरचकर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेज-दाँ, पुरषोत्तम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर आँखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे, मानों भारतभूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार है।

४

गर्मियों के दिन

इकाई की रुपरेखा

४.१ कमलेश्वर : जीवन और साहित्य
४.२ गर्मियों के दिन की पृष्ठभूमि
४.३ कथावस्तु
४.४ युगीन अंतर्विरोधों का चित्रण
४.५ उद्देश्य
४.६ चारित्रिक विशेषताएँ
४.७ शिल्प विधान
४.८ समीक्षात्मक प्रश्न
४.९ लघूत्तरी प्रश्न
४.१० वस्तुनिष्ठ प्रश्न
४.११ व्याख्या के लिए महत्त्वपूर्ण अवतरण

'गर्मियों के दिन' कमलेश्वर

४.१ कमलेश्वरजी का जीवन और साहित्य

हिन्दीं साहित्य में कमलेश्वर एक महान कहानीकार और उपन्यासकार के रुप में विख्यात हैं। उनके कथा साहित्य में आम आदमी की पीड़ा उसकी त्रासदी का चित्रण मिलता है। ये सत्ता से लेखकीय सम्पादकीय स्तर पर निरन्तर जूझते रहे। अनवरत संघर्ष और तीखा प्रहार करना ये अपना धर्म मानते रहे हैं। इनका जन्म ६फरवरी १९३२ को उत्तर प्रदेश के कस्बे मैनपुरी मे हुआ। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंन्दी में एम.ए.की उपाधि प्राप्त की। इनके परिवार की आर्थिक दशा बड़ी दयनीय थी। आसपास के लोंगो मे ईर्ष्या, द्वेष की भावना भरी हुई थी, लोग रुढ़ियों से बुरी तरह जकड़े हुए थे। इस परिवेश और परिस्थिति का प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ा। कमलेश्वर की परिवारिक -समाजिक और आर्थिक परिस्थितियों ने बहुत गहरे तक उनके व्यक्तित्वपर अपनी छाप छोड़ी हैं। भाई - भतीजावाद, शोषणवादी प्रवृत्ति का शिकार कमलेश्वर अपने वाल्यकाल से रहे। इन परिस्थितियों ने कमलेश्वर को संघर्ष के लिए

निरन्तर प्रेरित किया। इसी संघर्ष और उनके साहस का परिणाम रहा कि कमलेश्वर एक सफल लेखक, उत्कृष्ट, पत्रकार, सजग आलोचक के रुप में हिन्दी साहित्य जगत में अपने को प्रतिस्थापित करने में सफल रहे। उनके ११ कहानी संग्रह, १० उपन्यास और २० से अधिक अन्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

कमलेश्वर बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। कहानी के क्षेत्र में जहाँ उन्होंने एक नये युग का सूत्रपात किया वहीं उपन्यास साहित्य में उन्होंने पूर्ववर्ती स्थापित परम्परा को आगे बढ़ाया। जीवन की असंगतियो के बीच तालमेल बैठाने वाले कमलेश्वर के साहित्य में मध्यमवर्ग का यथार्थ स्पष्ट रुप से उभरा है। सच तो यह है कि कमलेश्वर अपनी कथाओं में युग -सत्य को उद्घाटित करने में पर्याप्त सफल रहे हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नए सामाजिक यथार्थ की निरुपित किंया गया है।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' कमलेश्वर का सर्वप्रथम उपन्यास है जो सन १९५८ - ५९ में लिखा गया था और बाद में प्रकाशक की भूल के कारण १९६८ में बदनाम गली' शीर्षक से भी प्रकाशित (हुआ / इसके बाद 'डाक बंगला' (१९६२), लौंटे हुए मुसाफिर' (१९६३) 'तीसरा आदमी' (१९६४) 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' (१९६५) में लिखे गये। ये उपन्यास कमलेश्वर के दूसरे दौर के उपन्यास है, जो उन्होंने दिल्ली मे रहते हुए लिखे। इसके बाद इन्होंनें 'काली आधी' लिखा जो धारावाहिक रुप में साप्ताहिक हिन्दुस्तान पत्रिका में दिसम्बर १९७४ से प्रकाशित होना आरम्भ हुआ। इसके बाद 'वही बात' १९८० में छपा तथा फिर 'सुबह -दोपहर–शाम का प्रकाशन १९८५ में हुआ । कितने पाकिस्तान' उपन्यास तो इनका चर्चित उपन्यास माना जाता है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कमलेश्वर लोकप्रिय और प्रतिष्ठित रहे हैं। उन्होंने 'नई कहानी','सारिका' 'गंगा' कथायात्रा, इंगित जैसी महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का सम्पादन किया। दैनिक जागरण' और दैनिक भास्कर के भी प्रधान सम्पादक रहे। भारतीय दूरदर्शन के वे प्रथम पटकथा लेखक हैं। उन्होंने अनेक सफल फिल्मों तथा अनेक लोकप्रिय धारावाहिकों के लिए पटकथा लेखन किया।

कमलेश्वर के प्रमुख कहानी संग्रह हैं- 'राजा निरबसिया' कस्बे का आदमी' 'मांस का दरिया', इतने अच्छे दिन' 'जिन्दा मुर्दे' 'बयान' 'खोई हुई दिशाएं' 'चर्चित कहानियाँ और 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि । इसके अतिरिक्त इनके अनेक आलोचना ग्रन्थ डायरी और यात्रावृत्तांत तथा अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं।

४.२ गर्मियो के दिन की पृष्ठभूमि

कमलेश्वर ने हिन्दी कहानी को रचनात्मक और वैचारिक दोनों स्तरों पर एक नई दिशा प्रदान की। इन्होंने कहानी को व्यापक व गहन सामाजिक बोध से जोड़ा। मध्य तथा निम्न मध्य वर्ग का जीवन उनकी कहानियों का मूल्य कथ्य है। इसीलिए डॉ. पुष्पपाल सिंह ने कहा है कि "कमलेश्वर ही कहानियों की पृष्ठभूमि चाहे कहीं की भी रही हो किन्तु उसमें सामान्य मनुष्य की जिन्दगी की समस्याएं ही अनेक रुपो में चित्रित हुई हैं। कमलेश्वर कस्वाई कहानीकार माने जाते हैं इसीलिए जहाँ उन्होने अपनी कहानियों में कस्बे की विसंगतियों उद्घाटन किया है वहीं कस्बाई

जीवन की बदलती जीवन-शैली का सही विश्लेषण भी किया है। 'गर्मियों के दिन' कहानी के माध्यम से इन्होंने यह बताने का प्रयत्न किया है कि छोटे शहर में जीवन न तो महानगरों की तरह तेज गति से भागता है और न महानगरों व बड़े शहरों में होने वाले परिवर्तनों से अछूता रहता है। पुरानी जीवन शैली आधुनिक ताम –झाम के बीच किस प्रकार दम तोड़ रही है उसकी सच्ची तस्वीर 'गर्मियों के दिन' कहानी है।

४.३ गर्मियो के दिन कहानी की कथा वस्तु

कहानी का आरंभ चुंगी दप्तर से लेकर दुकानों पर नए साइन बोर्डलगाने से होता है। साइन बोर्ड लगाना यानी औकात का बढ़ाना है। साइनबोर्ड उस छोटे से शहर में आकर्षण का केन्द्र बन गया है। इसके लगाने से दुकानों की विक्री मे वृद्धि हो जाती है। साइनबोर्ड के ही बल पर दीनानाथ जैसे हलवाई की विक्री बढ़ गई और साइनबोर्ड के ही दम पर सुखदेव बाबू कम्पौंडर से डॉक्टर हो गये। वे इक्का घोड़ा खरीद लिये। उनकी शान में वृद्धि हो गई पर उसी शहर में पुराने ढर्रे पर चलने वाले वैद्य जी भी हैं जिनको पूछने वाले इक्के –दुक्के लोग बचे हैं। यह कहानी बाजारवाद के प्रभाव का उद्घाटन करते हुए आगे गतिशील होती है।

वैद्यजी इस कहानी के केन्द्रीय पात्र हैं। पूरीकहानी इन्हीं के इर्द -गिर्द चक्कर लगाती है। सारी कहानी उनके विचारों और जीवन –शैली पर टिकी है जो इस तरह के बाजारीकरण से तो नाराज हैं लेकिन उसके महत्व से अनभिज्ञ नहीं। जब वे सुनते है कि सुखदेव ने इक्का-घोड़ा खरीद लिया हैं, तो वे कह बैठते हैं कि ये सब जेब कतरने का तरीका है। वे सारा पैसा मरीज से वसूल करेंगे । उनके अनुसार मरीज का इलाज करना है तो रोब-दाब की क्या आवश्यकता है ?वे अंगेजी दवा देने वाले डॉक्टरों और आयुर्वेद के वैद्यों की तुलना करते हुए बताते हैं कि "अंग्रेजी आले लगाकर मरीज की आधी जान पहले सुखा डालते हैं। आयुर्वेद के डॉक्टर नब्ज देखना तो दूर चेहरा देखकर रोग बता देते हैं। इस प्रकार वैद्य जी अपनी दुकान पर गप्प लडाने वाली भीड से बतरस करते हुए अग्रेंजी दवा देने वाले डॉक्टरों की मजाक उड़ाते है लेकिन साइनबोर्ड की महिमा से अनजान नहीं हैं। वे सबको समझाने के अन्दाज में कहते हैं कि बगैर पोस्टर चिपकाए सिनेमावालों का भी काम नहीं चलता। इसीलिए अपना मन्दा पड़ता काम चलाने के लिए वे भी साइनबोर्ड रँगवाना शुरु कर देते हैं। वे घन्वंतरि औषधालय के लिए किसी पेन्टर को पाँच रुपए नहीं देते बल्कि दस –बारह आने खर्च कर कुछ खुद और कुछ अच्छी लिखाई वाले लडके से करवा लेते हैं। इस प्रकार नया दस्तूर और पुरानी चाल एक साथ निभाने का प्रयत्न करते हैं।

वैद्यजी का व्यवहार उनकी इच्छा से अधिक उनकी विवशता पर निर्भर है। चाहे वे कितना ही कहें कि आयुर्वेद वाले चेहरा देखकर रोग बता देते हैं पर वास्तविकता यह है कि पूरी कहानी मे उनकी दुकान पर जो लोग आते हैं उनमें कोई भी रोगी नहीं रहता है। कोई गप्प लड़ाने के लिए बैठा है तो कोई कनस्तर रखने आ रहा है तो कोई छुट्टी लेने के लिए सर्टिफिकेट बनवाने। वैद्यजी न चाहते हुए भी मिठास बोलते हैं कि शायद कल इन्हीं में से कोई बीमार पड़ जाए या उसके घर में किसी को कोई रोग हो जाए तो वैद्यजी की जरुरत पड़ जाए यानी वे सब उनके संभावित उपभोक्ता हो सकते हैं।

वैद्यजी अनुभवी व्यक्ति हैं वो समय की धड़कन को समझते हैं पर बेबस हैं। अपने मन्द पड़ते धन्धें को देखते हुए वैद्यजी ने छोटे-छोटे अन्य काम करने शुरु कर दिये हैं जैसे कभी लेखपालों के रजिस्टरों की नकल बनाने का कार्य तो कभी किसी पांडुरोग से पीड़ित रोगी को ताबीज बाँधकर इन कार्यो से वैद्य जी को कुछ पैसा मिलने लगा है। लेकिन उनके दुकान की दुर्दशा का पता तब चलता है जब 'डाकदरी सरटीफिकेट लेने आये एक रेल्वे के खलासी से वैद्य जी दो -चार रुपये मांगे तो वह उठकर चल दिया । वैद्य जी को लगा कि उन्होंने बात का सूत्र गलत जगह तोड़ दिया। फिर भी उन्हें पूरा विश्वास है कि कोई डॉक्टर उसे पॉच रुपए से कम में सर्टिफिकेट नहीं देगा इसलिए वह अवश्य आएगा। वे पूरी दोपहरी में काम का बहाना बनाकर तपती गर्मी में बेचैन, कभी पंखा झलते तो कभी जम्हवाई लेते, उस खलासी का इन्तजार करते हुए दुकान खोलकर बैठे रहते हैं। किसी की आहट पाकर सोचने लगते हैं कि वह आ गया पर जब उसकी जगह कोई अन्य दिखाई पड़ जाता है तो वे निराश हो जाते हैं लेकिन आश छोड़ते नहीं। उनकी निरीहता और दैन्य भावना का पता उस समय लगता है जब उनका पड़ोसी दुकानदार बच्चनलाल दोपर का समय बिताकर घर से अपनी दुकान पर आजाता है और वैद्यजी को बैठा देखकर पूंछ बैठता है कि 'किसी का इन्तजार है क्या?' वैद्यजी उत्तर देते हैं कि "हाँ एक मरीज आने को कह गया था'—– अभी तक आया नहीं, इस वाक्य से कहानी का अन्त होता है।

इस कहानी की कथा-वस्तु अवश्य ही हल्के ढंग से प्रस्तुत की गई है पर इसमें जिन्दगी के दाँव-पेंच खट्टे- मीठे अनुभव स्पष्ट दिखाई देते है। इस कहानी का कथ्य किसी घटना पर निर्भर नहीं है लेकिन वैद्यजी और आस –पास के दुकानदारों के माध्यम से इसमें पूरा कस्बा साकार हो उठा है। कथावस्तु की दृष्टि से यह कहानी एक सफल कहानी कही जा सकती है।

४.४ कस्बाई वातावरण में टूटते पुराने जीवन मूल्यों की कसक और युगीन अन्तर्विरोध का चित्रण :-

किसी भी कहानी का महत्वपूर्ण तत्व देशकाल, परिस्थिति और वातावरण होता हैं। डॉ. कृष्णलाल जी ने ठीक लिखा है कि "कहानी, साहित्य का एक विकसित कलात्मक रुप हैं जिसमें लेखक कल्पना शक्ति के सहारे कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगो की सहायता से मनोवांछित कथानक,वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।" देश –काल तो संसार का अनिवार्य तत्व है। यह देशकाल, परिस्थिति वातावरण कहानियों में पात्रों के माध्यम से व्यक्त होता है। पात्रों के जीवन पर देश –काल का प्रभाव बड़ी दूर तक पड़ता है। कमलेश्वर जी कस्बाई मनोवृत्ति के कहानीकार हैं। इनकी कहानी का सामान्य आदमी जीवन की घुटन पीड़ा और निराशा के बीच संघर्ष करता हुआ दिखाई पड़ता है। वह संघर्षशील आम आदमी अपने युग के अन्तर्विरोध को उजागर करने में पूर्ण सक्षम है।

'गर्मियों के दिन' कहानी में कहानीकार बड़ी बारीकी से छोटे कस्बे की बदलती स्थितियों और जीवनशैली का विश्लेषण किया है। नगरों और महानगरों मे यातायात की सुविधा और संचारमाध्यमों के विकास के कारण पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बड़ी तेजी से पडता है लेकिन छोटे-छोटे शहरों में इसका प्रभाव मन्दगति से पड़ता दिखाई देता है। 'गर्मियों के दिन' कहानी का वातावरण एक छोटे से कस्बाई वातावरण से मिलता जुलता है। भले ही इस कहानी में

किसी कस्बे का नाम नहीं है लेकिन वैद्य जी और आस-पास के दुकानदारों के माध्यम से कहानीकार ने एक कस्बे का प्रतिबिम्ब अवश्य खड़ा किया हैं। दुकानों पर लगे साइनबोर्ड बाजारवाद के प्रभाव को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं। साइनबोर्ड लगाना औकात को बढाना है। लेकिन इस कस्बे में बाजारवाद से दु:खी वैद्यजी जैसे लोग भी हैं और साइनबोर्ड लगाकर कम्पोंडर से बने डॉक्टर सुखदेव भी हैं। वैद्यजी बाजारीकरण से नाराज भी हैं और उसका हिस्सा भी । जो आज के अन्तविरोध को अजागर करते हैं।

जिस कस्बे मे वैद्यजी की घनवन्तरि औषधालय है उस कस्बे से गाँव वालों की छोटी – मोटी आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं। यहाँ का जीवन नगरों और महानगरों की तरह अंधेरे से शुरु होकर अधेरे में समाप्त नहीं होता। यहाँ का जीवन शहरी और ग्रामीण जीवन के मिश्रण से बना स्थिर जीवन है जिसमें आत्मीयता भी है, पूराने मूल्यों के टूटने का दर्द भी है, संघर्ष और आशा की झलक भी है। कहानी में युगीन चेतना वैद्यजी के माध्यम से व्यक्त हुई है। इसीलिए कमलेश्वरजी ने वैद्य जी के मनोभावोंका सूक्ष्म निरीक्षण भी किया है। वैद्यजी की बातों में अंग्रेजी दवा वालों से प्रतिस्पर्धा भरी ईर्ष्या बार बार झलकती है । तभी तो कभी वे कहते हैं "अग्रेंजी आले लगाकर मरीज की आधी जान पहले ही सुखा डालते हैं " और कभी अपनी प्रतिष्ठा और महत्ता सिद्ध करते हुए बताते हैं "अब जिनके पास रजिस्टरी होगी वही वैद्यक कर सकता है।" कस्बे के जीवन में भले ही छटपटाहट और प्रतिस्पर्धा की भावना दिखाई देती हो लेकिन व्यवहारिकता ओर अन्तरंगता कीभी कमी नहीं होती। लोग एक दूसरे को अच्छी तरह जानते –पहचानते हैं, बैठकवाजी भी करते हैं, तनाव और छटपछाहट में मजाक और एक दूसरे की खिल्लिया भी उड़ाते हैं पर अपनी व्यवहारिकता और व्यवसायिक गरिमा को भूलते नहीं हैं, इसी लिए वैद्यजी की दुकान पर भले ही रोगी की जगह गप्पेबाज और कनस्तर रखने वाले लोग आते हैं पर वे हर आने वाले से यह कहना नहीं भूलते "कहो भाई, राजी खुशी हो।" नगरों और महानगरों में जहाँ व्यस्तता, वेगानापन और संवेदनहीनता दिखाई देती है वहीं कस्बे के जीवन मे व्यवहारशीलता और अत्मीयता स्पष्ट दिखाई देती है। तभी तो रेल्वे के खलासी के इन्तजार मे दोपहर की तपती गर्मी मे अपनी दुकान पर बैठे वैद्यजी से आते –जाते आसपास के लोग पूछ बैठते हैं कि 'आज आराम करने नहीं गये वैद्यजी।" ऐसी सच्ची आत्मीयता कस्बे में ही मिलती हैं, नगरों महानगरों में कहाँ?

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि कमलेश्वर जी ने बड़े शहरों और छोटे कस्बें का विश्लेषण करते हुए छोटे कस्बे के सन्दर्भ में जो चित्र गर्मियों के दिन' कहानी में उकेरा है वह कस्बाई वातावरण को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है।

४.५ 'गर्मियो के दिन' कहानी का उद्देश्य

किसी भी कहानी का महत्वपूर्ण तत्व उद्देश्य होता हैं। अपने उद्देश्य सिद्धि के लिए कहानीकार वातावरण और पात्रों की सृष्टिकरता है। इसीलिए कहानी के उद्देश्य के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि जिस प्रकार फूल में सुगन्ध समाविष्ट होता है उसी प्रकार कहानी में उद्देश्य छिपा रहता है। इस आधार पर जब 'गर्मियों के दिन' कहानी का मूल्यांकन करते हैं तो यह बात अपने आप स्पष्ट हो जाती है कि लेखक ने बाजारीकरण के बढ़ते कदम का मार्मिक विश्लेषण करते हुए यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि आजबाजारीकरण केवल नगरों या महानगरों के लिए ही चुनौती नहीं है बल्कि इसके प्रभाव से छोटे-छोटे कस्बे भी प्रभावित हो रहे हैं। यह हमारी

संस्कृति और पुरानी धरोहर के लिए एक खतरे की घंटी है। नगरों महानगरों में जैसे शॉपिंग मॉल और सिनेमा की बत्तियाँ ग्राहकों को आकर्षित करती हैं वैसे छोटे –छोटे शहरों और कस्बो में लोग साइन बोर्ड लगाकर ग्राहकों को अपनी और खीचना चाहते हैं। जिन लोगों ने साइनबोर्ड लगा ली है उनका धन्धा रफ्तार पकड़ लिया है और जिन लोगों ने साइन बोर्ड नहीं लगाई, उनका धन्धा एकदम मन्द पड़ गया है। साइन बोर्ड लगाना कस्बे में औकात बढाने का एक मुहावरा बन गया है। साइनबोर्ड के बल पर हलवाई की विक्री बढ़ गई है और साइन बोर्ड के दम पर सुखदेव बाबू कम्पौडर से डॉक्टर हो गए।" वे इक्के के घोड़े खरीदकर रोबदार बन गये हैं, जब कि उसी कस्बे में बाजारीकरण के कारण वैद्यजी का धन्धा एकदम मन्द पड़ गया है,उनकी विद्या को पूछने वाले उस कस्बे मे कुछ लोंग ही बचे हैं। यह बाजारी करण उनके गले का फन्दा बनकर आया है जिसको न हो वे निगल पा रहे हैं और न उगल पा रहे हैं। वे बाजारीकरण से नाराज भी है और उससे प्रभावति भी हैं। एक तरफ साइनबोर्ड लगाने वाले सुखदेव से जलते हैं। उसके इक्के वाले घोडे.की आलोचन करते हुए कहते है ये सब जेब कतरने का तरीका है "—- पूछो, मरीजका इलाज करना है कि रोब –दाब दिखाना है।" दूसरी ओर आयुर्वेद का बखान करते हुए कह बैठते हैं अंग्रेजी दवा देने वाले डॉक्टर अपने आले से रोगी की आधी जान सुखा डालते हैं जब कि "आयुर्वेदी नब्ज देखना तो दूर, चेहरा देखके रोग बता देते हैं। इस तरह वैद्य जी कभी साइन बोर्ड की आलोचना करते हैं तो कभी एक नये अन्दाज में उसके महत्व को भी बताने से परहेज नहीं करते और कहते हैं कि वगैरे पोस्टर चिपकाए सिनेमावालों का काम नहीं चलता।" इसीलिए अपना मंदा पड़ता काम चलाने के लिए वे भी साइनबोर्ड रंगवाने लगते हैं। बाजारवाद के कारण आज के दिग्भ्रमित जीवन की छटपटाहट और चमक –धमक के बीच दम तोड़ती जीवन शैली का चित्रण करना कहानीकार का उद्देश्य कहा जा सकता है। यह कहानी केवल मूल्यों के टूटने का ही उद्घाटन नहीं करती बल्कि संघर्ष की प्रेरणा भी देती है।

४.६ चारित्रिक विशेषताएं

इस कहानी में वैद्यजी के अलावा किसी भी पात्र के चरित्र का विकास पूर्ण रुप से नही हुआ है। वैद्यजी इस कहानी के केन्द्रीय पात्र हैं। उनकी जीवन शैली और विचारों को ध्यान में रखते हुए पूरी कहानी का ढ़ाचा तैयार किया गया है। वे बाजारीकरण से नाराज भी हैं पर किसी विशेष अन्दाज में उसके महत्व को बताने के लिए मजबूर भी हैं। वे व्यवहार और व्यवसायिक गरिमा को अच्छी तरह समझते हैं इसीलिए वे रोगी की जगह आये गप्पेबाजों और कनस्तर रखने आये लोगों से सही व्यवहार करते हैं। उनका हाल-चाल पूछते हैं। वे दूरदृष्टि रखने वाले व्यक्ति हैं क्योकि वे इन्हें भविष्य का ग्राहक मानते हैं। "इसीलिए न चाहते हुए भी मिठास बोलते हैं। उनकी मान्यता है कि "दुनिया –दिखावा भी कुछ होता है। हो सकता है, कल यही आदमी बीमार पड़ जाए या इसके घर में किसी को रोग घेर ले। "इसलिए अपना व्यवहार और पेशे की गरिमा चौकस रहनी चाहिए।" वैद्यजी समय और परिस्थिति के बदलते तेवर को समझते हैं इसीलिए ठण्ड पड़ते अपने धन्धे को देखकर लेखपालों के रजिस्टारों की नकल बनाने और रोगियों को तांबीज बांधने का काम करने लगते हैं। इससे इनके संघर्षशील व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। वैद्य जी मिलनसार व्यक्ति हैं। वे उस कस्बे में सभी को जानते और पहचानते हैं। तभी तो खलासी के इन्तजार में बैठे वैद्यजी से आते – जाते लोग पूछते हैं कि वे दोपहर को खाना-खाने घर क्यों नही गये। इस प्रकार कहानीकार ने वैद्यजी के माध्यम से युगीन संवेदना ओर कस्बाई आत्मीयता को उभारने का भरसक प्रयत्न किया है।

वैद्यजी के अलावा इस कहानी में सुखदेव, दीनानाथ, सैयदअली पेन्टर, रामचरन जैसे लोगों का भी जिक्र किया गया है। सुखदेव बाबू साइनबोट लगाकर कम्पौण्डर से डॉक्टर बन जाते हैं। उनकी आमदनी बढ.जाती है । वे बुधईवाला इक्का –घोड़ा खरीद लेते हैं। बाजारवाद से उनकी जीवन शैली एकदम बदल जाती है। पुरानी जीवन शैली के समर्थक वैद्यजी उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। साइन बोर्ड लगाने से सुखदेव की औकात बढ़जाती है।

सैयदअल्ली एक पेन्टर है। बाजारवाद ने उसके महत्व को भी बढा दिया है। दीनानाथ के जीवन शैली को भी बाजारवाद ने बदल कर रख दिया है । साइन बोर्ड लगाने के कारण उसके दूकान की विक्री बढ गयी है।

इस प्रकार बाजारवाद का जो प्रभाव अब छोटे-छोटे शहरों में पड रहा है और पुरानी जीवन शैली और आधुनिक जीवन शैली के बीच जो अन्तर्द्वन्द्व उभर रहा है उसको वैद्यजी के चरित्र –चित्रण के माध्यम लेखक ने प्रस्तुत किया है। अन्य चरित्र जो सहायक पात्र के रुप में आये हैं वे वैद्यजी के अन्तर्द्वन्द्व को उभारने में सहायक सिद्ध होते हैं।

४.७ शिल्प विधान

कमलेश्वरी की कहानियों में कस्बाई संस्कृति का प्रभाव उनके कथ्य और शिल्प दोनों पर है। इनकी भाषा एकदम सधी हुई कस्बाई मनोवृत्ति को व्यक्त करने में पूर्ण सफल है। कहानी के आरम्भ का यह वाक्य "चुंगी –दप्तर खूब रंगा -चुंगा है।" कहानी के भाव और परिवेश की क्षेत्रीयता को उभारने में पूर्ण समर्थ है। पूरी कहानी में भाषा का प्रवाह कहीं भी टूटता बिखरता नहीं दिखाई देता है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा सरस और प्रभावशाली हो गई है जैसै ——' ऐरे –गैरे पंचकल्यानी' का प्रयोग। भाषा का गठन पात्रों की मानसिकता और कथ्य से अभिन्न रूप से जुड़ा है। कमलेश्वर की इस कहानी में भाषा की चित्रात्मकता का भी दर्शन होता है, जैसे "धन्वर्तार औषधालय का बोर्ड दुकान की गर्दन में ताबीज की तरह लटक गया।"

इस प्रकार यह कहानी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी एक आदर्श कहानी कही जा सकती है।

४.८ समीक्षत्मक प्रश्न

१. 'गर्मियों के दिन' कहानी की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए।
२. वैद्यजी के चरित्र के माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है ?
३. 'गर्मियों के दिन' कहानी के शीर्षक के औचित्य पर प्रकाश डालिए।
४. कहानी के तत्वों के आधार पर 'गर्मियों के दिन' कहानी की समीक्षा कीजिए।

४.९ लघूत्तरी प्रश्न

१. लेखक ने साइनबोर्ड के महत्व का प्रतिपादन किस प्रकार किया है ?

२. कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।

३. वैद्यजी ने अंग्रेजी दवा देने वाले डॉक्टर और आयुर्वेदिक दवा देने वाले डॉक्टर के उपचार पद्धति के अन्तर को किस प्रकार स्पष्ट किया है ?

४. वैद्यजी एक दिन दोपहर में घर खाना –खाने क्यों नही गये ? उन्हें दोपहर में दुकान पर बैठे देख लोगों की क्या प्रतिक्रिया हुई ?

५. 'वैद्यजी बाजारीकरण से नाराज भी हैं और उसका हिस्सा भी।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

६. लेखक ने इस कहानी में कस्बाई जीवन की किन-किन विशेषताओं की और हमारा ध्यान आकर्षित किया है ?

४.१० वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. साइनबोर्ड लगाने का क्या अर्थ है ?

२. साइनबोर्ड लगाने से कौन कम्पौंडर से डॉक्टर हो गया ?

३. वैद्यजी अपने धन्धे को ठण्डे पड़ते देखकर और कौन-कौन से काम करने लगे ?

४. चुंगी –दप्तर के फाटक पर क्या लगाये गये हैं ?

५. चुंगी –दप्तर के बोर्डो को किसने बनाया है ?

६. दीनानाथ हलवाई की दुकान पर दूध पीनेवालों की संख्या क्यों बढ़ गई ?

७. साइनबोर्ड पर चुंगी –दप्तर का नाम किन-किन भाषाओं में लिखा गया है ?

८. वैद्यजी ने साइनबोर्ड के महत्व को किस रुप में स्वीकार किया है ?

९. रामचरन ने किस नए चमत्कार की खबर दी ?

१०. वैद्यजी ने जब बुधईवाला इक्का –घोड़ा खरीदने की बात सुनी तो उस पर उन्होंने अपनी क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की ?

११. वैद्यजी के यहाँ रोगी की जगह कौन-कौन आकर बैठने लगे ?

१२. रेल्वे का खलासी वैद्यजी के यहाँ क्यों आया था ?

१३. वैद्यजी ने अपना साइनबोर्ड किससे तैयार कराया ?

१४. वैद्यजी ने साइनबोर्ड पर अपने औषधालय का क्या नाम लिखवाया ?

१५. दोपहर बिताकर वापस आये बच्चनलाल ने वैद्यजी से क्या पूछा ?

४.११ महत्वपूर्ण अवतरण

१. वकील – मुख्तार के लड़के डॉक्टर होने लगे। खून और संस्कार से बात बनती है—- हाथ में जस आता है। वैद्य का लड़का वैद्य होता है। आधी विद्या लड़कपन में जड़ी-बूटियाँ कूटतें –पीसते आ जाती है।

२. बगैर पोस्टर चिपकाए सिनेमावालों का भी काम नहीं चलता। बड़े – बड़े शहरों में जाइए, मिट्टी का तेल बेचने वाले की दुकान पर साइनबोर्ड मिल जाएँगा। बड़ी जरुरी चीज है। बाल –बच्चों के नाम तक साइनबोट हैं नहीं तो नाम रखने की जरुरत क्या है ?

३. सबकी रजिस्टरी हो चुकी, भाई। ऐरे –गैरे पंचकल्यानी जितने घुस आये थे उनकी सफाई हो गई। अब जिनके पास रजिस्टरी होगी वही वैद्यक कर सकता है।

४. चाहे नाक सामने से पकड़ लो, चाहे घुमाकर। सैयदअली के हाथ का लिखा बोट रोगियों को चंगा तो कर नहीं देता। अपनी –अपनी समझ की बात हैं।

५. लेकिन दुनिया- दिखावा भी कुछ होता है। हो सकता है, कल यही आदमी बीमार पड़ जाए या इसके घर में किसी को रोग घेर ले । इसीलिए अपना व्यवहार और पेशे की गरिमा चौकस रहनी चाहिए।

५-अ

वापसी

इकाई की रुपरेखा

५अ.१ उषाप्रियंवदा और उनकी कृतियाँ
५अ.२ वापसी का आशय
५अ.३ कथावस्तु
५अ.४ चारित्रिक विशेषताएं
५अ.५ देश काल – वातावरण
५अ.६ समीक्षात्मक प्रश्न
५अ.७ लघूत्तरी प्रश्न
५अ.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न
५अ.९ व्याख्या के लिए महत्वपूर्ण अवतरण

५अ.१ कहानी लेखिका उषा प्रियंवदा और उनकी कृतियाँ

हिन्दी कहानीकारों में उषा प्रियंवदा का स्थान अग्रणी है। आपने इलावाद विश्वविद्यालयसे अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। इसके पश्चात वहीं अग्रेजी विभाग में अध्यापन करने लगी। आजकल आप अमेरीका के इण्डियन विश्वविद्यालय में आधुनिक अमेरिकी साहित्य पर अनुसंधान कर रही हैं। पत्र –पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रायः छपती रहती हैं। आपकी कहानियों में आधुनिक जीवन का एकाकीपन, उदासी, यथार्थ, गहरी संवेदनाशीलता के साथ उभरकर आया है। बौद्धिक चेतना के गहरे स्तरों को वाणी देना उनके लेखन की विशेषता है।

उषा प्रियंवदा उन लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने ईमानदारी से आधुनिकता को स्वीकारा है। जीवन के यथार्थ को और अनुभूत सत्यों को अभिव्यक्त करने में आपने जिस साहस का परिचय दिया है, वह निश्चय ही स्तुत्य है।

नारी की बदलती हुई मान्यताओं को, नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को इनकी कहानियों और उपन्यासों मे आसानी से खोजा जा सकता है। उन्होंने समकालीन युग-बोध को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की है और उसके यथार्थ आयामों को सत्य अभिव्यक्ति देने में ही उनकी प्रतिबद्धता सम्मिलित है। इसलिए उनकी कहानियाँ आज के परिवारिक जीवन के उन उभरे –दबे कोनों को उभारती हैं, जो धीरे –धीरे गल रहा है और किसी –न- किसी

प्रकार नई मान्यतायें एवं मूल्य जिनका स्थान ले रहे हैं। उनकी कहानियों में कथा –तत्व प्रबल है और उनमें शिल्पगत बिखराव नहीं पाया जाता है। जीवन में वे विवेक को महत्व देती हैं। भावुकता उनमें अवश्य है, किन्तु साथ ही वैचारिक गरिमा, संयम और गहराई भी है।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में जगह-जगह मानवीयता और करुण के स्वर भी फूट पड़ते हैं। उनकी कहानियों में संवेदना की ताजगी और भाषा की वस्तुपरकता देखने योग्य है। इनके कथा साहित्य के पात्र विविधता और मार्मिकता लिए हुए भी, आर्थिक और आपसी सम्बधों के बीच घुटते हुए भी, कोई बुनियादी सवाल नहीं उठाते।

उषा प्रियंवदा का साहित्य सृजन क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। वे मुख्यत: कथाकार हैं । फिर वसंत आया, जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'कितना बड़ा झूठ',' कोई एक दूसरा', और मेरी प्रिय कहानियाँ , उनके कहानी संग्रह हैं। 'पचपन खंभे लाल दीवारे', 'रुकोगी नही राधिका', शेषयात्रा तथा अतंर्वशी इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

उषा प्रियंवदा के कथालेखन में भारतीय और विदेशी परिवेश के अनुभवों को एक साथ उभारा गया है। साठोत्तर युग की स्त्री का आत्मविश्वास भरा रुप उनकी कहानियों का केन्द्र बिन्दु है। सभ्य समाज में परिवर्तित होते जीवन –मूल्यों को उन्होंने बड़ी बारीकी से विश्लेषित किया है।

५अ.२ वापसी कहानी का आशय

प्रियंवदा द्वारा रची गई 'वापसी' कहानी नई कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। १९६० में इस कहानी को सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। यह कहानी बदलती परिस्थितियों में पारिवारिक सम्बन्धों पर आधारित है। स्वतंत्र्यता के बाद की कहानियों में पारिवारिक संबंधो की अनेक कहानियाँ लिखी गई हैं। पुरानी और नई पीढ़ी के संघर्ष को यहाँ वाणी मिली है। पति और पत्नी, पिता और पुत्र, भाई और बहनों के सम्बन्धों की टूटन और शिथिलता यहाँ परिलक्षित होती हैं। बौद्धिक विकास पाश्चत्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव जीवन-संघर्ष में बृध्दि, स्वकेन्द्रित चिंतन आदि के कारण पुरानी मान्यताएं और लिहाज समाप्त हो रहें हैं। समकालीन समाज मे व्याप्त इस गंभीर स्थिति को लेखिका ने रेल्वे से अवकाश प्राप्त गजाधर बाबू के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गजाधर बाबू पैंतीस वर्ष नौकरी के उपरांत सेवानिवृत्त होकर अपने घर लौटते हैं। नौकरी के दौरान उन्होंने अनुभव किया कि उनके बच्चे और पत्नी उनकी ससम्मान सेवा करते हैं परन्तु सेवानिवृत्ति के बाद घर आने पर उनकी इस खुशी पर पानी फिर जाता है। वे अनुभव करने लगते हैं कि वे घर के लिए एक अनचहे मेहमान हैं। पुत्र, पुत्री, वधू सभी उनसे उदासीनता दिखाते हैं। पत्नी गृहस्थी के कामो में इतना व्यस्त रहती है कि उसके पास गजाधर बाबू के साथ बैठने तक का समय नहीं है । इस असहाय स्थिति से ऊबकर वे नई नौकरी की तलाश में पड़ जाते हैं । उन्हें रामजीलाल की मिल में नौकरी मिल जाती है। जाते –जाते अपने साथ अपनी पत्नी को भी चलने के लिए कहते हैं लेकिन उनकी पत्नी जाने से इन्कार कर देती है। अन्त में वे विवश होकर फिर से अकेले नौकरी करने चले जाते हैं। गजाधर बाबू के जीवन की विडंवना के माध्यम से लेखिका ने हमारे आधुनिक मध्यवर्गीय समाज पर कठोर व्यंग्य किया है। उषा प्रियवंदा ने इस सत्य को सहज- स्वाभाविक भाषा के

माध्यम से हृदयस्पर्शी बना दिया है कि आज हमारे समाज में ऐसे अनेक उपेक्षित वृदध हैं जो अन्त समय में रोते –कलपते या तो नौकरीकरने के लिए विवश हो जाते हैं या तो वृद्धाश्रम में जाकर सम्बन्धों की कडवाहट से आँसू बहाते दिन विताते हैं या घर में ही अपमान,तिस्कार का घुट पीते हुए अकेलेपन, और उदासी का जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं

५अ.३ 'वापसी' कहानी की कथा –वस्तु

कहानी की कथा –वस्तु पूर्ण पारिवारिक है। गजाधर बाबू ३५साल की रेलवे की सेवा के पश्चात सेवा –निवृत्त होते हैं। उन्हें रेलवे का क्वार्टर छोड़ते हुए कष्ट हो रहा है, लेकिन प्रसन्नता इस बात की है कि वह अपने परिवार के साथ रहेंगे। वर्षों का परिवार के साथ रहने का उनका स्वप्न साकार होगा।

वे घर आते हैं। परन्तु घर का वातावरण सर्वथा बदला हुआ है। घर का पूरा कार्य उनकी पत्नी करती है जब कि उनका बेटा नरेन्द्र, बेटी बसन्ती, बहू बैठी रहती हैं। वे इस वातावरण में अपने को मिला नही पाते हैं। सेवानिवृत्त होने के कारण आर्थिक बचत पर भी उनका ध्यान जाता है। मजामस्ती में लीन बेटी, बहू को घर के काम की जिम्मेदारी देते हैं। बसन्ती से वे कह देते हैं कि 'आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है।' सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनायेगी। बसन्ती मुँह लटकाकर कहने लगती है कि "बाबू जी पढ़ना भी तो होता है। गजाधर बाबू उसे समझाते हुए बोले कि "तुम सबेरे पढ़ लिया करो।" 'तुम्हारी माँ बूढ़ी हो गई है, उसके शरीर में अब शक्ति नहीं बची हैं।" तुम और तुम्हारी भाभी दोनों मिलकर घर के काम में हाथ बँटाओ।"

बसन्ती चुप हो गई। उसके जाने के बाद उसकी मॉ ने धीरे से कहा कि "पढ़ने का तो बहाना है। उसे शीला से ही फुरसत नहीं, बड़े- बड़े लड़के हैं, उस घर में, हर वक्त वहाँ घुसा रहना उसे नहीं सुहाता।" गजाधर बाबू इन सब बातों को सुनते रहे और नाश्ताकर बैठक में चले जाते हैं। घर छोटा था और गजाधर बाबू को रहने के लिए कोई स्थायी व्यवस्था उस घर में नहीं हो पायी थी। उनकी दशा उस घर में एक मेहमान की तरह थी। उसी बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकार बीच में उनके लिए पतली –सी खाट डाल दी गई थी। गजाधर बाबू को अनुभव होने लगा है, कि उनके लिए पूरे घर में कोई जगह नही है। उन्हे रह-रहकर रेलवे की नोकरी के दिन याद आने लगते हैं। उनकी पत्नी हमेशा चक-चक करती रहती है। कोई न कोई शिकायत लेकर वह गजाधर बाबू के पास पहुँच जाती है। गजाधर बाबू अपने ढंग से उसे समझाते हैं। लेकिन उन्हें अनुभव होता है कि उनकी पत्नी भी उनके प्रति सहानिभूति नहीं रखती। उन्हें लगने लगा कि जिस पत्नी के कोमल हाथों के स्पर्श से, जिसकी मुस्कान की याद से सम्पूर्ण जीवन काट दिया था। वह लावण्यामयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई है, उसकी जगह आज जो स्त्री है वह उनको सही समझ नहीं पा रही है।"

ज्यों-ज्यों गजाधर बाबू परिवार को उनकी जिम्मेदारी की याद दिलाने लगे, उनके ऊपर काम का भार डालने लगे, त्यों- त्यों घर में विद्रोह की भावना उठने लगती है। परिवार के लोग अपनी खुशी और स्वतंत्रता के लिए उन्हें बांधक मानने लगते हैं। उनका बड़ा लड़का अपनी पत्नी के साथ अलग होने की इच्छा प्रकट करने लगता है। गजाधर बाबू नहीं समझ पाते कि

किस प्रकार अन्दर परिवर्तन लावें। पत्नी उन्हें किसी भी कार्य में हस्तक्षेप करने से मना करती है और वे चुप हो जाते हैं। हर कार्य पूर्ववत होने लगता है । लेकिन इसी बीच एक बात पर उन्होंने नौकर को निकाल दिया, घर में तूफान खड़ा हो जाता है। ठीक उसी दिन रामजी लाल की मिल से उनका नियुक्ति पत्र मिलता है। जाने के पहले वे पत्नी को साथ चलने को कहते हैं परन्तु वह तैयार नहीं होती। अन्त में विवश होकर गजाधर बाबू अकेले फिर से नौकरी करने चल देते हैं।

कथानक का आरम्भ पात्र- परिचय से शुरु होकर वातावरण पर चला जाता है आरोह की स्थिति उस समय आती है जब वे अपने परिवार में ही अपने को अलग सा पाते हैं। परिवार के लोगों की स्वतंत्रता उन्हें खटकती है वे उन्हीं मानसिक संघर्षो में उलझे हुए हैं। बड़े पुत्र के अलग होने की घोषणा कहानी की चरम सीमा है। तथा वहीं से अवरोह की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। कहानी का अन्त पुन: सेवा-कार्य में जाने पर होता है। इसे कहानीकार ने 'वापसी' कहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा-वस्तु में उन सभी तत्वों का समावेश है जो एक कहानी के लिए होने चाहिए। अंत: कथानक की दृष्टि से यह कहानी पूर्ण सफल हैं।

५अ.४ चारित्रिक विशेषताएं

पात्र-परित्र चित्रण की दृष्टि से अगर 'वापसी' कहानी का मूल्यांकन करें तो हम पाते हैं कि गजाधर बाबू इस कहानी के प्रमुख पात्र हैं। वे रेलवे विभाग में स्टेशन मास्टर के पद पर अधिष्ठित हैं। नौकरी के दरम्यान उनके मन में परिवार के साथ रहने की तीव्र इच्छा है लेकिन रेलवे की नौकरी में स्थानान्तरण होता रहता है, इसलिए स्थायीरुप से परिवार के साथ रहना उन्हें मुश्किल था । जब छुट्टियों में परिवार उनके साथ रहने के लिए आता था तो उनका चेहरा खिल उठता था। जब परिवार कुछ दिन रहने के बाद चला जाता था तो गजाधर बाबू दु:खी हो जाते थे। रह-रहकर उनका परिवार उन्हें याद आने लगता था। पुरानी परम्परा के समर्थक के रुप में गजाधर बाबू का चरित्र यहाँ परिलक्षित होता है। ३५ वर्ष की रेलवे की नौकरी से जब वे सेवा निवृत्त होकर घर चलने के लिए तैयार होते हैं तो बहुत दु:खी हो जाते हैं गनेशी के प्रति उनकी संवेदना जाग उठती है। वे गनेशी से यह कहते हुए अपनी सहानिभूति व्यक्त करते हैं कि "कभी कुछ जरुरत हो तो लिखना। इस अगहनतक बिटिया की शादी कर दो।" एक तरफ वर्षो की नौकरी से सेवा निवृत्त होकर उस स्थान को छोड़ने और वहाँ के लोगों का साथ छोडने का दु:ख तो दूसरी और परिवार के साथ मिलकर रहने की साध पूरी होने की खुशी, गजाधर बाबू के अन्दर हिलोरे ले रही है। गजाधर बाबू स्वभाव से स्नेही व्यक्ति लगते हैं और स्नेह के आकांक्षी भी है। लेकिन जब वे सेवानिवृत्त होकर घर पहुँचते हैं तो उन्हें एक मेहमान की तरह घर में स्थान मिलता है। वे अपने बेटे, बहू बेटी की खुशी में भागीदार होना चाहते हैं लेकिन उनकी यह चाह भी पूरी नहीं होती। गजाधर बाबू जब अपनी बातों को परिवार के ऊपर थोपने लगे तो परिवार मे खल बली मच गयी। वे परिवार मे अपने को नहीं मिला पाते हैं। वे अपने ही मकान में पराये से बन जाते हैं। उनके बच्चे ही उन्हें भय की दृष्टि से देखने लगते हैं। वे समय के बदलते तेवर को नहीं पढ़ पाये। परिणाम यह हुआ कि वे मानसिक संघर्ष और तनावों से घिर जाते हैं। अन्त में रामजी लाल की चीनी मिल में काम करने चले जाते हैं।

इस प्रकार गजाधर बाबू के अलावा गनेशी, नरेन्द्र, बसन्ती, पत्नी और बहू ये सब सहायक पात्र के रुप में इस कहानी में दिखाई देते हैं। गनेशी गजाधर बाबू का नौकर है जिसने पत्नी के साथ बहुत दिनो तक गजाधर बाबू की सेवा की है। रोज सुबह पैसेंजर आने से पहले गर्म- गर्म पूरियाँ और जलेबी बनाता और जब गजाधर बाबू तैयार हो जाते तो जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता है। वह गजाधर बाबू के प्रति एकदम बफादार और प्रेमी व्यक्ति है। उसके प्रेम का पता इन उक्तियों से लगाया जा सकता है।

"यह डिब्बा कैसा है गनेशी ?" उन्होने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ कुछ गर्व कुछ लज्जा से बोला "घर वाली ने साथ को कुछ बेसन के लडडू रख दिये हैं। कहा, बाबू जी को पसंद है, अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पायेंगे। "कभी –कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहिएगा।"

बासन्ती का चरित्र आधुनिक कॉलेज – छात्रा के रुप में दिखाई देता है जो पढ़ने में कम, सिनेमा देखने, और लड़को से बातें करने में ज्यादा विश्वास करती है। उसके अन्दर माँ-बाप के प्रति न तो सहानिभूति है और न प्रेम। उसकी माँ बुड्ढी हो गई है, कमजोर भी है, दिन-रात गृहस्थी के कामों में लगी रहती है लेकिन बासन्ती पढाई के नाम पर घर से गायब रहती है। माँ के कामों में हाथ भी नहीं बंटाती। गजाधर बाबू द्वारा दी गई जिम्मेदारी पर वह मन ही मन नाराज और क्रोधित हो जाती है।

गजाधर बाबू की बहू का चरित्र आधुनिक बहुओं से एक-दम मिलता जुलता है। वह काम में कम मजामस्ती में ज्यादा दिलचस्पी रखती है। वह पति एवं उनके दोस्तों के साथ बैठक बाजी करने में ज्यादा आनन्दं लेती है। खाना बनाना अपने शान के विरुद्ध समझती है। एक दिन भोजन पकाने की बात से परिवार को छोड़ अपने पति के साथ अलग रहने की धारणा बना लेती है। परिवार के प्रति न तो उसमें प्रेम है और न तो कोई आस्था। वह अपने व्यक्तिगत सुख में सुखी और व्यक्तिगत दु:ख में दु:खी रहने वाली नारी के रुप में इस कहानी में दिखाई देती हैं।

अमर की माँ का चरित्र एक ऐसी माँ के रुप में है जो सब कुछ जानते-सुनते हुए भी अपने को संभाले है। यद्यापि वह पुरानी परम्परा का समर्थक है लेकिन वह जानती है कि ये आधुनिक पीढ़ी के बच्चे उसकी एक भी बात नहीं मानेंगे इसलिए उसने मौन स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वह दो पाटों के बीच पिस रही एक विवश नारी है। पति की दृष्टि में वह दो वक्त भोजन की थाली रखकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझने वाली पत्नी है । "वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रम गई है कि उसका पति उसके लिए कुछ नहीं, वही डिब्बों की दुनिया उसकी दुनिया बन गई है।" पुत्रों और बहू, बेटी के लिए वह उनके सुख का साधन मात्र है जो कठिन परिश्रम करके गृहस्थी सम्भालती है, खाना बनाती है पर बहू, बेटी, बेटे का दिल तनिक भी उसे देख पिघलता नहीं। वह न तो पति की पूर्णअवहेलना कर सकती है और न अपने बेटे, बेटी बहू को ही छोड़ सकती है।

इस प्रकार पात्र तथा चरित्र –चित्रण की दृष्टि से भी यह कहानी एक सफल कहानी है।

५अ.५ देश काल और वातावरण

देश काल और वातावरण की दृष्टि से अगर वापसी कहानी का अध्ययन किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह कहानी किसी एक परिवार की न होकर देश के समस्त परिवार की है। आजहर परिवार में तनाव की स्थिति है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से हमारी परम्परागत मान्यताएं टूट रही हैं, नये लोग पुरानी परम्पराओं में विश्वास नहीं रखते। ऐसी स्थिति में नये पुराने के बीच संघर्ष होता है। इस संघर्ष मे तनाव की स्थिति बनना स्वाभाविक है। इसका परिणाम सामाजिक एवं पारिवारिक विघटन है। इस कहानी में गजाधर बाबू पुरानी पीढ़ी के रुप में प्रस्तुत किये गये हैं और उनके बेटे, बहू, बेटी नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। वे रेलवे की नौकरी करते हुए अपने परिवार के लिए शहर में एक घर बनवा देते हैं, वे परिवार से अत्यन्त प्यार करते हैं और प्यार के आकांक्षी भी है, उनकी मंशा है कि रेलवे की नौकरी के दरम्यान जो पारिवारिक सुख उन्हें नहीं मिला वह सुख वे रिटायर होने के बाद प्राप्त करेंगे। यही इच्छा सभी नौकरी पेशे वाले की होती है। लेकिन जब सेवा निवृत्त होकर लोग घर पहुँचते हैं तो उनके सारे स्वप्न विखर जाते हैं। उन्हें अपने घर में ही बेगानेपन का अनुभव होने लगता है। परिवार के रुखे व्यवहार से वे खिन्न हो जाते हैं। परिवार के सदस्य उनके पेंशन के पैसे से गुलछर्रे भले उडायें पर उनका किसी प्रकार का नियंत्रण उन्हें बर्दाश्त नहीं। ऐसी स्थिति में गजाधर बाबू की तरह रिटायर लोग यह सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं कि "वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र है।" उनके बेटे- बेटी बहू अपनी व्यक्तिगत स्वतञ्यंता के आकांक्षी हैं। तभी तो अमर, बसन्ती का विरोध उभारकर लेखिका ने तनाव की स्थिति को दिखाने का भरसक प्रयत्न किया है।बसन्ती की यह उक्ति "मैं कालेज भी जाऊँ और लौटकर घर में झाडू लगाऊँ, यह मेरे बस की बात नहीं है।" उसी के राग –में राग मिलाता हुआ अमर भी दबे जुबान से कह उठता है "बूढ़े आदमी हैं———चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं।" विचारों की इसी तकराहट का परिणाम गजाधर बाबू का वापसी का निर्णय है। इसे स्वाभिमान की रक्षा के लिए गजाधर बाबू का नैतिक विद्रोह भी कहा जा सकता है। इस विद्रोह या त्रासदी को किसी सिद्धान्त से न जोडकर जीवन के खुरदरे यथार्थ में खोजने का प्रयत्न किया जान चाहिए।

इस प्रकार 'वापसी' कहानी में उषा प्रियंवदा ने नई पीढ़ी और पुरानी पीढी के बीच संघर्ष दिखाकर आज के तनावपूर्ण वातावरण में होने वाले पारिवारिक विघटन की सच्ची झांकी प्रस्तुत की है। अगर यह कहानी घर-घर की कहानी कही आय तो गलत नहीं है।

इस कहानी की रचना तनाव पूर्णवातावरण में मनोवैज्ञानिक आधार पर की गई है। लेखिका ने ऐसी सशक्त भाषा का प्रयोग किया है कि सम्पूर्ण पात्र अपने –अपने निजी व्यक्तित्व के साथ कहानी में उपस्थित हैं। भाषा सरल होते हुए भी चित्रात्मक और व्यंजक है। कहानी के संवाद पात्रों के मानसिक तनाव को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं। कहानी का उद्देश्य पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच संघर्ष दिखाकर तनावपूर्ण स्थिति का ज्ञान कराना है। इन सभी पहलओं पर यह कहानी खरी उतरती है इसी लिए डॉ. बच्चन जी ने ठीक कहा है "उषा प्रियंवदा में वैविध्य और आधुनिक जीवन के अनेक आयाम दिखाई पड़ते हैं।" अंत: कहानी के तत्वों की कसौटी पर भी यह कहानी खरी उतरती है।

५अ.६ समीक्षात्मक प्रश्न

१. 'वापसी' कहानी की कथा –वस्तु संक्षेप में लिखिए।
२. 'वापसी' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
३. कहानी –तत्वों के आधार पर 'वापसी' की समीक्षा कीजिए।
४. गजाधर बाबू का चरित्र- चित्रण कीजिए।

५अ.७ लघूत्तरी प्रश्न

१. नौकरी के दरम्यान गजाधर बाबू दुरवी क्यों थे ?
२. जब गजाधर बाबू रिटायर होकर घर पहुँचे तो उनके परिवार ने उनका किस प्रकार स्वागत किया ?
३. गजाधर बाबू को फिर से नौकरी करने के लिए विवश क्यों होना पड़ा ?
४. 'वापसी' कहानी के शीर्षक के औचित्य पर प्रकाश डालिए।
५. निम्नलिखित पर टिप्पाणियाँ लिखिए:-
   (क) बसन्ती (ख) नरेन्द्र
   (ग) गनेशी (घ) रिटायर होने के बाद गजाधर बाबू की मनोदशा।
   (च) गजाधर बाबू की पत्नी।

५अ.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. गजाधर बाबू किस विभाग में किस पद पर काम करते थे ?
२. गजाधर बाबू कितने साल की नौकरी के बाद रिटायर होकर घर जा रहे थे ?
३. अपने परिवार के रहने के लिए गजाधर बाबू ने कहाँ मकान बनवाया था ?
४. गजाधर बाबू के कितने बच्चे थे ?
५. रिटायर होकर चलते समय गजाधर बाबू ने गनेशी से क्या कहा ?
६. जब गजाधर बाबू घर पर चाय और नाश्ते का इन्तजार कर रहे थे तो उन्हें किसकी याद आ गई और क्यों ?
७. पत्नी की शिकायत पर गजाधर बाबू ने बसन्ती और अपनी बहू को किस काम की जिम्मेदारी दी ?
८. जब शाम को टहलकर गजाधर बाबू घर आये तो उनकी पत्नी बसन्ती के सम्बन्ध में उनसे क्या कहती है ?

५अ.९ महत्वपूर्ण अवतरण

१. उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचिता है।

२. 'वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं।'

३. वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उसकी संपूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केंद्र नहीं हो सकते, उन्हें तो अब उनकी शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया।

४. सभी खर्च तो वाजिब – वाजिब हैं किसका पेट काटूँ? यही जोड-गाँठ करते – करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना न ओढ़ा।

५. "तुम्हें किस बात की कमी हैं अमर की माँ – घर में बहू है, लड़के –बच्चे हैं, सिर्फ रुपये से ही आदमी अमीर नहीं होता।"

६. वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि – सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली।

५-आ

दोपहर का भोजन

इकाई की रुपरेखा

५आ.१ अमरकांत और उनकी कृतियाँ
५आ.२ कहानी की मूल संवेदना
५आ.३ कथावस्तु
५आ.४ वातावरण –देशकाल
५आ.५ चारित्रिक विशेषताएँ
५आ.६ शिल्प योजना
५आ.७ समीक्षात्मक प्रश्न
५आ.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न
५आ.९ महत्वपूर्ण अवतरण

५आ.१ अमरकांत और उनकी कृतियाँ

कहानी आन्दोलन के कहानीकारों में अमरकान्तजी का प्रमुख स्थान है। इन्होंने अपनी कहानियों में प्रेमचन्दजी की विरासत को सहेज कर रखा है। इनका जन्म सन १९२५ मे उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में हुआ । वहीं से इन्होंने 'हाईस्कूल' की परीक्षा उत्तीर्ण की। इष्टरमीडिए की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ये इलाहाबाद आये। लेकिन १९४२ ई. के देशव्यापी स्वाधीनता संग्राम में शामिल होने के कारण इनकी पढाई अधूरी रह गई। बाद में बलिया से इन्होंने इष्टरमीडिट और इलाहाबाद से स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

किसी ने ठीक कहा है कि 'व्यक्ति की शैली उसके व्यक्तित्व का परिचायक होती है।' यह कथन अमरकान्त जी के व्यक्तित्व पर पूर्ण रुप से लागू होता है। अमरकान्त के साहित्य में जिस प्रकार सरलता और, सहजता का दर्शन होता है ठीक उसी प्रकार व्यवहारिक जीवन में वे बहुत ही सरल और सादा जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति रहे। इनके साहित्य संसार के प्रमुख पात्र मध्यवर्गी और निम्नमध्य वर्गी लोग माने जाते हैं। इनका जीवन संघर्षपूर्ण रहा है। वे कभी भी किसी के सामने झुके नहीं। अपने साहित्य के माध्यम से ये हमेंशा जन सामान्य की आवाज को बुलन्द करते रहे।

अमरकान्त जी एक कुशलपत्रकार, उपन्यासकार और कहानीकार माने जाते हैं। एकपत्रकार के रुप में इन्होंने अपने जीवन की सुरुवात की। १९४८ में ये दैनिक पत्र "सैनिक" से जुड़े। इसके बाद 'अमृत –पत्रिका', 'भारत', 'कहानी', और 'मनोरमा' आदि दैनिक और

मासिक पत्रों के सम्पादक रहे। पत्रकारिता के साथ ही उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में भी पदार्पण किया।

'जिन्दगी और जोंक 'देश के लोग', 'मौत का नगर', मित्र मिलन', 'कुहासा' ' एक धनी व्यक्ति का बयान', 'तुफान', कला प्रेमी, आदि इनके कहानी संग्रह हैं।

कहानी के साथ –साथ इन्होंने 'सूखा पत्ता', 'आकाश पक्षी', 'काले उजले दिन', 'सुखजीवी' 'बीच की दीवार' 'ग्राम सेविका', 'कॅटीली राह के फूल' ' खुदीराम' इन्हीं हथियारों से जैसे उपन्यासों की भी रचनाएं की। बाल साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी अमरकान्त जी का विशिष्ट स्थान है।

अमरकान्त की कहानी की मूल विशेषताएं

अमरकान्त की कहानियों का अगर अध्ययन किया जाय तो, यह बात उभरकर सामने आती है कि अमर कान्त जी ने अपनी कहानियों में मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के जीवन अनुभव, अभाव, संघर्ष और जीवन आस्था को स्थान दिया है। इनकी कहानी के पात्र साधारण जीवन स्थितियों में भी अन्यायपूर्ण वातावरण के सामने झुकते नहीं। इनके पात्र कभी करुण और कभी निरीह, भले लगते हों पर अपनी निरीहता को छिपाते हुए परिस्थितियों के सुधाार की आश रखते हैं। इसी लिए इनकी कहानियों में जहाँ सामाजिक विसंगतियो के प्रति विद्रोह दिखाई देता है वहीं मानवीय प्रेम का भी दर्शन होता है। इनका उददेश्य अपनी कहानियों के माध्यम से किसी आदर्श की स्थापना करना नहीं बल्कि यथार्थ से सीधे टकराना है। यही कारण है कि साधारण व्यक्ति की साधारण जीवन कथाएं भी इनकी लेखली का स्पर्श पाकर असाधारण बन जाती हैं। अमरकान्त अपने अनुभव सत्य को प्रमाणिकता के साथ व्यक्त करते हैं। इसी लिए चाहें दोपहर का भोजन कहानी हो चाहे जिन्दगी और जोक हो चाहे इनकी अन्य कहानियाँ हों सभी में लाचारी बेबसी, अभाव दिखाई देता है लेकिन बेवसी अभाव का सामना करते हुए कहानी के पात्र अपने विवेक बुद्धि को भूलते नहीं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि यह विवशता ज्यादा दिन नहीं रहेगी, धीरे –धीरे सुधर जायेगी। इसी लिए इनकी कहानियों का प्रत्येक पात्र अपने परिवेश की स्थिति को जानते हुए भी व्यक्त नहीं करता संघर्ष पथ पर आगे बढ़ता है ।

५आ.२ कहानी की मूल संवेदना

आज अर्थ जीवन के लिए महत्वपूर्ण बन गया है। इसी अर्थ के आधार पर रिश्ते बनते-बिगडते हैं। महँगाई - बेरोजगारी आदि समाज संहारक कुरीतियों ने सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर क्रूर आक्रमण, किया है। समाज का सम्पूर्ण ढाँचा इनसे ग्रस्त है। प्रतिभा मूल्यांकन का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है। शोषक और शोषित के बीच अब भी दॉव पेच चल रहा है। उचित – अनुचितका कोई स्तर नहीं रहा। इस अर्थ की विषमता ने समाज में जहाँ वर्गभेद किया है, वहीं समाज में आज वर्ग-संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी है। आम आदमी की दशा तो एकदम दयनीय है वह कड़ी मेहनत करते हुए भी प्रति-दिन अपने सपनों को टूटते हुए पाता है।विवशता, लाचारी में जीने के लिए मजबूर है। मुद्रा – स्फीति तथा मुद्रा – अवमूल्य की बातें उसके पल्ले नहीं पड़ती। वह अपने जीवन की घटनाओं से टकराता (हुआ आज तक अधिक सुधार) की आश में जिन्दा

है। 'दोपहर का भोजन' कहानी मध्यमवर्ग की आर्थिक स्थिति को बडे संयत रुप से उभारती है और आर्थिक अभावों से जुझते परिवार अन्तर्विरोधों, संघर्ष, एवं जीवन आस्था की सच्ची तस्वीर पेश करती है। इस कहानी में लेखक ने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि आर्थिक अभाव में जीते हुए परिवार को घर मे शान्ती बनाये रखना आवश्यक है। इसीलिए इस कहानी में आर्थिक आघात-प्रतिघात के बीच जीते हुए सभी पात्र अपनी आर्थिक परिस्थिति को अच्छी तरह जानते हैं पर जानते हुए भी उस कठिनाई को व्यक्त नहीं करते। जो भी सदस्य खाने के लिए बैठता है वह जानता है कि उसके हिस्से की रोटी कितनी है? उससे अधिक रोटी लेने का अर्थ है दूसरे का भोजन छीनना है। कहानी की नायिका सिद्धेश्वरी के मान मनुहार करने पर भी कोई परिवार का सदस्य ज्यादा खाने को तैयार नहीं है, वह कोई न कोई बहाना बनाकर उठकर चल देता है।"आर्थिक विपन्नता का अहसास सबको है लेकिन उसे स्वीकारते हुए भी खुलकर कहने का साहस किसी को नहीं है। हर सदस्य को विश्वास है कि एक न एक दिन उनकी यह आर्थिक परिस्थिति बदल जायगी। वे इसी भविष्य के सुधार की आश में संघर्षरत दिखाई देते हैं। यह कहानी आर्थिक अभाव, बेरोजगारी तथा मजदूरों की छंटनी जैसी समसामयिक समस्याओं का उदघाटन करती हुई आर्थिक अभावों में कठिनाइयों का अनुभव करते हुए पारिवारिक जीवन को शान्ति पूर्ण बनाये रखने तथा संघर्ष और जीवन आस्था का संदेश देती है।

५आ.३ कथावस्तु

कहानी का आरम्भ सिद्धेश्वरी के पानी-पीने और उस पानी के खाली पेट में पड़ने से उत्पन्न कले जे के दर्द से होता है। वह कलेजे के दर्द से जमीन पर गिर जाती हैं। आधे घंटे के बाद वह होश में आती है। वह इधर –उधर देखती है । सहसा उसकी निगाह नगे – धड़ंगे कमजोर ओसारे में पडे अध टूटे खटोले पर सोये प्रमोद बेटे पर पड़ती है जिसके खुले मुँह पर मधुमक्खियाँ उड़ रही है जो उसकी आर्थिक मजबूरी और बदहवासी के साक्षी है।

पूरी कहानी का ताना बाना सिद्धेश्वरी के परिवार और सिद्धेश्वरी के क्रिया-कलाप को ध्यान में रखते हुए बुना गया है। सिद्धेश्वरी ही इस कहानी की मुख्य नायिका के रुप में दिखाई देती है। दोपहर के बारह बज गये हैं। सिद्धेश्वरी खाना बनाकर दोपहर के समय परिवार के एक-एक सदस्य का इन्तजार कर रही है। कड़ी गर्मी और गर्म हवा के चलने से वह व्यग्र हो जाती है। उसी समय उसका बड़ा लड़का रामचंद आता दिखाई देता है। वह फुर्ती से एक लोटा पानी ओसारे के पास नीचे रख देती है और चौके में जाकर खाने के स्थान को जल्दी –जल्दी पानी से लीपने- पोतने लगती है। पीढा रखकर वह जैसे ही दरवाजे की ओर देखती है किरामचन्द अन्दर आ गया। वह चौकी पर बैठ गया। थोडी देर में वह लेट जाता है। उसका मुँह लाल तथा चढा हुआ था, उसके बाल अस्त-व्यस्त थे। उसे देखकर लगता था कि वह गुस्से की स्थिति में है। इसलिए सिद्धेश्वरी डर कर उससे कुछ कहने की हिम्मत नही जुटा पा रही थी। लेकिन धीरे – धीरे हिम्मत जुटाते हुए जा कर बोली 'बड़कू बड़कू'। पर उसे जब कोई उत्तर नहीं मिला तो डर गयी, बड़ी हिम्मत करके उसके सिर पर अपना हाथ रख देती है। हाथ के स्पर्श से रामचन्द्र ने आँखे खोली। पहले सुस्त नजरों से माँ को देखा फिर जूते निकालकर हाथ-पैर धोकर सन्न होकर चौकी पर बैठ गया। जब सिद्धेश्वरी समझ जाती है कि अब सामान्य स्थिति है तो वह रामचन्द्र से कहती है खाना तैयार है । यही लगाऊँ क्या? रामचन्द्र ने तपाक से पूछा कि "बाबू जी खा चुके। " सिद्धेश्वरी ने कहा "आते ही होंगे।" रामचन्द्र पीढे पर बैठ गया। उसकी उम्र

लगभग २१ वर्ष की है, कद का लम्बा है गोरा रंग है। वह अपनी तबियत से प्रूफरीडिंग का काम एक स्थानिक दैनिक समाचार दप्तर में सीख रहा था, उसकी पढाई इष्टरमीडिएट तक की है।

पीढ़े पर बैठे हुए रामचन्द्र के सामने खाने की थाली लाकर सिद्धेश्वर रख देती है। मान मनुहार करती हुई उसे खिलाने लगती है। उसी समय रोटी का एक टुकड़ा निगलते हुए रामचन्द्र मोहन के बारे में पूछ बैठता है। मोहन सिद्धेश्वरी का मझला लड़का है, वह कहाँ गया है,क्या करने गया है? इसके बारे में न जानते हुए भी वह झूठ कह देती है कि "वह किसी लड़के के यहाँ पढने गया है। सिद्धेश्वरी कोई ऐसी बात नहीं बोलना चाहती है जिससे घर की शान्ति भंग हो। सिद्धेश्वरी समझती है कि घर के भीतर की मजबूरी और बाहरी दुनिया के संघर्ष उसके परिवार को तोड़ सकते हैं। इसी लिए वह झूठ –सच बोलकर स्थिति की कडुवाहट को कम करने की कोशिश करती है। आर्थिक आघातों के बावजूद वह परिवार के स्नेह सूत्रों को बचाने के लिए कटिबद्ध दिखती है। रामचन्द्र अपने हिस्से की रोती को खाकर पानी पीकर उठ जाता है।

सिद्धेश्वर के बार-बार कहने पर भी रामचन्द्र और रोटी लेने से इन्कार कर देता है। उसके थोड़ी देर बाद सिद्धेश्वरी का मझला लड़का मोहन आ जाता है, वह हाथ- पैर धोकर पीढ़े पर बैठ जाता है। सिद्धश्वरी ने उसके सामने थाली रखते हुए प्रश्न किया "कहाँ रह गए थे बेटा? भैया पूछ रहा था।" मोहन ने उत्तर दिया की वह कहीं नहीं गया था यहीं तोथा। वह पंखा झूलती, प्यार से मोहन को खिलाती हुई और उसके 'मूड' को ठीक करने के लिए झूठ बोलती है कि "बड़का तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहा था।" 'वह भी अपने घर की मजबूरी को समझता है। बार –बार मनुहार करने पर भी वह और रोटी लेने से इन्कार कर देता हैं उसके बदले एक कटोरा दाल माँग कर सुड-सुडकर पीने लगता है तो उसी समय सिद्धेश्वरी के पति मुंशी चन्द्रिका प्रसाद आ जाते हैं। मोहन दाल को पीकर तथा पानी के लोटे को हाथ में लेकर बाहर चला जाता है।

उसके जाने के बाद मुन्शी चन्द्रिका प्रसाद भी हाथ मुँह धोकर पलथी मारकर बैठ गए। सिद्धेश्वरी खाने की थाली लाकर उनके सामने रख दी। 'वे बैठे, रोटी के एक-एक ग्रास को इस तरह चुभला-चबा रहे थे, जैसे बूढ़ी गाय जुगाली करती हो।" मन्शी जी कटोरे को हाथ में लेकर दाल को सुड़कते हुए अपने बड़े बेटे रामचन्द्र के बारे में पूछा। उसका सही उत्तर सिद्धेश्वरी के समझ में नहीं आया। वह कहने लगी कि वह 'अभी-अभी खाकर काम पर गया और कह रहा था कि 'कुछ दिनों में उसकी नौकरी लग जायेगी।" चन्द्रिका प्रसाद जी को खुश करने के लिए बढा-चढा कर वह झूठ बोलती है कि बडकू कह रहा था कि 'बाबू जी देवता के समान हैं।" "वह बड़ा होशियार है, कोई महात्मा है मोहन तो उसकी बड़ी इज्जत करता है।" इन सब बातों को सुनकर मुंशी दाल लगे हाथ चाटते हुए अपने चारो ओर देखकर कहने लगे" बड़का का दिमाग तो खैर काफी तेज है। वे खुश होकर अपने बच्चों की प्रशंसा करने लगे। वे थाली में बचे- खुचे दानों को बन्दर की तरह बीन रहे थे। इसे देखकर सिद्धेश्वरी समझ गयी। वह अपने बड़े बेटे की कसम खाती हुई एक रोटी और लेने की बिनती करने लगती है। मुन्शीजी सारी स्थिति को समझे रहे थे। फिर भी यह नहीं जताना चाहते थे कि वे दूसरे का हिस्सा नहीं खाना चाहते। वे बहाना बनाते हुए कह बैठते हैं कि "थोडा गुड़ का रस बनाओ पी लूगा जायका भी बदल जाएगा, तुम्हारी कसम भी रह जाएगी। रोटी खाते खाते नाक में दम आगया हैं।" यह कहकर ठहाका मारकर हँस पड़े।

कहानी के अन्त में परिवार के सभी सदस्यों के तनाव को दूर करने वाली अन्नपूर्णा की मूर्ति सिद्धेश्वरी भी तनाव युक्त हो जाती है। सब को खिलाने के बाद जब मुंशी जी की जूठी थाली में वह स्वयं खाने बैठती है और मोटी भद्दी एक बची रोटी को खाने का जैसे उपक्रम करती है वैसे ही ओसारे में सोया उसका बच्चा प्रमोद उसे याद आ जाता है। वह उस एक रोटी का दो टुकड़ा करती है। एक टुकड़ा प्रमोद के लिए रख देती है और दुसरा टुकड़ा खाने के लिए रख लेती है। जैसी ही पहला ग्रास मुँह में डालती है वैसे ही उसकी आँखों से आँसू टपकने लगते हैं। सिद्धेश्वरी के आँखों से टपकते आँसू उसकी व्यथा का कहानी कह ही देते हैं।

इसप्रकार इस कहानी को हम कथा वस्तु की दृष्टि से भी एक सफल कहानी कह सकते हैं क्यों कि यह कहानी आदि से अन्त तक पाठक को बांधे रखती है, उसकी उत्सुकता कायम रहती है। घटनाओ और परिस्थितियों के घात- प्रतिघात के बावजूद अन्तर्द्वन्द्वों का भी इस कहानी में सफल आयोजन किया गया है। इसमें कथा विकास की चारो स्थितियों का लेखक ने सही निर्वाहन किया है।

५आ.४ वातावरण और देशकाल की परिस्थितियाँ

समकालीन कहानीकार के व्यक्तित्व निर्माण में एक ओर युग- परिवेश तथा दूसरी ओर विभिन्न कहानी –आन्दोलनों का दबाव अपना प्रभाव छोड़ता रहा है। इन प्रभावों, प्रतिक्रियाओं के बीच समकालीन यह कहानी किस प्रकार जीवन के विविध सन्दर्भों को प्रस्तुत करती है – इसको जाँचना आवश्यक है। अगर कहानी के तत्वों पर ध्यान दिया जाता तो यह बात खुलकर सामने आती है कि कहानी का कथानक और उसके पात्र किसी- न – किसी देश और काल से सम्बन्धित रहते हैं। प्रभाव वृद्धि की आवश्यकता को समझते हुए सफल लेखक वातावरण का भी अपनी कहानियों में निर्माण करता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए इस कहानी का मूल्यांकन करें तो पाते हैं कि पूरी कहानी में घटनाओं का जाल नहीं है बल्कि कहानी का ढाचा अभाव ग्रस्त वातावरण में तैयार किया गया है। कहानी के प्रारम्भ में अध टूटे खटोले पर सोया छह वर्षीय बच्चा जिसका मुँह खुला है और उस पर अनगिनत मक्खियाँ उड़ रही हैं। यह चित्र उस घर के कष्ट पूर्ण वातावरण को उदघाटित करने में पूर्ण सफल है। कहानी के अंन्त में भी लेखक ने घर में मक्खियों की भनभनाहट और अलगनी पर टँगी पैबंद लगी गन्दी साड़ी का चित्र खड़ाकर आज के अनेक स्त्रियों के जीवन के यथार्थ को दर्शाने का प्रयत्न किया है। आज केवल सिद्धेश्वरी ही नही बल्कि अनेक सिद्धेश्वरी इस देश में हैं जो घर में अन्नपूर्णा की भूमिका निभाते – निभाते अपनी स्थितिको भी दयनीय बना लेती हैं। पूरी कहानी में तनाव पूर्ण स्थितियों का जाल बुना हुआ है। यह तनाव कहानी के अन्त में सिद्धेश्वरी के टपकते ऑसुओं से प्रकट होता हैं। यह कहानी किसी व्यक्ति या परिवार से ही सम्बन्धित नहीं है बल्कि यह कहानी आज के मध्यवर्गी सभी घरों की कहानी है । हमारे देश में असंख्य लोग इस अभाव भरी विवशता के अनुभव से रोज गुजरते हैं और फिर भी किसी तरह संयम के साथ जीवन जीते चले जाते हैं। आज के मध्यमवर्गीय समाज की मजबूरी, तनाव, दर्द की जो अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है वह युगानुरुप है। आज मंहगाई बढकर आकाश छू रही है, बेकारी से नवजवान परेशान है, उसके घर की हालत दयनीय है। नौकरी की छूटने का डर हर कर्मचारियों को सता रहा है, वह इन सब से बैचैन है फिर भी जीने के लिए मजबूर है। युगीन इन समसामयिक समस्याओं को भी इस कहानी में उभारा गया है।

५आ.५ चरित्रिक विशेषताए

कथावस्तु की भाँति कहानी मे पात्र योजना अथवा चरित्र – चित्रण का भी महत्व पूर्ण स्थान होता है । 'दोपहर का भोजन' कहानी में चरित्रों का क्रमिक विकास नहीं हुआ है। केवल इस कहानी मे सिद्धेश्वरी का ही चरित्र उभर कर पाठक के सामने आता है। इस कहानी की केन्द्रीय पात्र सिद्धेश्वरी ही है। जो गरीबी अभाव और मजबूरी में जीते हुए सम्पूर्ण परिवार को एक स्नेह सूत्र में जोड़ने का प्रयत्न करती है। वह खाना बनाकर मानमनुहार करके सबको खिलाती है। वह ऐसा नहीं जताना चाहती है कि घर में रोटी नहीं है इसलिए खाने के बाद भी घर में हर सदस्य से और रोटी लेने का निवेदन करती है। परिवार के सभी सदस्यों के खा लेने के बाद जो कुछ बचता है उसे खाकर वह सन्तोष कर लेती है। वह एक विवेकशील गृहणी है जो झूठ सच बोलकर पूरे परिवार के वातावरण को खुशनुमा बनाने का प्रयत्न करती है। वह यह अच्छी तरह जानती है कि अभाव, मजबूरी बेकारी और नौकरी की छँटनी से परेशान उसका परिवार तनिक भी गलती से भड़क सकता है, एकता के तार टूट-टूटकर विखर सकते हैं इसीलिए वह सभी के साथ सौहार्द्र पूर्ण व्यवहार करती है। सभी को किसी की भी गलती का आभास नहीं होने देती है। वह परिवार में अन्नपूर्णा की भूमिका निभाते- निभाते स्वयं तनाव युक्त हो जाती है। पर अपने तनाव का आभास किसी सदस्य को नहीं होने देती है।

सिद्धेश्वरी के अलावा इस कहानी में सिद्धेश्वरी के पति मुन्शी चन्द्रिका प्रसाद, बड़ा बेटा रामचन्द्र और मझला लड़का मोहन का भी जिक्र है। ये सभी पात्र मजबूरी में जीते हुए संघर्षरत हैं। सभी को आर्थिक विपन्नता का आभास है पर कोई भी कहने के लिए तैयार नहीं है।

मुंशी चन्द्रिका प्रसाद घर के स्वामी हैं। सिद्धेश्वरी उनकी पत्नी है। उनके तीन बेटे हैं। बड़ा बेटा रामचन्द्र है, मझला मोहन और छोटा प्रमोद है। मुंशी जी अपनी नोकरी की छँटनी से परेशान हैं। वे अपने घर की परिस्थितियों से पूर्ण वाकिफ हैं फिर भी मौन होकर परिस्थितियों का सामना करते हैं। तनावों में जीते हुए भी अपने तनाव को प्रकट नहीं होने देते। उन्हें अपने बेटों से बहुत प्यार है वे मानते हैं कि उनके बेटे कभी न कभी अवश्य कामयाब होगे। वे अपने लड़को को होशियार मानते हैं। उनके प्रति मुंशीजी की सच्ची सहानिभूति है।

मुंशीजी का बड़ा लड़का रामचन्द्र है जिसकी उम्र इक्कीस वर्ष की है। वह शारीरिक रुप से दुबला पतला तथा लम्बा है। उसका रंग गोरा है। उसकी आँखे बड़ी – बड़ी पर पेरशानी के कारण जवानी में ही छुर्रिया ओठों पर दिखाई देने लगी हैं। घर की परिस्थिति ठीक न होने के कारण तेज दिमाग का होते हुए भी वह इष्टमीडिएट तक पढ़ सका । वह भी अपनी आर्थिक दयनीयता को समझता है पर किसी के सामने व्यक्त नहीं करता। अपनी आर्थिक विपन्नता को दूर करने के लिए वह नौकरी की खोज में मारा-मारा फिरता है । विवश होकर वह अपने तबियत से एक दैनिक समाचार पत्र के दप्तर में प्रुफरीडिंग का काम सीखने लगता है। वह अपने परिवार के प्रति पूर्ण संवेदनशील है इसी लिए जब वह खाने बैठता है तो अपनी माँ सिद्धेश्वरी से पूछता है कि 'पिताजी खा चुके' मोहन कहाँ है, प्रमोद खा चुका है? बेकारी का सामना करने वाले नवजवानों की तरह वह भी तनावों से घिरा हुआ है। मन ही मन वह अपनी हर कठिनाई का मूल्यांकन करता है लेकिन चुप-चाप रहता है। थकान और उद्विग्नता उसके चेहरे पर स्पष्ट

दिखती है इसीलिए उसकी माँ कभी – कभी सहमी और डरी सी लगती है। वह सम्भल कर विनम्रता से उससे बातें करती है।

मोहन सिद्धेश्वरी का मझला लड़का तथा प्रमोद सबसे छोटा लड़का है। मोहन की आँखें छोटी और रंग सावला है। वह भी रामचन्द्र की तरह दुबला पतला पर लम्बाई में कुछ कम कद का है। उम्र की अपेक्षा उसमें ज्यादा गम्भीरता और उदासी विद्यमान है। उसकी उम्र अट्ठारह वर्ष है । वह 'हाईस्कूल' की प्राइवेट परीक्षा देने की तैयारी कर रहा है। लेकिन घर के अभाव और मजबूरी से वह भी पूर्ण परिचित है। परिवार का भरपूर स्नेह उसे प्राप्त है। वह भी अच्छी तरह जानता है कि एक रोटी से ज्यादा खाने का मतलब किसी को भूखा रखना होगा। इसी लिए जब सिद्धेश्वरी एक और रोटी लेने का दबाव डालती है तो वह बहाना बनाकर उससे कहता है "नहीं रे, बस अब्बल तो अब भूख नहीं है।" फिर रोटियाँ तूने ऐसी बनाई है कि खाई नहीं जाती।" प्रमोद तो छोटा होने के कारण सबका लाडला है । सभी उस पर जान निछावर करते हैं। इसप्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी की कहानियाँ अब पूरी तरह से मध्यवर्ग को समर्पित हो चुकी हैं।अब यह एक सर्वविदित तथ्य है कि इस समय कहानी के लगभग सारे ही अवयव – पात्र- चरित्र, घटनाएं, देशकाल-वातावरण यानी कहानी का सारा माहौल-मध्यवर्ग की भावनाएं और समस्याओं से ओत प्रोत हैं । यही वर्ग आजकी सारी समस्याओं का भोक्ता भी है और संवाहक भी है। अमरकान्त जी ने बड़ी ही संजिदगी के साथ उसकी मजबूरी और जीवन आस्था का स्वर मुखरित किया है। कहीं कहीं इनके संवादो से स्थिति की विद्रुपता भी प्रकट हो जाती है जैसे मुंशी जी खनकियों से रसोई की ओर देखते हुए कहते हैं "अन्न और नमकीन चीजों से तबीयत ऊब भी गई है।" जिस घर में भर पेट भोजन नहीं है वहाँ हर व्यक्ति बदहजमी रोटी के ऊबन की बात करता है तो यह बात जरुर ही अटपटी लगती है लेकिन ये अटपटी बातें बहुत कुछ कह जाती हैं जिसके विवेचन एवं विश्लेषण का दायित्व लेखक ने पाठक पर छोड़ दी है।

५आ.६ शिल्प योजना

कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से यह कहानी हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण कहानी सिद्ध होती है। यह कहानी वर्णन और विवरण प्रधान कहानी है। अमरकान्त जी अपने छोटे-छोटे संवादो द्वारा जहॉ वातावरण को प्रभावी बना देते हैं वहीं कहानी लिखते समय पहले व्यौरा देते हैं और फिर उसी व्यौरे से सार्थक संवेदना की सृष्टि करते हैं। जैसे – रामचन्द्र रोटी के अन्तिम टुकडे को किस तरह ग्रहण करता है - " एक दो क्षण बाद रोटी के टुकड़े को धीरे –से हाथ से उठाकर आँख से निहारा और अन्त में इधर –उधर देखने के बाद टुकड़े को मुँह में इस सरलता से रख लिया, जैसे वह भोजन का ग्रास न होकर पान का बीड़ा हो।" इसी तरह मोहन के 'सुड-सुड दाल' पीने और मुंशी जी के 'चने के दानों की ओर दिलचस्पी से दृष्टिपात' करने में उनकी व्यौरेबाजी, उसमें से उभरती संवेदना को देखा और समझा जा सकता है।

डॉ. नामवर सिंह ने ठीक कहा है कि भाषा लेखक के अनुभव और ज्ञान की प्रतीक होती है। यह उक्ति अमरकान्त की भाषा पर भी पूर्ण रुप से लागू होती है। अमरकान्त जी ने ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बड़ी ही सूझ – बूझ से किया है। ये शब्द उनके ग्रामीण ज्ञान और अनुभव को सिद्ध करते है ंजैसे —- हँडिया, गमछा, बड़कू पनियाई दाल भर –कटोरा, अब्बल आदि

।ये शब्द सामान्य बोल-चाल के ज्यादा निकट हैं जो मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति को उभारने में पूरी तरह सक्षम हैं। इन्होंने इस कहानी में अनूठी उपमाएं भी प्रस्तुत की हैं जैसे "बच्चे के हाथ पैर बासी ककडियों की तरह सूखे और पेट हँडिया की तरह फूला हुआ था।" अगर इनकी भाषा का सही मूल्यांकन किया जाय तो निसंदेह कहा जा सकता है कि इस कहानी की भाषा में जहाँ सांकेतिक व्यंजकता है वहीं कहीं –कहीं रेखा चित्र के गुणों का स्पर्श भी है। शैली की दृष्टि से भी यह कहानी एक सफल कहानी कही जा सकती है।

५आ.७समीक्षात्मक प्रश्न

१. 'दोपहर भोजन' का कथानक स्पष्ट कीजिए।
२. 'दोपहर भोजन' कहानी उद्देश्य समझाकर लिखिए।
३. 'दोपहर भोजन' कहानी में लेखक ने किन –किन समसामायिक समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है ?
४. कहानी के माध्यम से सिद्धेश्वरी का चरित्र –चित्रण किजिए।
५. कहानी के तत्वों के आधार पर 'दोपहर भोजन' कहानी की समीक्षा किजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

१. अभाव और गरीबी में जीने वाले परिवार को सन्तुलित रखने के लिए सिद्धेश्वरी क्या करती है ?
२. सिद्धेश्वरी के परिवार की संक्षिप्त जानकारी दीजिए।
३. 'परिवार को तनाव मुक्त करते –करते सिद्धेश्वरी स्वयं तनाव युक्त हो जाती है।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
४. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए :-
   (क) मुन्शी चन्द्रिका प्रसाद (ख) रामचन्द्र
   (ग) शिल्प योजना
५. 'दोपहर भोजन' कहानी के शीर्षक के औचित्य पर विचार कीजिए।

५आ.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. सिद्धेश्वरी के पति का क्या नाम था ?
२. सिद्धेश्वरी का बड़ा लड़का अपनी तबीयत से कहाँ और क्या काम सीखता था ?
३. ओसारे में अध –टूटे खटोले पर कौन सोया था ?
४. सिद्धेश्वरी के मँझले लड़के का क्या नाम है ?
५. "समय आने पर सब ठीक हो जाएगा।" यह वाक्य किसने किससे कहा है ?

६. परिवार के सभी सदस्यों के खा लेने के बाद सिद्धेश्वरी किसकी जूठी थाली में खाने के लिए बैठी ?

७. सिद्धेश्वरी ने पहला ग्रास मुँह में रखा तो उसकी क्या दशा हो गई ?

८. मुंशी चन्द्रिका प्रसाद किस विभाग में और किस पद पर काम करते थे ?

५आ.९ महत्वपूर्ण अवतरण

१. "समय आने पर सब ठीक हो जाएगा।"

२. तुम्हारी कसम भी रह जाएगी जायका भी बदल जाएगा साथ –ही साथ हाजमा भी दुरूस्त होगा। हाँ रोटी खाते –खाते नाक में दम आ गया है।

६-अ

उमस

इकाई की रुपरेखा

६-अ.१ ममता कालिया और उनकी कृतियाँ
६-अ.२ मूल संवेदना
६-अ.३ कथावस्तु
६-अ.७ चारित्रिक विशेषताएं
६-अ.५ समीक्षात्मक प्रश्न
६-अ.६ लघूत्तरी प्रश्न
६-अ.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न
६-अ.८ महत्वपूर्ण अवतरण

'उमस' ममता कालिया

६-अ.१ममता कालिया और उनकी कृतियाँ

ममता कालिया यथार्थ धर्मी कथा लेखिका हैं। इनका जन्म २ नवम्बर १९४० को वृन्दावन में हुआ। इन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की उपाधि ग्रहण की। १९६० से ये निरन्तर साहित्यरचना कर रही हैं। ये जान लेवा रोगों से संघर्ष करती रही हैं लेकिन कभी घबराई नहीं, निर्भीकता पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढती रही हैं। इनके जुझारू व्यक्तित्व को बनाने में इनके जीवन संघर्ष का महत्वपूर्ण योगदान है। ममता कालिया ने उपन्यास, कहानी, कविता नाटक, आदि सभी विधाओं में रचनाएं की हैं लेकिन इनको पूर्ण सफलता उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में ही मिली।

इसके अतिरिक्त अपने समाज में स्त्री की स्थिति पर उन्होंने अनेक स्तंभ व लेख लिखे हैं। बालसाहित्य के क्षेत्र में भी इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। हिन्दी के अलावा अंग्रेजी में भी ये कविताएँ लिखती रही हैं।

'छुटकारा' सीट नंबर छह, 'उसका यौवन', 'जाँच अभी जारी है', 'प्रतिदिन' 'बोलने वाली औरत', इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

'बेघर, 'नरक दर नरक', एक पत्नी के नोटस', इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

'ए ट्रिब्यूट टू पापा' और 'पोयम्स' जैसी कविताएं लिखकर इन्होंने कविता के क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किया है।

इनकी महान साहित्यिक सेवा के कारण इन्हें कई पुरस्कारों और उपाधियों से सम्मानित किया गया है। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने जहाँ इन्हें ' महादेवी स्मृति' सम्मान से सम्मानित किया वहीं कलकत्ता की संस्था 'अभिनव भारती' ने रचना सम्मान से इन्हें पुरस्कृत एवं सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त 'सावित्री' बाई फूले, और 'अमृत' सम्मान प्राप्त करने का भी सौभाग्य इन्हें प्राप्त है।

परिवर्तन एक अनिवार्य ऐतिहासिक प्रक्रिया है। विश्व में राजनीतिक तथा समाजार्थिक ढाँचे में बदलाव नये परिवेश का जनक होता है। इन्हीं के विविध प्रभावों व प्रतिक्रियाओं से रचनाकार की जीवन दृष्टि बनती है। हिन्दी -कहानी को कई आन्दोलनो से होकर गुजरना पड़ा है। विभिन्न कहानी कारों ने विविध आन्दोलनों के प्रभाव को आने व्यक्तित्व के अनुरुप ग्रहण करने का प्रयत्न किया है। हिन्दी में कुछ महिला कहानीकारों का पदार्पण हुआ। इन कहानी लेखिकाओं की कहानियाँ आधुनिकता एवं पश्चिम के नारी -मुक्ति आन्दोलन प्रभावित दिखाई देती हैं। इन्हीं कहानी लेखिकाओं में एक ममता कालिया भी हैं जो नारी की प्रबळ पक्षधर हैं।

ममता कालिया के लेखन का मूल बिन्दु

ममता कालिया के लेखन का मूल बिन्दु नारी मनोविज्ञान और सामाजिक विसंगतियों का विरोध है। उन्होंने बड़ी कुशलता से अपने आस -पास के जीवन में मध्यवर्गीय व्यक्ति की विडम्बनाओं को अपनी कहानियों का कथ्य बनाया। परम्परागत जीवन दृष्टि के प्रति नकार का भाव, रूढिगत सामाजिक - मूल्यों का बहिष्कार और नये जीवन बोध के प्रति उत्साह उनकी कहानियों मे साफ - साफ दिखाई देता है।

ममता कालिया की कहानियों में यह सत्य विशेषत मुखरित हुआ है कि आज भी नारी उत्पीडन से मुक्त नहीं हुई है। उसे आज भी परम्परागत ढ़ाँचे में ही लोग देखना चाहते हैं। उसकी योग्यता और चाहत का आज भी कोई मूल्य नहीं है। वह आज भी सामन्तवादी व्यवस्था के पैरों तले कुचली जा रही है। भले ही नारी को स्वतत्र्यंता और समानता का संवैधानिक जामा पहना दिया गया है लेकिन व्यवहारिक जीवन में घुटन पूर्ण जीवन जीने के लिए आज भी वह मजबूर है। इनकी आरम्भिक कहानियों में नारी का भारती रुप उभरता है। परवर्ती कहानियों में प्रतिदिन के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को केन्द्र मे रखकर नारी के समग्र संघर्ष को चित्रित किया गया है। इनमें दाम्पत्य -जीवन के बाहर की सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों के चित्र भी उकेरे गये हैं। दृष्टि की परिपक्कता के साथ - साथ इनकी कहानियो में व्यंग्य का प्रयोग बढ़ता गया है।

'दो जरुरी चेहरे' में मिनाती नामक युवती के माध्यम से भारतीय नारी की मान सिकता और द्वन्द्व को वाणी दी गई है तो 'प्रतिदिन' संग्रह में सामाजिक विसंगतियों परप्रहार किया गया है। जहाँ सूनी में लेखिका ने एक विवाहित नारी की मनोदशा चित्रण किया है वहीं बडे दिन की पूर्व सांझ' में लेखिका नव विवाहित नायिका के मनोविज्ञान को पढ़ने का प्रयत्न करती हैं।

इनकी कहानियों पर अगर ध्यान दिया जाय तो यह बात खुलकर सामने आती है कि जिन स्थितियों को हम रोजमर्रा की जिन्दगी का हिस्सा मानकर छोड़ देते हैं उन्हें लेखिका कहानी की कल्पित स्थिति में इस तरह सँजोती है कि उसके अनेक अर्थ खुलने लगते हैं।

इसलिए महिला कथाकारों में ममता कालिया एक विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी बन जाती हैं। वे नारी जीवन के विविध पक्षों का मूल्यांकन आधुनिक दृष्टि से करती हैं। कभी वे इक्कीसंवी सदी के निम्न मध्यवर्गीय परिवारों पर उपभोक्ता संस्कृति के क्रूर दबाव का उद्‌घाटन करती हैं तो कभी आज की नारी की स्वतंत्र्यता और समानता के जो बड़े - बड़े दावे किये जा रहे हैं उनका पोल भी खोलती हैं।

६-अ.२'उमस' कहानी की मूल संवेदना

ममता कालिया की अधिकांश कहानियाँ मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्धित हैं । वे मानती हैं कि मध्यवर्गीय परिवार सामाजिक, धार्मिक मर्यादाओं से ज्यादा प्रभावित रहता है। यह वर्ग भ्रान्ति की लीक पर चलने के लिए मजबूर होता है। व्यर्थ का दिखावा करना इस वर्ग की आदत होती है। सामाजिक रूढ़ियों और गलत परम्पराओं का शिकार इस वर्ग में नारी ही होती है। डॉ. महिपाल अग्रवाल ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है "सामाजिक रुढ़ियों और अन्य बन्धनों में आबद्ध मध्यमवर्गीय नारी आज भी सिसक रही है, कराह रही है। वह आज भी शोषण का शिकार है।" वास्तव में बेचारी नारी को माँ के घर में माता-पिता की अंगुली पकड कर चलना पड़ता है और ससुराल में उसे सास-ससुर और पति के संकेतो पर नाचने के लिए विवश होना पड़ता है। कितनी भी आधुनिकता का राग अलापा जाय कितने भी नारी विकास के लम्बे - लम्बे दावे पेश किए जाएं, ये सब व्यवहार में आज भी निरर्थक और कागज के पन्नों की शोभा बढ़ाने वाले सिद्ध होते हैं। कुछ अपवादों को छोडकर अगर देखा जाय तो आज भी हजारों पढीलिखी नारियाँ चारदीवारी के अन्दर सामाजिक वर्जनाओं और पारिवारिक दबावों में घुटन और उबन पूर्ण जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हैं।

ममता कालिया ने जो कुछ देखा जो कुछ भोगा उसे अपनी कहानियों मे बड़ी ईमानदारी ओर सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है।''उमस' कहानी पारिवारिक दबाओं के बीच घुटन और ऊबन में जीने वाली पढी-लिखी नारी की सच्ची तस्वीर पेश करती है। हमारी संस्कृति और धर्म ग्रन्थों में माना जाता है कि परिवार संम्बन्धों की गरमाहट से भरा सुरक्षित घरौंदा है, जिसमें व्यक्ति बाहर की आपा-धापी भरी जिन्दगी से बचकर आश्रय पा सकता है लेकिन ऐसी स्थिति सभी जगह नहीं होती। घर ईट पत्थरों से नहीं बनता, घर बनता है परिवार से । परिवार के सुख और शान्ति का आधार नारी होती है। मध्यवर्गीय परिवार में नारी को एक बंधी बंधाई परम्परा में देखने की आदत है। मध्यवर्गी परिवार ने नारी के अस्तित्व और स्थिति को कभी भी सही ढंग से समझने की कोशिश नहीं की। वह उसकी भावनाओं के साथ हमेंशा खेलता रहा है। इस परिवार की शोषण वादी व्यवस्था में आज की पढ़ी-लिखी नारी ही अस्तित्व हीन होने के लिए मजबूर है। बने बनाये राहों पर अगर वह चलती है तो ठीक अगर उस राह का विरोध करती है तो वहाँ टिकना उसेक लिए मुश्किल हो जाता है। 'उसम' कहानी की नायिक रानी एक पढ़ी - लिखी नारी है। वह कठिन मेहनत करने और अपने मान सम्मान को दरकिनार करने के बावजूद भी न तो आदर्श बहू न तो आदर्श पत्नी न आदर्श माँ बन पाती है। वह अपनी इच्छाओं को मार कर

सास के संकेतो पर नाचने के लिए बाध्य है। पढ़ी -लिखी होने पर भी वह तत्कालीन बनी रहती है और उसका पति समकालीन रहता है। घर की दमघोटू वातावरण ने उसे यथास्थिति को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया है। वह उस परिवार में जिन्दा रहते हुए भी मुर्दा हो गई है। उसे उसका घर, घर से ज्यादा कब्र लगता है। वह मर मिटकर भी परिवार को खुश नहीं कर पाती है।

'उमस' कहानी में रानी के स्वत: स्फूर्त व्यक्तित्व को कुठित करने वाले अनेक दबाव साफ दिखाई देते हैं।सास और पतिकी उपस्थिति के कारण उसे सोचने की जरुरत ही नहीं है बोलने बताने और सुझाव देने के लिए सास है। उसे केवल खामोश रहना है, क्योंकि अपने अनुभव से उसने सीखा है कि उसके बोलने से परिवार का माहौल बिगड़ जाता है। कभी- कभी उस विवश रानी को पति के व्यंग्य वाण भी सुनने पड़ते हैं लेकिन वह उसे बुरा नहीं मानती । कुछ भुन-भुनाकर अवश्य चुप रह जाती है। कभी-कभी उसकी बेवकूफी से चिढ़कर उसका पति कहता है पता नहीं कैसे उसने बी.ए. पास कर लिया है ? भले ही वह जोर से न बोल पाये लेकिन उत्तर में वह सोचती अवश्य है— 'जब इसी तरह रहना है तो इसकी भी क्या जरुरत थी'। यह उक्ति रानी की विवशता, टीस और घुटन को व्यक्त करने के लिए काफी है।

इस प्रकार यह कहानी एक ओर मध्यमवर्गीय परिवार के दमघोंटू वातावरण मे सांस लेते नारी के घुटन और उबन का उद्घाटन करती है तो दूसरी ओर स्त्री के स्व को खत्म करने वाली परिवारिक व्यवस्था तथा उसकी मानसिक पीड़ा एवं प्रवृत्ति को एक हिंसा के तौर पर देखती है। ममता कालिया इस कहानी के माध्यम से नारी की आजादी की वकालत करते हुए हमें यह संदेश देना चाहती हैं कि सदियों से परिवार के लिए बलिदान देने वाली, तिल-तिल परिवार के लिए मिटने वाली नारी को हमें सम्मान देना चाहिए, उसके विकास और उन्नति में ही परिवार समाज और देश की उन्नति समझनी चाहिए।

६-अ.३कथावस्तु

ममता कालिया की इस कहानी की केन्द्रीय पात्र रानी है। लेखिका ने उसकी व्यथा टीस, घुटन और ऊब को ध्यान में रखते हुए इस कहानी का ताना-बाना बुना है। पूरी कहानी उसी के इर्द -गिर्द से होकर गुजरती है। इस कहानी में उतार- चढाव भी है जिससे इस कहानी की गतिशीलता बनी रहती है। यह कहानी हिन्दी की सफलतम् कहानी में एक है। कहानी का आरम्भ रानी के परिचय से होता है। रानी तेज-तर्रार आदमी की गोल-मोल ढुल मुल सी पत्नी है। शुरु में वह और उसका पति दोनों, हमउम्र, हमपेक्षा और हमखयाल थे, पर बाद मे पति-पत्नी की जीवन –शैली और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में बहुत अन्तर आ जाता है। पति के दोस्त जल्दी-जल्दी बदलते हैं। वह तेज रप्तार जिन्दगी जीता है और पत्नी अपनी निरंतरता में जीती है अर्थात वह अपने दिलो-दिमाग में चीजों को जल्दी नहीं बदल सकती। उसके मन मे चीजो का एक क्रम है, एक गति है जिसे वह तेजी से झटकर आगे बढ़ने मे विश्वास नहीं रखती। इसीलिए उसे लगता है कि –उसका पति लगातार समकालीन बना रहता है जब कि वह स्वयं तत्कालीन होती जाती है।

रानी हर काम को सही और समय से करना चाहती है लेकिन दमघोटू वातावरण ने उसके जीवन को नीरस बना दिया है। इसी कारण घर के छोटे- छोटे कामों को पूरा करने में उसे देर लगती है। एक काम करती है तो दूसरा अधूरा रह जाता है, दुसरे पर ध्यान देती तो कहीं से एक और काम उठ खड़ा होता है। उसे महसूस होता है कि वह काम के बोझ में दबी जा रही है। सुबह से रात तक काम करते –करते ही वह एक हाय-हाय व्यक्तित्व बन जाती है। लेकिन इतनी कोशिश करने पर भी वह किसी को खुश नहीं कर पाती।

उसकी सास, उसके पति और उसके पुत्र-सबको उससे अलग-अलग शिकायते हैं। रानी जब धीरे –धीरे हाथों से काम मे लगी रहती है तो माँ उसके हाथ से पोचे की बाल्टी या सब्जी की टोकरी छीन लेती है और फुर्ती से उसे करने लगती है। काम निपटाने के बाद कहने लगती है "तुझे यह भी नहीं पता कि मरे –मरे हाथ चलाने से घर का दलिद्दर कभी नहीं भागता।" रानी इस पर कुछ कहना चाहती है तो सास बिगड़ जाती है इस लिए रानी सुनकर भी उन बातो ंको अनसुनी कर देती है। रानी अपनी निन्तरता में से निकल नहीं पाती, कभी जब वह यह कहने की चेष्टा भी करना चाहती है कि वह गलती से कुछ सीखना चाहती है तो सास गुस्से में आ जाती है और कहने लगती है "क्यों करेगी तू गलती ?अरे जब़ हम बैठे हैं बताने सिखाने वाले, तुझे फिकर क्या है। जैसे मैं कहती हूँ, आँख मूँदकर करती चल, मजाल हैं कोई गलती हो जाए।" पति को भी उसकी सभी बाते बेतुकी जान पड़ती है। उसका कुछ बोलना उसके लिए असहय है। कभी –कभी बेटा भी उस पर झुँझला जाता है।

हर रोज कुछ न कुछ ऐसा होता है ही रहता है जिसमें रानी खुद को फँसा हुआ महसूस करती है। घर के बाकी लोग कहते हैं कि दुनिया जेट रप्तार से चल रही है जब कि वह पैसेंजर ट्रेन की सुस्त गति से आगे गढ़ रही है लेकिन वह इसे स्वीकार नहीं कर सकती। उसकी समस्या यह है कि जो भी काम वह कर रही हे उसमें कुछ भी रचनात्मक या रोचक नहीं है। वह सब काम उसे बोझ ढोने जैसा लगता है। सब उसे ही बदलने की कोशिश करने में लगे रहते हैं। उसकी सुस्ती पर कभी उसका पति चिढ जाता है और कह बैठता है कि "इससे तो अच्छा है एक नौकर रख लें। बेटे की यह बात सुनकर माँ बिगडकर कहने लगती है कि" और यह क्या करेगी ? आराम ? फिर तो और बिगड जाएगी।" इन सब बातों को सुनकर रानी को हॅसी आ जाती है और वह मन ही मन सोचने लगती है जो लोग उसे सुधारना चाहते हैं वे ही कोई आदर्श नहीं हैं, बहुत सी छोटी –छोटी बातें हैं जिन्हें इन्हें भी सीखने की आवश्यकता है। वह सब की कमजोरियों को समझती हुई भी कह नहीं पाती क्योंकि उसने अनुभव से सीखा है कि बोलने का मतलब घर का महौल खराब करना है। उसकी स्थिति तो उस घर में नौकर से भी खराब है।

धीरे –धीरे यह कहानी गतिशील होते-होते चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है और नारी के दु:ख भरे जीवन का सच्चा चिट्ठा प्रस्तुत कर पाठक को संवेदित कर देती है।

कहानी का अन्तिम दृष्य और भी दारुण है। टी. वी. पर क्रिकेट मैच आ रहा है। परिवार के सभी सदस्यों को छूट है कि वे टी. वी . देखें पर रानी को काम से फुसर्त ही नहीं है, वह कैसे टी. वी. देखे ? उसका भी दिल मैच देखने के लिए तड़पने लगता है। वह किसी न किसी बहाने रसोई घर से टी.वी. देखने के लिए पहुँच जाती है। रानी वेगंसरकर को कपिल देव कह देती है क्योंकि उसके मन की निरंतरता में दोनों की शक्ले एक जैसी हैं। उसकी यह बात सुनकर बेटा और पति दोनों नाराज हो जाते हैं। उसे प्रताड़ित करना शुरु कर देते हैं। उसका बेटा पवन उसे

धकेलता हुआ कह बैठता है। "माँ तुम जाओ यहाँ से । गेम का सारा मजा खराब कर रही हों।" घर का माहौल खराब न हो जाए इस डर से रानी रसोई में लौट जाती हैं। रसोई में चुल्हे पर दाल का संगीत था बर्तनों का वाद्य था काम का कोरस।' प्रतारणाओं से आहत काम से थकी रानी रसोई घरके बगल के कमरे में बिछे खाट पर औंधे मुँह पड़ जाती है। थोड़ी देर बाद सीधी होकर बिना तकिये बिना चादर के लेट जाती है। तभी उसे लगता है कि कब्र मे उसे वह सब मिल सकता है जो जिन्दगी की खट-खट में नहीं मिलता। वह अपने फैसले लेने में स्वतन्त्र होगी। उसे गल्तिया करने की आजादी होगी। घर फोन, घंटी कुछ भी उसके अपने साम्राज्य में बाधा नहीं पहुँचा सकेंगे। जैसा विडम्बनापूर्ण जीवन वह जी रही थी उससे तो उसके लिए कब्र की कल्पना ही ज्यादा सुखद है।

इस प्रकार नारी के विडम्बना पूर्ण जीवन का चित्रांकन करते हुए लेखिका कहानी का अन्त करती है। हम इस कहानी को कथा-वस्तु की दृष्टि से एक सफल कहानी कह सकते हैं।

६-अ.४चारित्रिक विशेषताएं

आधुनिक युग में कहानी के सभी तत्वों की अपेक्षा निरंन्तर चरित्र –चित्रण की महत्ता बढती जा रही है। कथा का विकास पात्रों द्वारा ही होता है। इस कहानी में लेखिका ने अपने आप किसी पात्र की अच्छाई -बुराई थोपने की कोशिश नहीं करती बल्कि पात्रों के कार्यों और उनके वक्तव्यों से उनका चरित्र विकसित होता जाता हैं।

इस कहानी में मुख्य केन्द्रीय पात्र रानी है जो पढ़ी-लिखी घरलू नारी है। उसके उपर चारो ओर से परिवारिक दबाव है फिर भी वह दबावों को सहती है। सुबह से शाम तक वह घर के कामों में लगी रहती है। सास,पति के प्रतारणों से अवश्य ही घुटन और ऊब महसूस करती है, लेकिन वह किसी भी तरह घर के शान्ति को भंग नहीं करना चाहती । वह यह बात अच्छी तरह जानती है कि अगर वह किसी प्रकार की अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर देगी तो घर का माहौल खराब हो जाएगा । वह परिवार के सुख के लिए तिल-तिल कर भारतीय नारी की भांति जलती है फिर भी न तो वह अपने सास को, न तो पति को, और न तो बेटे को खुश कर पाती है। सभी परिवार के लोग उसके व्यक्तित्व को बौना करने में संलग्न हैं फिर भी वह चू तक नहीं करती है। लेकिन हर रोज कुछ ऐसा होता रहता है कि जिसमें रानी खुद को फँसा हुआ महसूस करती है। वह जो भी कार्य घर में करती है उसमें से उसे कोई भी काम रचनात्मक नहीं लगता। उसे लगता है कि वह काम को कर नहीं रही है बल्कि उसको ढो रही है।

इस प्रकार 'उमस'कहानी की रानी का चरित्र एक मध्यमवर्गीय नारी का चरित्र है। इस कहानी में सहनशील, पारिवारिक वातावरण को शान्त रखने वाली, सास और परिवार के श्रेष्ठजनों की आज्ञाओं को मानने वाली, पारिवारिक सुख में अपने को लय कर देने वाली, परिस्थिती को सही- सही समझते हुए भी मजबूर नारी के रुप में रानी का चरित्र दिखाई देता है।

इस के अतिरिक्त इस कहानी के संहायक पात्र के रुप में रानी की सास उसका पति विनोद और बेटा विनय का नाम आता हैं।

रानी की सास एक परम्परागत तानाशाह के रुप में दिखाई देती है। वह चाहती है कि रानी अपनी इच्छा से कोई भी काम न करे , जो वह कहे वही करे उसकी यह उक्ति इसी प्रवृत्ति की ओर ईशारा करती है। "जैसे मैं कहती हूँ, आँख मूँदकर करती चल, मजाल है कोई गलती हो जाए।" रानी के सम्बन्धों और कार्यो को लेकर विनोद भले कुछ भी न कहे फिर भी रानी की सास किसी न किसी प्रकार उसकी गल्तिया निकान ही लेती है।" एकतानाशाह की तरह रानी से काम करवाती और साथ ही हर काम पर अपनी टिप्पणी लगाती जाती कि न करो तो हर काम बड़ा है, करो तो कुछ भी नहीं।" वह समय के तेवर को नही समझती बल्कि समय को अपने ढंग से चलाने की मूर्खतापूर्ण कृत्य करती है। एक नारी होते हुए भी नारी की भावना का सम्मान नहीं करती, पग-पग पर वह नारी को रानी के माध्यम से लाक्षित और कलंकित करने का प्रयत्न करती है। इस कहानी में रानी के सास का दृष्टिकोण परम्परागत है वह नारी को एक ढ़ले-ढलाये सांचे में ही देखना पंसन्द करती है।

वैसे इस कहानी में रानी के अलावा किसी भी पात्र के चरित्र का सही-सही विकास नहीं हुआ है। केवल छोटी – छोटी घटनाओं और संवादो के द्वारा उनके स्वभाव को लेखिका ने प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

विनोद रानी का पति है जो तेजतर्रार स्वभाव का है। उसे प्यार, व्यवहार, व्यापार में रप्तार पसन्द है। वह जैसे साल में कलन्डर बदल जाता है वैसे दोस्त भी बदल देता है। इसीलिए रानी के काम करने की धीमी गति देखकर वह नये नौकर रखने की बात करता है। उसे रानी की बाते बेतुकी लगती है। इस प्रकार कितना भी आधुनिकता का डींग वह विनोद मारे, उसकी दृष्टि भी नारी को ढ़ले सांचे मे देखने की ही है। परम्परागत पति का रुप विनोद में ढूढ़ा जा सकता है।

'जैसा बाप वैसा बेटा' की कहावत पवन के भी उपर लागू होती है। इस कहानी में पवन एक असंवेदनशील पुत्र के रुप में दिखाई देता है। उसे अपनी माँ, रानी से कोई भी आत्मीयता नही है। परिवार के अन्य सदस्यों की तरह पवन भी रानी पर झुँझला उठता है।

इस प्रकार चाहे कथावस्तु हो चाहे चरित्र- चित्रण हो चाहे उद्देश्य हो और चाहे संवाद योजना और कहानी का शिल्प हो सभी दृष्टियों से यह 'उमस' कहानी हिन्दी की एक प्रतिनिधि कहानी कही जा सकती है। रानी ही मध्यम परिवार के दबाव में घुटन और ऊब की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर नहीं है, रानी की तरह भारत में हजारों नारियाँ हैं जो पढी-लिखी होकर चारदिवारी के अन्दर सिसक-सिसक कर जीने के लिए मजबूर हैं। नारी मुक्ति आन्दोलन और संवैधानिक स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धांन्त की पोल यह कहानी खोलती है। कहानी के संवाद घटनाओं और पात्रों के चरित्र को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं। इस कहानी में वर्णात्मकता और नाटकीयता का मंजुल समन्वय किया गया है । संवाद हो या विवरण सभी में आम बोलचाल की सहज सरल भाषा का प्रयोग हुआ हैं। यह कहानी मुख्यतः रानी को केन्द्र में रख कर लिखी गई है इसलिए रानी को अगर इस कहानी का स्वयं संवाद माना जाय तो गलत नहीं होगा। यह कहानी लेखिका के मौलिक चिन्तन और शैली का प्रतीक मानी जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

६-अ.५ समीक्षात्मक प्रश्न

१. 'उमस' कहानी का सारांश अपने शब्दों मे लिखिए।
२. 'उमस' की कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
३. 'उमस' की नायिका रानी की मनोवृत्ति पर प्रकाश डालिए।
४. 'उमस' कहानी को कला तत्वों की कसौटी पर परखते हुए संक्षेप मे अपना मत दें।

६-अ.६ लघूरीत्मक प्रश्न

१. रानी के प्रति उसकी सास का कैसा व्यवहार है ?
२. 'उमस' कहानी नारी का स्वतत्र्यता और समानता की पोल खोलने वाली कहानी हैं। इस कथन की समीक्षा किजिए।
३. रानी के घर,घर से ज्यादा कब क्यों लगता हैं ?
४. रानी के पति और पुत्र की उससे क्या शिकायतें हैं ?
५. रानी के पति की जीवन –शैली और जीवन के प्रति दृष्टिकोण का वर्णन कीजिए।

६-अ.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. दोपहर में रानी आकाशवाणी से कौन-सा कार्यक्रम सुनती थी ?
२. रानी की आँखे कैसे खुलती थी ?
   (क) सास की डपट से (ख) आकाशवाणी के संगीत से
   (ग) पति की डाट से (घ) बेटे के चिल्लाने से
३. रानी के अपने कार्य के प्रति क्या शिकायत है ?
४. रानी के पति का क्या नाम है ?
५. रानी के कौन-सी परीक्षा उत्तीर्ण (पास) की है ?
६. पवन के अनुसार सारी दुनिया किस रप्तार से चल रही है ?
७. रानी की रप्तार कैसी है ?
८. रानी को माँ पर हँसी क्यों आ गई ?
९. रानी सच क्यों नही बोलती ?
१०. टी. वी. पर क्रिकेट मैच देखने के दरम्यान रानी शाँट लगाते समय बेंगसरकर की जगह किसका नाम लेती है ?

६-अ.८ महत्वपूर्ण अवतरण

१. न करो तो हर काम बड़ा है, करो तो कुछ भी नही हैं।

२. औरत जात का काम प्यारा होता है, चाम नहीं। तुझे तो हिरनी की तरह होना चाहिए, बारहसिंगे की तरह नहीं कि बस सींग आड़ाती डोले।"

३. मरे-मरे हाथ चलाने से घर का दलिद्दर कभी नहीं भागता।

४. माँ कभी कोई गलती तो मुझे अपने आप कर लेने दिया करो।"

५. साहित्य में इक्कीसवी सदी कैसे आएगी। पाकिस्तान के पास बम है या नहीं।

६. यह तो बिल्कुल ऐसा सवाल है जैसा पिछले दिनों छपी एक कहानी में था कि दीदी के पास छप्पन तोले की करधन है या नहीं।

७. सारी दुनिया आज जेट रफ्तार से चल रही है और तुम अभी फैजबाद पैसेंजर ही बनी हुई हो।

८. जब सारे काम ही बेमजा हो, तो रानी क्या करे, कैसे अपना मन जोड़े, इन टके टके के कामों से।

९. उबने ही काम अपने आठ-आठ पंजो से उसे जकड़ लेता। वह एक काम पूरा करती तो दूसरा अधूरा रह जाता, दुसरे पर ध्यान देती तो तीसरी काम कही. से उग आता। इस सारी प्रक्रिया में रात तक वह एक हाय हाय व्यक्तित्व बन जाती।

६-आ

अपराध

इकाई की रुपरेखा

६-आ.१ उदयप्रकाश और उनकी कृतियाँ
६-आ.२ उदयप्रकाश की कहानियों पर एक दृष्टि
६-आ.३ कथावस्तु
६-आ.४ चारित्रिक विशेषताएँ
६-आ.५ उद्देश्य
६-आ.६ महत्वपूर्ण अवतरण
६-आ.७ समीक्षात्मक प्रश्न
६-आ.८ लघूत्तरी प्रश्न
६-आ.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अपराध : उदय प्रकाश

६-आ.१ उदयप्रकाश और उनकी कृतियाँ

उदय प्रकाश समकालीन कहानी के अत्यन्त महत्वपूर्ण कलाकार हैं। वे कहानी के प्रचलित मुहावरे को तोड़कर जीवन की कुछ संकटपूर्ण स्थितियों और विडम्बनाओं पर तटस्थ दृष्टि डालने वाले नये कहानीकार के रूप में उभरे हैं। इनका जन्म सन्१९५२ में मध्यप्रदेश के शहडोल जिले के ग्राम सीतापुर में हुआ। उन्होंने विज्ञान में स्नातक और हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है। उसके बाद वे नई दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शोध एवं अध्यापन करते रहे। मध्य पदेश शासन के संस्कृति विभाग में भी उन्होंने कुछ समय के लिए अपनी सेवा समर्पित की। मीडिया के क्षेत्र में वे सम्पादन, पटकथा लेखन, और फिल्म निर्माण में भी सक्रिय रहे हैं। इन्होंने 'दिनमान' तथा संडे मेल जैसे प्रसिद्ध पत्रों के सम्पादन विभाग में भी कार्य किया है। ये प्रमुख कवि और अनुवादक भी माने जाते हैं।

उदय प्रकाश की अब तक तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिसमे 'दरियाई घोड़ा' १९८९ में प्रकाशित होकर कई सवालों और बहस के लिए खासा उत्तेजक साबित हुआ।

इसके अतिरिक्त तिरिछि १९८९ तथा और अन्त में प्रार्थना (१९९४) कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। इन्होंने कहानी के लिए नयी जमीन की तलाश की है। अपनी कहानियों में निहितार्थ को व्यक्त करने के लिए वे एक विशेष प्रक्रिया का प्रयोग करते हैं। वे यथार्थ को पहले बिम्ब में ढ़ालते हैं, जो आगे चलकर प्रतीक बन जाता है और फिर मिथकों में तब्दील हो जाता है। इस कलाकारिता को इनकी कहानियों की बुनावट में विश्लेषण – संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा देखा, जा सकता हैं।

इन्होंने कहानी के अलावा हिन्दी की अन्य विधाओं में भी अपनी कलम चलायी है। 'ईश्वर की आँख' इनका प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह है। इन्होंने आलोचना संस्मरण, पटकथाएं लिखकर अपने विविधमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

सुनो कारीगर, 'अबूतर कबूतर,' रात में हारमोनियम इनके कविता संग्रह हैं इनकी अभूतपूर्ण साहित्य सेवा के कारण इनको कई पुरस्कारों और सम्मानों से नेवाजा गया जैसे –सन् १९८० में भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, १९८२ में ओम प्रकाश साहित्य सम्मान और सन् १९९४ में गजानन माधव मुक्ति बोध पुरस्कार.

६-आ.२ उदय प्रकाश की कहानियों पर एक दृष्टि

उदय प्रकाश की कहानियों के अध्ययन से तो एक बात अवश्य स्पष्ट हो जाती है कि इनकी कहानियाँ सरल नहीं, अत्यन्त - जटिल हैं। एक कुशल-किस्सागो की भाँति स्वयं रस लेकर स्थितियों का संयोजन करते हैं। इनकी कहानियाँ सामाजिक विषमता झेलते आम आदमी की कहानियाँ हैं जिसमें पाठक को अपना चेहरा दिखाई देता है। ये अपनी कहानियों में ऐसी स्थितियों और घटनाओं का आयोजन करते हैं जहाँ सभी ताकतें एक बिन्दु पर पहुँचकर शोषण करने वाली शक्तियों के विरोध में आकर खड़ी हो जाती हैं और अन्तर्विरोधों की और संकेत करने लगती हैं। तिरिछ संग्रह में 'तिरिछ',' छप्पन तोले का करधन', हीरा लाल का भूत और 'रामसजीवन की प्रेमकथा 'आदि सभी में इस विशेषता को ढूढा जा सकता है। इतना ही नहीं इनकी कहानियों के संदर्भ अत्यन्त व्यापक हैं। उनमें पूरा इतिहास और निमिक बसे हुए हैं। 'मूंगा', 'धागा' और 'आम का बौर' कहानी का वाचक जिस तनाव और ऊब की स्थिति से गुजरता है, उसे संप्रेषित करने के लिए कहानीकार ने सभी उपलब्ध उपकरणों –बिम्ब, मिथक, प्रतीक, काव्यात्मकता आदि का सहारा लिया है।वाचक का भोलापन और बालसुलभ जिज्ञासा तथा माँ रहित घर के वातावरण में व्याप्त चमकीला दुःख, पिता की बीमारी, दीदी की व्यस्तता और भैया का अपना संसार -ये सभी मिलकर जिस तस्वीर की सृष्टि करते हैं, उसमें दुःख की रंगत और अधिक गाढ़ी हो जाती है। उदय प्रकाश का यह प्रयोग इसी रुप में अर्थवान है कि वह बिम्बों के माध्यम से दुःख के कथ्य को अभिव्यक्त करता है और कहानी के प्रचलित मुहावरों से हटकर उन उपकरणों का सहारा लेता है, जिन्हें सपाटबयानी में विश्वास करने वाले व्यर्थ मानते हैं। इसी प्रकार रामसूजीवनकी प्रेम कथा में उदयप्रकाश ने बड़े साहस के साथ हमारे वर्तमान के एक महत्वपूर्ण अन्तर्विरोध की ओर इशारा किया है, जिसके शिकार राम सजीवन जैसे कई युवा हैं जो जिस वर्ग के द्वारा दबाये और कुचले जाते हैं, उसी वर्ग द्वारा उनके सपने गढ़े जाते हैं। इस कहानी में सपनों के नष्ट होने के दुःख नहीं सपनों के बनने की बिडम्बना की है।

वास्तव में आठवे दशक के बाद कई कहानीकारों ने यह सिद्दत से महसूस किया है कि अपने समकालीन यथार्थ को व्यक्त करने के लिए अब तक चला आ रहा ढंग अपनी सम्भावनाएं खो चुका है। उदय प्रकाश जैसे रचनाकार ने भी परम्परा से प्राप्त अभिव्यक्ति के औजारों की अपर्याप्तता का अनुभव करते हुए अपनी कहानियों में विविध प्रयोग किये। इसका कारण अनुभव के उनके रचनात्मक रुपान्तरण में एक आकर्षण और प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

६-आ.३ अपराध कहानी की कथावस्तु

जहाँ तक उदय प्रकाश के 'अपराध' कहानी का सम्बन्ध है यह कहानी उदय प्रकाश की अन्य लम्बी कहानियों की अपेक्षा बड़ी छोटी कहानी है। इस कहानी को लेखक ने आत्मकथा शैली में लिखा है। इसमें दो भाइयों के जीवन में एक छोटे से प्रसंग का वर्णन है। घटना साधारण है लेकिन उदय प्रकाश की लेखनी का स्पर्श पाकर छोटी सी घटना भी असाधारण घटना बन जाती है।

कहानी का आरम्भ कथावाचक (मैं) के बड़े भाई के परिचय और उनके व्यवहार एवं गाँव के लड़को ं के साथ बचपन के खेल को लेकर होता है । बचपन में खेलों के प्रति बड़ा ही मोह होता है। जोड़ी और पाली वाले खेलों में तो हार –जीत मायने रखती है । इसलिए हर टीम अपने टीम में मजबूत और चतुर खिलाडी को रखना चाहती है। कथावाचक (मैं) दुबला पतला, कमजोर था इसलिए उसे कोई भी अपनी पाली में सम्मिलित करने लिए तैयार नही होता था । ऐसी स्थिति में छोटे भाई (मैं) को अकेला देखकर बड़े भाई को सहन नहीं हो पाता था। वे कथानायक से बहुत प्यार करते थे। इसीलिए बड़े भाई हार-जीत की बिना चिन्ता करते हुए कथानायक को अपनी पाली में सम्मिलित कर लेते थे।

हर व्यक्ति के जीवन में कोई न कोई घटना अवश्य घटती है। कोई घटना साधारण से असाधारण बनकर मानस पटल पर अविस्मरणीय बन जाती है तो कोई घटना समय और परिस्थिति के बदलने के साथ अस्तित्व हीन होकर भुला दी जाती है। कहानी का कथानायक (मैं) के जीवन में भी एक ऐसी ही घटना है जिसको वह अभी तक भूल नहीं पाया है। वह हमेंशा अंगारे की तरह उसके ह्रदय में सुलग रही है। कहानी का कथानायक (मैं) अपने बचपन की उस घटना को याद करता है जब उससे अपने बड़े भाई के प्रति एक ऐसा अपराध हो गया था जिसके लिए भाई को सजा भुगतनी पड़ी और अब बरसों बाद भी वह स्वंय को क्षमा नहीं कर पाया है। यह घटना बचपन के एक खेल से जुड़ी है । बारिश के बाद की खिली धूप में सब बच्चे खड़ब्बल का खेल खेलने गये। "यह खेल वेग और ताकत का है। इसमें कोई पाली नहीं होती, कोई किसी का जोड़ीदार नहीं होता हर कोई अपनी क्षमता से लड़ता है।" इस प्रतिस्पर्धा में कथानायक (मैं) का टिकना असम्भव था क्योंकि वह छोटा और शारीरिक रुप से कमजोर था। कथानायक (मैं) इस खेल में पिछड़ जाता है लेकिन बड़े भाई कई बार पिछड़ने के बाद और अधिक ताकत से खेलने पर जीतने लगते हैं। बड़े भाई अपने खेल में इतने डूब गये कि उन्हें छोटे भाई (कथानायक) के साथ होने का अहसास भी न रहा। छोटे भाई के लिए यह उपेक्षा असहनीय थी। वह बड़े भाई के प्रति ईर्ष्या से अधिक बदले की भावना से भर गया। तभी अचानक चटट्रान से टकराकर उसका खड़ब्बल उसके माथे पर लगा और उसका सिर फूट गया। वह खून से एकदम लथपथ होकर जोर –जोर से चिखने लगा। इस स्थिति को देखकर

बड़े भाई उसकी ओर दौड़े । उसके पास आकर पूछने लगे "क्या हुआ? क्या हुआ? बड़े भाई घबरा गये उसके माथे को दबाने लगे। वह तो बदले की भावना से जल रहा था। बड़े भाई से अपने को छुड़ाकर खून से लथपथ घर की ओर भागा।

घर पर जब खून से लथपथ माँ ने उसे देखा तो डर गयी और रोने लगीं। पिताजी घबराते हुए उसके घाव पर पावडर डालने लगे। घर वाले उसकी इस स्थिति के बारे में पूछने लगे तो उसने माँ से झूठ बता दिया कि उसे बड़े 'भाई ने खड़ब्बल से मारा है।' इसके बाद जो हुआ उसकी उस कथानायक मैं ने शायद कल्पना भी न की होगी। पिताजी गुस्से में बड़े भाई को पीटने लगे। उस समय उसने बड़े भाई के चेहरे पर जो त्रास और वेदना देखी उसे वह जीवन में कभी भुला नहीं पाया। भाई की बेबस निगाहें उसे पुकार रही थीं कि वह सच बोल दे लेकिन उस परिस्थिति में उसे सच बोलने का नैतिक साहस नहीं हुआ। उसे डर था कि क्षण भर बाद की अपनी बात से पलटने पर कहीं पिताजी उसी की धुलाई करना शुरु न कर दें।

बडे भाई बिना अपराध के पिट रहे थे। उनकी बेगुनाही कथानायक के सच बोलने पर टिकी थी। वे उसके लिए कितनी बार खेल में हारे थे । उन्हें उसका कभी भी दु:ख नहीं हुआ था लेकिन आज वे भयभीत और त्रस्त थे। उनकी आँखो में लाचारी और करुणा थी। वे उससे सच बोलने की भीख माँग रहे थे। उन्हें उस अपराध की सजा मिल रही थी जो उन्होंने किया ही नहीं था। उस समय कथानायक (मैं) सच बोलने का साहस नहीं कर पाया लेकिन वर्षों बाद भी कथानायक (मैं) की स्मृति में यह घटना बनी हुई है जो उसकी अन्तरात्मा को इस अपराध के लिए धिक्कार रही है।

कहानी के केन्द्र में बस यही घटना है। कहानी किसी निश्चित अन्त की ओर नहीं मुड़ती। कहानी का मैं अपने अपराध के लिए क्षमा- याचना करना चाहता है लेकिन अब माँ-पिताजी भी नहीं हैं जिनसे कहकर, सब कुछ बताकर शायद उसकी आत्मा मुक्त हो जाती । भाई क्षमा कर सकते थे लेकिन उन्हें यह घटना याद ही नहीं थी। यह ऐसा अपराध था जिसके विषय में लिया गया निर्णय गलत और अन्यायपूर्ण था लेकिन अब उसे बदला नहीं जा सकता था।

इस प्रकार कथानायक को अपनी गलती पर पछतावा होता हैं उसे लगता है कि वह अब अपने अपराध से मुक्त नहीं हो पायेगा। उसको अब आजीवन उस अपराध के लिए घुट-घुट कर जीने के लिए मजबूर होना पड़ेगा । इसी अपराध से मुक्ति न मिलने की व्यग्रता और परिस्थितियों से उत्पन्न लाचारी और विवशता के साथ कहानी का अन्त होता है। भले ही यह कहानी घटना पर आधारित कहानी है लेकिन घटना का आयोजन लेखक ने इस प्रकार से किया है कि कहानी मे गतिशीलता आ गई है। कथावस्तु की दृष्टि से यह कहानी एक सफल कहानी कही जा सकती है।

६-आ.४ चारित्रिक विशेषताएं

कहानीकार अपने लक्ष्य के अनुसार अपनी कहानी में पात्रों की सृष्टि करता है। ये पात्र अपने युग की समस्याओं की ओर संकेत करते हुए कहानी के लक्ष्य को पूरा करते दिखाई देते हैं। इसीलिए पात्र-चरित्र-चित्रण का कहानी में एक विशेष स्थान होता है। यह कहानी घटना प्रधान कहानी है इसलिए घटना प्रसंग को विकसित करने में कहानी के पात्रों का विशेष योगदान दिखाई देता है।

'अपराध' कहानी में लेखक ने दोनों भाइयों के चरित्र को एक-दूसरें के कॉन्ट्रास्ट में उभारा है। बड़े भाई बचपन से अपाहिज थे। वे देखने में बहुत सुन्दर थे। पंजे की लड़ाई में किसी से न हारने वाले, एक घूँसे से नारियल और ईटे तोड़ने में सक्षम, हँसमुख स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके मधुर व्यवहार के कारण उनके बहुत से दोस्त थे। वे कथानायक को बहुत प्यार करते थे, उसकी रक्षा करना अपना दायित्व समझते थे। जब कथानायक को जोड़ी और पाली वाले खेल में दुबले पतले के कारण कोई अपनी पाली में नहीं लेता था तो बड़े भाई हार-जीत की बिना परवाह किये कथानायक को अपनी पाली में सम्मिलित कर लेते थे। एक तैराक के रुप में वे कई गाँवों में प्रसिद्ध थे।

दूसरी ओर छोटा भाई (मैं) शारीरिक रुप से दुबला पतला, कमजोर चिड़चिड़ा स्वभाव का था। कहानी का मैं यह जानता था कि वे (बड़े भाई) देवता के समान है फिर भी उनसे बदले की भावना से प्रेरित होकर इर्ष्या करता था। इसके बावजूद बड़े भाई उसे अपनी जिम्मेदारी समझते थे। उसे कभी भी किसी गलती के लिए न तो डांटा और न तो कभी मारा। कथानायक की इर्ष्या और बदले की भावना के कारण बड़े भाई को एक बार पिताजी की पिटाई भी सहनी पड़ी। अपने इस अपराध को कथानायक कभी भूल नही पाता है। वह अपने अपराध की कलुषता को क्षमा के जल से धोना चाहता है लेकिन जिस पिता से झूठ बोलकर बड़े भाई को पिटवाया था वे अब नहीं हैं और बड़े भाई को भी वह घटना याद नहीं है। इस प्रकार अन्त में इर्ष्या -द्वेष की भावना रखने वाले भाई का हृदय परिवर्तन हो जाता है पर उसके उपर यह कहावत लागू होती है कि "अब के पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत।" अर्थात अतीत में की गई गलती और निर्णय को बदला नहीं जा सकता उसकी परिणति लाचारी और विवशता को झेलने में है।

६-आ.५ उद्देश्य

`अपराध' कहानी का भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य के जीवन में अनेक घटनांए घटित होती हैं लेकिन उन घटनाओं में से एकाक घटना ऐसी होती है कि हम चाह कर भी उन्हें भूल नहीं पाते । ये घटनांए सुखद भी हो सकती हैं और दुखद भी हो सकती हैं । अतीत की घटनाओं का सामना करते समय मनुष्य को हमेंशा मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है। अगर किसी घटना या प्रसंग विशेष के सन्दर्भ में मनुष्य ने ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित होकर कोई गलत काम कर दिया और उसका परिणाम किसी निरपराधी व्यक्ति को सहन करना पड़ा तो उस अपराध से मुक्ति पाना असम्भव है। वह अन्याय पूर्ण और अमानवीय निर्णय भविष्य में बदला नहीं जा सकता। उसके लिए घुट-घुट कर मरने और पश्चाताप की आग में जलने के सिवाय कोई उपाय शेष नहीं रह जाता । अपराध कहानी का उद्देश्य मानवीय संकट का बोध कराना है। इस मानवीय भावना का उद्घाटन लेखक ने कथावाचक (मैं) उसके बड़े भाई के माध्यम से किया है। कथावाचक (मैं) के बचपन में एक ऐसी घटना घटित हुई जो घटना आज भी कथानायक के हृदय को झकझोर रही है, उसे धिक्कार रही है। बचपन में कथानाथक खड़ब्बल खेल के दरम्यान अपने अपाहिज हितचिन्तक बड़े भाई के गुणों को विस्मृत कर इर्ष्या-द्वेष से प्रेरित ऐसा झूठ बोल दिया जिसका परिणाम निर्दोष बडे भाई को सहन करना पड़ा। कथानायक को स्वयं के खड़ब्बल से चोट लगी लेकिन खून से लथपथ कथानायक (मैं) घर जाकर झूठी बात बता देता है कि बड़े भाई ने खंडबल से उसे मारा । उसके इस झूठ का परिणाम हुआ कि पिताजी बड़े भाई को मारते रहे, वह अपनी सच्चाई बताते रहे लेकिन पिताजी सुनने के

लिए तैयार नहीं थे। बड़े भाई की कातर आँखे सच बोलने की याचना करती रहीं पर छोटे भाई ने डर से सच्चाई नहीं बतायी। लेकिन आज भी उस घटना को याद करके छोटा भाई पश्चाताप की आग मे जल रहा है। वह अपनी सच्चाई बताकर क्षमा याचना करना चाहता है पर जिस पिताजी ने बड़े भाई को मारा था वे नही रहे। भाई को भी वह घटना याद नही है तो प्रश्न उठता है कि उसे क्षमा कौन करेगा। जैसे धनुष से छूटा तीर वापस नही आता वैसे अगर अतीत में कोई गलत निर्णय या अमानवीय अन्यायपूर्ण कार्य कर दिया जाय तो वह बदला नहीं जा सकता। "ऐसी घटना जो जीवन भर आपका साथ नही छोड़ती और अक्सर स्मृति में बीच-बीच में कहीं अचानक सुलगने लगती है। किसी अंगारे की तरह, दुःख दायी बन जाती है। उस अतीत के अपराध से पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाता है।

इसलिए कहानीकार इस कहानी के माध्यम से संदेश देना चाहता है कि जीवन में घटनाओं का सामना करते हुए हमें मानवीय मूल्यों और नैतिक दायित्व को हमेंशा ध्यान में रखना चाहिए। किसी बदले की भावना से किया गया काम हमेंशा दुखदायी होता है। उस अपराध से मुक्ति मिलना असम्भव हो जाता है। पश्चाताप की आग में जलने के लिए मनुष्य विवश हो जाता है। इस प्रकार इस कहानी में केवल संवाद नहीं हैं, लेकिन भाषा की वर्णन क्षमता उद्‌भुत है। छोटे-छोटे, सरल वाक्यों का प्रयोग इस प्रकार उदय प्रकाश जी ने किया है कि जिसमें चित्रात्मकता और नाटकीयता के साथ अर्थ-छविया उजागर हो जाती हैं जैसे – ऐसी घटना जो जीवन भर आपका साथ नहीं छोड़ती और अक्सर स्मृति में, बीच-बीच में कहीं अचानक सुलगने लगती हैं। किसी अंगारे की तरह इन्हीं विशेषताओं के कारण उदय प्रकाश जी नये हिन्दी कहानी कारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

६-आ.६ महत्वपूर्ण अवतरण

१. ऐसी घटना जो जीवनभर आपका साथ नहीं छोड़ती ओर अक्सर स्मृति में बीच में,कहीं अचानक सुलगने लगती है।

२. कोई भी हारना नहीं चाहता था। यह एक ऐसा खेल था, जिसमें कोई पाली नहीं होती, कोई किसी का जोड़ीदार नहीं होता। हर कोई अपनी अकेली क्षमता से लड़ता है।"

३. मेरी स्मृति में जब भी वे आँखें जाग उठती हैं, मेरी पूरी चेतना ग्लानि, बेचैनी और अपराध – बोध से भर उठती है।

४. और क्या यह ऐसा अपराध नहीं है, जिसे कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता? क्यों कि इससे मुक्ति अब असम्भव हो चुकी है।

६-आ.७ समीक्षात्मक प्रश्न

१. 'अपराध' कहानी का कथानक स्पष्ट कीजिए।
२. 'अपराध' कहानी के माध्यम से श्री उदय प्रकाश जी क्या कहना चाहते है?
३. बडे भाई साहब का चरित्र- चित्रण कीजिए।
४. 'अपराध' कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

६-आ.८ लघूत्तरी प्रश्न

१. कथानायक (मैं) ने कौन-सा अपराध किया और क्यों ?
२. कथानायक (मैं) की आत्मा क्यों उसे धिक्कार रही है ?
३. कथानायक (मैं) को अपने अपराध के क्षमा की आश क्यों नहीं है ?
४. कथानायक (मैं) के पश्चाताप को अपने शब्दों में लिखिए।
५. भूतकाल में लिया गया कोई भी गलत एवं अन्यायपूर्ण निर्णय बदला नहीं जा सकता।" इस कथन की पुष्टि पठित कहानी के माध्यम से कीजिए।
६. बड़े भाई साहब अपने छोटे भाई के साथ कैसा व्यवहार करते थे ?
७. खडब्बल का खेल कैसा खेल है ?

६-आ.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. बडे भाई साहब कथानायक (मैं) से कितने साल बड़े थे ?
२. बड़े भाई को किस लड़ाई में कोई नहीं हरा सकता था ?
३. छोटा भाई खेल में अकेला क्यों पड़ जाता था ?
४. अक्सर कथानायक (मैं) को लोग किस खेल में अपनी पाली में शामिल नहीं करते थे ?
५. कथानायक की स्मृति में और ह्रदय में कौन सी घटना आज तक सुलग रही है ?
६. कथानायक लोहू-लूहान क्यों हो गया ?
७. कथानायक (मैं) बड़े भाई से नाराज क्यों हो गया ?
८. कथानायक किसकी ऑच में झुलस रहा था ?
९. बड़े भाई गाँवों में किस के लिए प्रसिद्ध थे ?
   (१) क्रिकेट के लिए (२) गुल्ली डंडा के लिए
   (३) फुटबॉल ने लिए (४) तैराकी के लिए।
१०. खून से लथपथ कथानायक ने अपनी माँ से अपने चोट के बारे में क्या कहा ?
११. बड़े भाई साहब का कौन सा पैर पोलियो का शिकार था ?
१२. कथानायक के बड़े भाई को उनके पिता जी ने मारना क्यां शुरु किया ?

❖❖❖❖

गद्यज्योति - संपादक; डॉ. रामकिशोर शर्मा

लेखिका - डॉ. सुमनिका सेठी

गद्य ज्योति
इस संग्रह के विषय में

गद्य के विभिन्न रुपों में विभिन्न विषयों तक छात्रों को ले जाने का एक सुंदर प्रयास 'गद्यज्योति' में किया गया है। इसमें हिंदी के कुछ बड़े रचना कारों की लेखनी से भी छात्र-छात्राओं (पाठकों) का परिचय हो जाता है। इन रचनाकारों में हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा और रामवृक्ष वेणीपुरी, पांडेय वेचन शर्मा उग्र है तो माखनलाल चतुर्वेदी, मुंशी प्रेमचन्द, हरिशंकर परसाई, विष्णुप्रभाकर और विद्यानिवास मिश्र भी हैं। एक लेखक गुणाकार मुले विज्ञान लेखन की बानगी प्रस्तुत करतें हैं तो हमारे पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद राजनीति से जुड़े रहे हैं और हिंदी में लिखते रहे। इस संग्रह में गद्य की जो विधाएँ आई हैं वे गद्य की मुक्त विधाएँ कहलाती हैं। इनमें निबंध, रेखाचित्र, जीवनी, संस्मरण, यात्राविवरण, डायरी आदि आते हैं। मुक्त इसलिए कि इनमें विधा के नियम कसे हुए नहीं रहते- लेखक को विधा की आत्मा में रहते हुए अपने विचारों को किसी भी शैली में कहने की छूट रहती है। दूसरी और कहानी, नाटक, उपन्यास, आलोचना का शिल्प लगभग तय सा होता है अत: वे बद्ध गद्य विधाएँ कहाती हैं।

इस संग्रह में विषय भी बहुरंगी हैं, व्यक्ति जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक, धरती से लेकर अंतरिक्ष तक, पेड़पौधों- पशुओं से लेकर मनुष्य समाज तक-सबको एक गहरी मानवीय अन्तदृष्टि से देखा गया है। और साहित्य का प्रयोजन भी तो यही है- मनुष्य ह्रदय के रागात्मक तार सम्पूर्ण सृष्टि से जोड़ देना।

कुल ग्यारह गद्य कृतियाँ

७-अ	'डायरी से'	ये तीनों कृतियाँ आत्मकथात्मक हैं, अत: इन्हें एक यूनिट के तहत रख सकते हैं।
७-आ	'माँ भारती'	
७-इ	'धरती और धान'	
८-अ	'कुटज'	मानवेतर जीवनरूपों को केन्द्र में रखकर चलती हैं।
८-आ	'गौरा गाय'	
९-अ	'राजर्षि का जीवनदर्शन'	एकमें राजर्षि टंडन के व्यक्तित्व का समग्र आकलन है तो दूसरे में एक महानगर
९-आ	'जहाँ आकाश नहीं दीखता'	
१०-अ	'मातादीन चाँदपर'	कलकत्ता का समग्र चरित्र उभरता हैं।
१०-आ	'खेल'	एक में फैंटेसी शैली में भारतीय पुलिस विभाग की विसंगतियों पर व्यंग्य दुसरे में भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष और वर्गभेद को बच्चों के खेल के माध्यम से व्यंजित किया गया है।
११-अ	शनि सबसे सुन्दर ग्रह	एक पृथ्वी की विभूति है (हिमालय)
११-आ	हिमालय	दूसरी हमारे सौर-मंडल की (शनि)

७अ

'डायरी से'

इकाई की रुपरेखा

७अ.० उद्देश्य
७अ.१ प्रस्तावना
७अ.२ गद्य रचना (डायरी से) के प्रमुख विचार-बिन्दु
७अ.२.१ गणतंत्र दिवस के अनुभवों का वर्णन
७अ.२.२ विश्व राजनिति की चर्चा
७अ.२.३ युग पुरुष गांधी जी का जीवन पर प्रभाव, स्वदेशी और जेल के अनुभव
७अ.२.४ पारंपरिक विश्वासों और पुरातन शास्त्रों की चर्चा
७अ.२.५ निरन्तर पढ़ते रहने की आदत एवं उसपर चिंतन-मनन
७अ.२.६ सार्थक जीवन के विषय में कुछ विचार
७अ.२.७ नये भारत के बारे में विदेशियों की जिज्ञासाएँ और नैतिक गिरावट का बोध
७अ.३ शिल्प एवं शैली
७अ.४ मूल्यांकन (निष्कर्ष)
७अ.५ अभ्यास

७अ.० उद्देश्य

- डायरी किसी के भी अन्तरतम की झलक दिखा देती है अतः भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की डायरी के यह अंश हमें उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का बोध एवं अनुभव करा सकें।

- उनके व्यक्तित्व की उँचाई, नैतिक बोध, सादगी, सच्चाई और विनम्रता का अनुभव कर पाना।

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के साथ साथ इसमें अंकित उस दौर और समय को भी पढ़ना जिसमें तत्कालीन राजनेताओं और विश्व राजनीति की चर्चा है, गांधी जी का गहन प्रभाव, मातृभाषा और हिंदी प्रचार, जेलों के अनुभव, नवप्राप्त स्वतंत्रता का अहसास और पढ़ने के साथ साथ चिंतन मनन की आदत को रेखांकित किया गया है।

- खुद को पहचानने, अभिव्यक्त करने, आत्ममुक्ति और आत्मविकास के एक कारगर माध्यम के रुप में डायरी-लेखन की ओर विद्यार्थियों का प्रेरित हो पाना और यों लेखन का बीज ह्रदय में बोना।

७अ.१ प्रस्तावना

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद साहित्यकार न होकर भारतीय राजनीति के सिरमौर हैं- स्वतंत्र भारत के पहले राष्ट्रपति। उनके माध्यम से हम उस समय के प्रतिनिधि चरित्र से मिलते हैं – देश सेवा को समर्पित एक भारतीय पुरुष, एक राजनेता, एक अध्यापक, वकील और स्वतंत्र चितंक और लेखक। बिहार के एक छोटे से गाँव जीरादई में (१८८४) उनका जन्म हुआ। लेकिन शिक्षा की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए आप एम. ए. फिर एल. एल. बी. (कानून) हो गए – अध्यापन और वकालत के बाद देश की स्वाधीनता के यज्ञ से जुड़े और सन १९५० में २६ जनवरी के दिन, भारत के पहले राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए।

हिंदी के शीर्ष विद्वानों के सम्पर्क में आने से हिंदी में लेखादि लिखना आरम्भ कर ही चुके थे और फिर तो उनकी कई पुस्तकें प्रकाश में आईं जिनमें 'भारतीय शिक्षा', 'गांधी जी की देन', 'साहित्य शिक्षा और संस्कृति', और 'आत्मकथा' खासी प्रसिद्ध हैं। सन १९४० में लिखी 'आत्मकथा' पर तो उन्हें 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' (नागरी प्रचारिणी सभा) प्राप्त हुआ। राष्ट्रभाषा परिषद, बिहार ने भी इन्हें सम्मानित किया।

डायरी के प्रस्तुत अंशो में पहले तो वह उस दिन का वर्णन दर्ज करते हैं जब भारत गणराज्य बना और वे पहले राष्ट्रपति। इस दिन का महत्व उनके जीवन में ही नहीं, राष्ट्र के इतिहास में भी हैं। व्यक्ति के तौर पर बुखार से ग्रस्त होकर भी इस दिन के राष्ट्रीय महत्व को वे पूरी तरह महसूस करते हैं, उसका एक एक पल जीते हैं। उसके बाद कई छोटी छोटी टिप्पणियाँ उभरती हैं और व्यक्तित्व के पहलू उजागर होते हैं और यों डॉ. राजेन्द्र प्रसाद इतिहास का एक नाम भर न रहकर एक जीता जागता व्यक्ति बन पाठक के सामने अवतरित होते हैं और हमारे व्यक्तित्व पर कुछ छाप छोड़ जाते हैं।

७अ.२ 'डायरी से' के प्रमुख विचार-बिन्दु :

'डायरी से' मे विषय के आधार पर दो स्पष्ट भाग हैं। पहला राष्ट्रपति बनने के दिन के अनुभव और दूसरा भाग जिसमें राजनीति, समाज एवं जीवन के संबंध में उनके विचार सूत्र रूप में हैं।

७अ.२.१ गणतंत्र दिवस के अनुभवों का वर्णन :

इनमें राजेन्द्र प्रसाद ने २६ जनवरी, १९५० की सुबह से लेकर रात तक की एक एक घटना को डायरी में अंकित किया है। वे लिखते हैं कि रात से उन्हें बुखार सा था फिर भी सुबह उठकर सबसे पहले वे बापू की समाधि पर प्रार्थना करने गए, फिर मंदिर और तदुपरांत घर पर पूजा के बाद एक ऐतिहासिक विजापट्ट उन्हें पहनाया गया जिसे महाराजा रणजीत सिंह के सिपाही महकय सिंह पहनते थे और विजयी होते थे। इसमें नवग्रहों के लिए नगीने और गीता

रखी गई थी। उसके बाद राष्ट्रपति भवन की कार्यवाही का वर्णन है जिसमें वे राष्ट्रपति पद की शपथ लेते हैं और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का आशीर्वाद प्राप्त करते है। राजा जी भारत के अंतिम गर्वनर जनरल थे। २६ जनवरी का यह दिन मेघों से घिरा था, जनवरी की सर्दी को हल्की सी बरसात और ठिठुरा रही थी और ढाई बजे जुलूस निकलने वाला था। पर जब जुलूस का मौका आया तो गुनगुनी धूप निकल आई और छः घोड़ो की बग्घी पर सवार हो राष्ट्रपति का जुलूस जब निकला ता जनता का उत्साह और प्रेम उमड़ रहा था। ये दृश्य राजेन्द्र प्रसाद के मन में बचपन की, ५० साल पहले की एक स्मृति जगा देते हैं, जब उन्होंने कलकत्ते मे लार्ड कर्ज़न को ऐसे ही जुलूस में देखा था। वे तीनों फौजों की सलामी की रस्य की चर्चा भी करते हैं।

रात के भोज में अनेक देशी-विदेशी मेहमान थे – विदेशी राजदूत, कुछ मंत्री, अफ़सर और राजा-महाराजा भी। सभी ने भारत और भारतवासियों को इस शुभ दिन (प्रजातंत्रात्मक गणराज्य) की बधाई दी और जवाब में राजेन्द्रप्रसाद ने सबसे मैत्री की इच्छा जतलाई। यही वे एक औपचारिकता की भी बात करते हैं जो उन्हें कुछ अजीब और अटपटी लगी थी। एक व्यक्ति सभा में उपस्थित सब मेहमानों का परिचय उन्हें दे रहा था – जिन्हें वे अर्से से जानते थे, उनका भी। कुल मिला कर यह दिन बिना किसी बाधा के बीत गया। दिन के अवसान पर उनके मन में निजी नहीं, राष्ट्रीय गौरव का भाव जागा और जागा गहरा दायित्व-बोध। वे प्रार्थना करते हैं कि वे यह बोझ ठीक से उठा पाएँ।

७अ.२.२ विश्व राजनीति की चर्चा :

भारत के राष्ट्रपति की डायरी में विश्वराजनीति की चर्चा होना स्वाभाविक है। वे अमेरिका के पाकिस्तान को हथियार देने की घटना के प्रभावों की चर्चा करते हैं। इससे भारत-पाकिस्तान के संबंधो में शंका-संदेह और बढ़ेगा, संबंध सुधरने के बजाए और बिगड़ेगें। इसी तरह की फूट डालने की कुटिल नीतियाँ अमेरिका तुर्की, ईरान, अफ़गानिस्तान और अरब देशों में भी अपना रहा है जो एशिया में अस्थिरता फैलाने की चाल राजेन्द्र बाबू को लगती है।

७अ.२.३ युग पुरुष गांधी जी का जीवन पर प्रभाव, स्वदेशी और जेल के अनुभव :

गांधी जी के व्यक्तित्व और आचरण का प्रभाव हर छोटे-बड़े मनुष्य पर पड़ता था क्योंकि वे उपदेश में नही करनी में विश्वास करने वालों में थे। जैसे बेतिया आने पर राजेन्द्र बाबू ने देखा कि गांधी जी कागज़ के लिफ़ाफ़ो, छोटे मोटे टुकड़ो को भी फेंकते न थे। महत्वपूर्ण लेख हों या काँग्रेस के प्रस्ताव, ऐसे ही कागज़ों पर लिखते थे। सार्वजनिक कामों में पैसे के खर्च को लेकर वे बहुत सावधान थे। इस बात का असर लेखक पर हुआ था।

इसी तरह उस दौर की दूसरी बड़ी विशेषता थी – स्वदेशी के प्रति जन-जन का अनुराग। राजेन्द्र प्रसाद भी बचपन से ही स्वदेशी चीज़ो का व्यवहार करने लगे थे। वस्त्र तो स्वदेशी थे ही, और भी चीज़ों में स्वदेशी चीज़ों की तलाश रहती। जो चीज़ स्वदेशी न मिलपाती उसका प्रयोग ही छोड़ देते। वे लिखते हैं कि पूरी पढ़ाई के दौरान उन्होंने विदेशी कलम या निब का इस्तेमाल कमी न किया और सारी परीक्षाएँ देशी कलमों से दीं। खादी को गहरे सन्मान के साथ पहना।

हिंदी-भाषा का प्रचार भी स्वदेशी भावना का ही एक दूसरा पहलू था। गांधी जी ने दक्षिण भारत में भी हिन्दी प्रचार शुरु किया था और राजेन्द्र प्रसाद उस दिन का सपना देखने लगे थे जब वह सारे भारत की राजभाषा हो जाएगी। इन्हीं अनुभवों के साथ वे जेल के अनुभवों को भी दर्ज करते हैं। जेल में इन देशभक्त राजनीतिक बंदियों को पत्र वगैरह छिपा कर पहुँचा दिए जाते थे। राजेन्द्र बाबू को पता नहीं था कि किताबें मंगवाना भी मना है। इसलिए पहले तो वे किताबें मंगवाते रहे लेकिन एक दिन जैसे ही उन्हें पता चला कि यह जेल के नियम के खिलाफ़ है तो उन्होंने जेलर को पुस्तकें लौटा दीं।

७अ.२.४ पारंपरिक विश्वासों और पुरातन शास्त्रों की चर्चा :

अपनी डायरी में राजेन्द्र प्रसाद शुभ-अशुभ शकुन की चर्चा भी करते हैं और प्रश्न भी उठाते हैं। वे मानते हैं कि अच्छी-बुरी घटनाओं के पूर्व-संकेत के रुप में कई चीज़ें भारतीय मन में संस्कार की तरह बैठी होती हैं। वे तुलसीदास का भी हवाला देते हैं। लेकिन अगर इन में, कुछ सत्य हो भी तो वे केवल होनी-अनहोनी के संकेत भर हैं, उनके कारण नहीं। अत: उनसे प्रभावित या त्रस्त होने की जरुरत नहीं। पुराने शास्त्रों में वे पूजा प्रतीक, मूर्तियों के रंग, वेदी आदि के संदर्भ में वास्तुशास्त्र की चर्चा भी करते हैं- कि उन सब आकारों-प्रकारों का संबंध गणित और ग्रहादि से होता था। गांधी की समाधि के स्मारक के विषय में वे आधुनिक डिज़ाइन और वास्तु दोनों का जिक्र करते हैं।

७अ.२.५ निरन्तर पढ़ते रहने की आदत एवं उसपर चिंतन-मनन :

जेल की बात करते हुए भी राजेन्द्र प्रसाद ने पुस्तकों की चर्चा की थी। बाद में भी वे अपनी डायरी में विनोबा और डॉ. राधाकृष्णन के ग्रन्थों के बारे में लिखते हैं। वे दोनो विद्वानों की भिन्नता और विशेषता के बाबत भी लिखते हैं। गीता पर विनोबा के प्रवचन पढ़ने पर उनकी साधना-और अनुभव पक्ष की बात करते हैं तो राधाकृष्णन का गीता का अनुवाद पढ़ते हुए उनके ज्ञान की व्यापकता से चमत्कृत होते हैं। लेकिन वे कहते हैं कि केवल पढ़ना पर्याप्त नहीं, उस पर चिंतन करना और उसे जीवन में उतारना भी चाहिए।

७अ.२.६ सार्थक जीवन के विषय में कुछ विचार :

उनकी डायरी में कुछ छोटी छोटी टिप्पणियाँ हैं, जिनका महत्व जीवन जीने की कला की दृष्टि से बहुत बड़ा है। कहीं वे शुभ संकल्पों को जीवन में उतारने की समस्या से जूझते दिखते हैं, कहीं बड़े बड़े कामों को कैसे निभाए, इसपर सोचते हैं। कहीं वे अच्छे और बुरे विचारों के प्रति एक आन्तरिक रणनीति बनाते हैं तो कहीं सच्ची स्वतंत्रता, अंहिसा का अर्थ समझना, समझाना चाहते हैं। वे मातृभाषा के महत्व के विषय में भी गहनता से विचार करते हैं।

वे कहते है कि शुभ निर्णयों के पालन की शुरुआत शुभ दिन में व्रत-पालन की तरह करनी चाहिए। इससे एक अभ्यास बनेगा और नेक इरादों को टालने की जगह निभाने की आदत जड़ पकड़ लेगी। इसी तरह वे लिखते हैं कि बुरे काम की इच्छा होने मात्र से ही उसे 'पापकर्म' मान लेना चाहिए जबकि अच्छे काम में इच्छा मात्र से नहीं करने के बाद ही 'पुण्य' मानना चाहिए। यानी बुराई के ख्याल से भी लड़ना होगा – अच्छाई को ख्याल की दुनिया से बाहर लाकर मूर्त करना होगा।

फिर अंहिसा की कसौटी समझाते हुए कहते हैं – ऐसा कोई काम, जिससे हमें मानसिक या शारीरिक कष्ट पहुंचता है, हम दूसरों के लिए भी न करें। 'आत्म' ही 'पर' का सच्चा दिग्दर्शक है।

सच्ची स्वतंत्रता का अर्थ है अपनी जरुरतें कम कर लेना – नहीं तो अपनी जरुरतों के बंधन में बंदी हो हम सदा छटपटाया करते हैं। सुख पाना कुछ बुरा तो नहीं – लेकिन सुख के भी अलग स्तर हैं – केवल शारीरिक सुख की साधना करते जाना जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता।

मातृभाषा का संबंध बुद्धि ही नहीं ह्रदय से भी होता है – उसका ज्ञान ही व्यक्तित्व को सम्पूर्णता में उन्मीलित करता है और निखारता है। और हाँ, कितना सुन्दर और छोटा सा उपाय वे देते हैं कुछ भी महत्व का करने के लिए "नियम पूर्वक थोड़ा भी काम प्रतिदिन किया जाए तो उसका फल साल के अंत मे काफ़ी बड़ा देखने में आता है।"

७अ.२.७ नये भारत के बारे में विदेशियों की जिज्ञासाएँ और नैतिक गिरावट का बोध :

राजेन्द्र प्रसाद ने विदेशियों में दो तरह की जिज्ञासाओं को अनुभव किया। पहली तो स्वाभाविक जिज्ञासा आज़ाद भारत के बारे में है कि इसमें आज़ादी के बाद क्या परिवर्तन हुए हैं। दूसरे वे गांधी के व्यक्तित्व के बारे में जानने को उत्सुक हैं ताकि उनके जीवन, राजनीति, दर्शन के विषय में कुछ और जानें और अपने साथ अपने देशों में ले जाएँ।

लेकिन डायरी का प्रस्तुत अंश जब समाप्त होता है तो एक चिंता का व सुन पड़ता है। ईमानदारी और चरित्र की गिरावट आज़ादी के बाद तेज़ी से दिखाई पड़ने लगी थी। राजेन्द्र प्रसाद सोचते हैं कि क्या केवल बातों से कुछ होगा - या कुछ ठोस योजना बनानी होगी।

७अ.३ शिल्प एवं शैली

यह अंश तो डायरी के मुक्त शिल्प में ही है। यहाँ व्यक्ति अपने दिन-प्रति दिन के महत्वपूर्ण अनुभवों, घटनाओं, विचारों को उत्तम पुरुष की शैली में दर्ज़ करता है, मानो अपने को ही यह सब सुना रहा हो, समझा रहा हो, व्यक्त कर रहा हो। लेकिन इस निजी वर्णन में, वैयक्तिक इतिहास में, कई कुछ स्वतः ही उभरता चला आता है यानी एक व्यक्ति का देश, उसका काल, उस काल की चिंताएँ और उस काल के स्वप्न। ६० साल पहले के ये ब्यौरे पढ़ कर हम उस वक्त के चिह्न, नयन-नक्श को कुछ तो पहचान सकते हैं। राजेन्द्र प्रसाद की शैली सरल है, उनके व्यक्तित्व ही की तरह। उनमें कहीं आत्ममुग्धता या दम्भ की गंध तक नहीं। उनमें स्मृतियाँ भी चली आतीं है, विश्लेषण भी, कथातत्व भी, तर्कणा और विचार के साथ साथ भावुकता का प्रवाह भी।

७अ.४ मूल्यांकन

डायरी का यह अंश इतिहास के एक महत्वपूर्ण पृष्ठ को हमारे सामने खोल देता है – एक चमकता हुआ दिन, जब देश प्रजातंत्रात्मक गणतंत्र बना। उपनिवेशवाद की छाया से भी मुक्त हुआ। फिर उस दिन का वर्णन दूर से देखकर नहीं, घटनाओं के बीचों बीच बैठा एक व्यक्ति कर रहा है, दूसरों को सुनाने के लिए नहीं, जैसा उसने भोगा बिल्कुल वैसा, अपने ही सम्मुख रख रहा है। इन शब्दों मे अनुभव की सच्चाई है।

एक राष्ट्रपति के व्यक्तित्व का आभास हमें होता है। उसकी विनम्रता, देशभक्ति, आत्मविकास और आत्मसंशोधन की तड़प तथा समाज को लेकर उसकी चिंताओं से हमारा सामना होता है। हम अजाने ही आज की आत्म केन्द्रित राजनीति और राजनेताओं से तुलना करने लगते हैं।

७अ.५ अभ्यास

नोट : तीन तरह के प्रश्न इस पर आ सकते हैं

१. संदर्भ सहित व्याख्या।
२. किंचित विस्तृत उत्तर की अपेक्षा वाले (निबंधात्मक) प्रश्न।
३. वस्तुनिष्ठ उत्तरों की अपेक्षा वाले प्रश्न।

१) संदर्भ सहित व्याख्या :

यदि हमको किसी .....भूल तत्व है (पृष्ठ २१)भूमिक शीर्षक मंगली पंक्ति में लिखो। भूमिका में राजेन्द्र प्रसाद का दो तीन पंक्तियों में परिचय देना चाहिए। फिर 'डायरी से' का समग्र आकलन एक पैराग्राफ में देना चाहिए। तदुपरांत प्रस्तुत पंक्तियों के संदर्भ को रखना चाहिए।

व्याख्या : उपर्युक्त चार पंक्तियों का पूरा आशय समझाने का प्रयत्न करना चाहिए।

विशेष : इस भाग में भाषा, शैली, वस्तु की विशेषताओं को लिखना चाहिए।

२) निबंधात्मक प्रश्न : जैसे

१. 'डायरी से' के आधार पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने प्रथम राष्ट्रपति बनने के अनुभवों का वर्णन कैसे किया है, लिखिए।
२. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने डायरी के अंशो में जीवन, भाषा, गांधी जी और अन्य विषयों पर क्या विचार रखे हैं, लिखिए।
३. 'डायरी से' के आधार पर राजेन्द्र बाबू का कैसा चरित्र आपके मन मे बनता है, वर्णन कीजिए।

३) भूल रचना के आधार पर वस्तुनिष्ठ प्रश्नो के उत्तर । जैसे

- 'डायरी से' में राजेन्द्र प्रसाद ने किस विशेष दिन का वर्णन किया है ?
- रात के भोज में राजेन्द्र प्रसाद को कौन सी प्रथा कुछ अजीब लगी ?
- अमेरिका की किस बातपर वे भारत की चिंता को व्यक्त करते हैं ?
- गांधी जी की किस बात से राजेन्द्र प्रसाद प्रभावित हुए ?
- राजेन्द्र प्रसाद ने डायरी में किन के लिखे ग्रन्थों को पढ़ने की बात की है ?
- स्वदेशी के बारे में राजेन्द्र प्रसाद ने क्या बताया है ?

(अर्थात मूल रचना को पढ़ना ही विद्यार्थी का पहला कर्तव्य है, उसके बाद ही सब सामग्री सहायक हो सकेगी।

❖❖❖❖

७आ

'माँ भारती'

इकाई की रुपरेखा

७आ.० उद्देश्य
७आ.१ प्रस्तावना
७आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार-बिन्दु
७आ.३ शिल्प एवं शैली
७आ.४ मूल्यांकन
७आ.५ अभ्यास

७आ.० उद्देश्य

१. रामवृक्ष वेणीपुरी के अभावों भरे जीवन में देश एंव समाज और साहित्य-साधना से जुड़ी भावना कों रेखांकित करना।
२. सत्ता, धन और भौतिक उपलब्धियों से साहित्य एवं कला की साधना बड़ी चीज़ है - यह आभास करवाना।
३. स्वराज्य के बाद राजनीति के अधोपतन और देश की गरीबी और जहालत की व्यंजना करना।

७आ.१ प्रस्तावना

रामवृक्ष वेणीपुरी १९०२ में जन्मे (बिहार) थे और मैट्रिक से पहले ही राजनीति में कूद पड़े थे। इसलिए औपचारिक स्कूली शिक्षा अधूरी रही और कॉलेज कभी गए ही नहीं। फिर भी स्वाध्याय के बल पर सरस्वती के साधक ऐसे बने कि न जाने कितनी पत्र-पत्रिकाओं के संपादक रहे और साहित्य में तो कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रा, लेख-हर गद्यविध में रचना की। कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ हैं – माटी की मूरतें, पतितों के देश में, लालतारा, चिता के फूल, कैदी की पत्नी, गेहूँ और गुलाब। कई नाट्यकृतियाँ भी है और वेणीपुरी जी की गणना हिंदी की शीर्ष प्रतिभाओं में होती है।

प्रस्तुत निंबध आत्मकथात्मक ढंग से उनके जीवन के दो पक्षों को उभारता है – स्वतंत्रता के प्रति उनकी दीवानगी और समर्पण और दूसरी ओर साहित्य रचना के माध्यम से नयी सुंदर दुनिया का सपना देखना। स्वराज्य की प्राप्ति के बाद वे राजनीति से दूर हो जाते हैं क्योंकि उसमें आए प्रदूषण और नैतिक गिरावट को उनका सच्चा मन कभी स्वीकार नहीं कर पाता। पर दूसरी ओर साहित्य की साधना में गहरे और गहरे उतरते जाते हैं और रचना की प्रतीक-देवी सरस्वती के प्रति कृतज्ञता अनुभव करते हैं।

७आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार-बिन्दु

७आ.२.१ पीछे मुड़कर अपने जीवन को देखना :

बेणीपुरी जी अपने बारे में बताते हैं कि उनका जन्म एक गरीब किसान परिवार में हुआ था। गरीबी के अलावा माता-पिता का साया भी भाग्य ने बचपन में ही छीन लिया। किसी तरह कुछ दूर तक स्कूली शिक्षा पाई लेकिन वह भी पूरी नहीं कर पाए क्योंकि गांधी जी देश के नवयुवकों को असहयोग आंदोलन में शामिल होने का आह्वान कर चुके थे। 'कालेज का मुँह भी कभी नही देख सका' वाक्य में एक कसक भी सुनाई पड़ती है। पर साथ ही साथ उन्हें इस बात का संतोष है कि उनका स्वभाव स्वतंत्र था, जब जो सही लगा, वही किया; कभी समझौते नहीं किए और न ही किसी का गलत अनुसरण किया। ऐसा भी नहीं कि जीवन में कष्ट नहीं आए, पर उन्हें हँसकर उड़ाने की ताकत भी हमेशा उन्हें मिलती रही। लेकिन कभी अपने घावों और दु:खों का प्रदर्शन करने और अयाचित सहानुभूति प्राप्त करने की इच्छा उनमें कभी जगी नहीं। इसलिए हालात के सदमों से उनका सिर कभी झुक नहीं पाया। और सबसे बढ़कर वे मानते हैं कि सरस्वती – माँ भारती – साहित्य की प्रेरणा का वरद हस्त उनके सिर पर हमेशा बना रहा।

७आ.२.२ जेल में साहित्य-साधना :

वे लिखते हैं कि अपने को समय और परिस्थिति के अनुरूप वे सदा झोंक देते थे। बार बार जीवन का ताप, चहुँ ओर के दु:ख – तकलीफ़े और कष्ट उन्हें झुलसा देते थे। लेकिन यही सदा का अग्निस्नान उन्हें जीवन का वह अनुभव देता रहा जो उनके साहित्य का खाद-पानी और मिट्टी बना। बैठे ढाले, कल्पना की दुनिया में रहकर वे शायद ही कुछ लिख पाते। और लिख भी पाते तो उसमें जीवन की वैसी आँच नहीं होती, जैसी उनकी रचनाओं में आ गई। और तो और साहित्य-रचना की शुरुआत भी जेल जैसी जगह में हुई। वे बार बार जेल गए, चौदह बार जेल गए और जीवन के लगभग साढ़े सात वर्ष जेलों में ही काटे। एक बार जब उनका जेल-प्रवास पाँच साल तक चला, तभी भीतर भीतर कुछ रासायनिक परिवर्तन ऐसा हुआ कि उनकी कलम चलने लगी। दिन भर वे साथियों को लिखाते-पढ़ाते, बत कही करते पर रात होते ही, एकान्त और सन्नाटा जैसे ही घिरता तो वे जो लिखना शुरु करते तो आधी आधी रात तक लिखते रहते। वे लिखते हैं कि जेल से छूटने पर लगभग पाँच हज़ार हाथ के लिखे पृष्ठ साथ थे। ये वे कृतियाँ थीं जिन्होंने बेणीपुरी जी को कीर्ति के शिखर पर बैठा दिया था - यानी 'अंबपाली', 'माटी की मूरते' जैसी बहुचर्चित रचनाएँ इनमें शामिल थी। अजीब सा सिलसिला था कि जेल से बाहर रहते तो साहित्य एवं पत्रों के माध्यम से राजनीति में डूब जाते लेकिन जेल जाते तो साहित्य में गहरे डूब जाते। साहित्य दोनों ही स्थितियों में किसी न किसी रूप में बना ही रहता।

७आ.२.३ स्वतंत्रता आंदोलनो का फलित होना, स्वतंत्रता, विभाजन और गांधी जी की हत्या :

बेणीपुरी जी उस दौर का जिक्र करते हैं जब जयप्रकाश जी फिर से आन्दोलन का शंख फूंकते हैं और बेणीपुरी फिर आंदोलन मे कूदते हैं। हर तरफ़ से कोशिशें तेज होती जाती हैं – आजादी की तान ऊपर उठने लगती है – १९४२ की अगस्त क्रांति, नेता जी की आज़ाद हिंद फौज, सब तत्व मिलकर अग्रेंज सरकार की नींद हराम करने लगते हैं और फिर इंग्लैड में लेबर पार्टी की विजय भी हिन्दूस्तान की आजादी के पक्ष में जाती है। इस तरह आजादी का सपना

सच होता है पर उसके साथ एक बड़ा दुस्वप्न जुड़ा रहता है यानी देश के त्रासद विभाजन का दुस्वप्न। हिन्दू मुस्लिम दंगों में देश टूट जाता है और इस सब के बाद गांधी जी की हत्या हो जाती है।

७आ.२.४ स्वराज्य और राजनीति का क्रमिक अधोपतन :

उसके बाद राजनीति सत्ता के लोभ से ग्रस्त होने लगती है, और जैसे जैसे लोगों का मोहभंग होने लगता है, वैसे वैसे वेणीपुरी जी खुद को राजनीति से दूर कर लेते हैं। वे कहते हैं कि गंगा - यमुना में तैर चुकने के बाद अब गंदी नालियों में पैर रखना मुश्किल है। गंगा यमुना आज़ादी के पहले की पवित्र राजनीति थी, अब तो चोरी, लूट, अपराध और एक दूसरे पर कीचड़ उछलना ही राजनीति की पहचान बन चुकी है। और यों बेणीपुरी साहित्य की शरणस्थली में लौटते हैं और साहित्य-रचना में जुट जाते हैं। कभी कोई कहता है कि आपको क्या मिला, बड़े बड़े पदों पर तो कुछ और ही लोग बैठे हैं तो बेणीपुरी जी कहते हैं कि पुरुस्कार के लिए तो वे जेल नहीं गए थे। हाँ अफ़सोस उस सामान्य जन के लिए जरुर होता है जिसकी हालत में कोई फर्ख नहीं आया।

७आ.२.५ माँ भारती के प्रति कृतज्ञता का गहन बोध :

जब वेणीपुरी जी अपने जीवन का लेखा-जोखा करते हैं तो उन्हें लगता हैं कि ज्ञान की देवी सरस्वती ने उन्हें यश, मान, धन और असीम परितृप्ति सबी कुछ तो दिलवाया है। राजनीति का फल तो समाज को मिलना चाहिए, पर साहित्य ने वेणीपुरी जी को पुरस्कार, यश, पाठकों का प्रेम सभी कुछ तो दिया। पुरुस्कारों की पहली सूची में उनकी पुस्तक, राष्ट्रीय नाटक महोत्सव में उनका नाटक, बच्चों के साहित्य पर पुरुस्कार – सभी भाषाओं में अनुवाद (एक बतौर लेखक) यूरोप भ्रमण क्या छोटी उपलब्धियाँ हैं।

उन्हें लगता है उनका भरा पूरा परिवार है, सर पर आशियाना है, बच्चों को पढ़ाने की सामर्थ्य है, और पेट भरने लायक धन भी तो है। वे बराबर याद रखते हैं अपना अतीत और उस संदर्भ में उन्हें यह भारती की कृपा ही लगती है। वह व्यक्ति जो मैट्रिक तक भी पढ़ नहीं पाया उसकी पुस्तकें दूसरे पढ़े तो यह चमत्कार ही तो है।

और राजनीति भी तो देश-दुर्दशा के निवारण का ही रूप था। उसी ने उन्हें देश के बीचों-बीच ला खड़ा किया था और साहित्य को ताकत दी थी। खाली ज्यादा समय साहित्य को देने से कोई बेहतर साहित्य लिख लेता है, ऐसा तो कोई तर्क नहीं है। वे कहते हैं कि राजनीति भी तो वे साहित्य के माध्यम से ही करते रहे थे।

७आ.२.६ साहित्य के जरिए बदलाव का सपना :

वे कहते हैं कि आज भी यह साहित्य और शब्दों की ताकत है कि वे निराश नहीं हैं। वे अपने शब्दों में भविष्य की तस्वीर गढ़ रहे हैं, भविष्य का नक्शा खीचं रहे हैं, एक नयी स्वस्थ, सुंदर मानवता की मूर्ति गढ़ रहे हैं जो गरीबी, जहालत, अन्याय और अत्याचार को हरा कर ही दम लेगी।

७आ.३ शिल्प एव शैली

बेणीपुरी जी की यह रचना आत्मकथात्मक है। निबंध तो है पर निर्बन्ध भी है। इसमें वे कई रूपकों एवं काव्योचित शैली का प्रयोग सहज ही करते हैं। साहित्य-कर्म को निरन्तर 'माँ-भारती का प्रसाद' कहना, उनके 'चरणों के निकट पहुँचना', कहना उनकी समर्पणशीला भावना को ही दिखाता है। गंगा जमुना में तैरने के बाद गंदी मोरियों में पैर रखना, तीन तरह की पार्टियों का वर्गीकरण और अन्त का सुन्दर स्वप्न सबकुछ उनकी भावना प्रवण शैली का परिचायक है।

७आ.४ मूल्यांकन

यह लेख अपने जीवन के माध्यम मे दो बड़े अनुभवों की व्याख्या करता है। एक अनुभव है स्वतंत्रता आंदोलन के विराट यज्ञ का हिस्सा बनना और दुसरा अनुभव है पाए हुए जीवन अनुभवों को, देखे हुए चरित्रों को, भाषा और शब्दों में गूथकर जीवन की व्याख्या करना। लेखक ने बड़ी सरलता और सच्चाई से साहित्य कर्म की श्रेष्ठता को कह दिया है। उनकी वाणी में ईमानदारी है, लालित्य है, प्राणमयता और गति के तत्त्व हैं। सूक्ष्म ही सही पर कलम की ताकत किसी तरह कमतर आंकी नहीं जा सकती – लेखक का यह यकीन उम्मीद जगाता है।

७आ.५ अभ्यास

तीन तरह के प्रश्नों में –

१. महत्वपूर्ण अंशों की 'संदर्भ सहित व्याख्या' करने को कहा जाएगा। रचना का पूरा विश्लेषण पढ़ लेने से इस तरह के प्रश्नों के उत्तर देने में सहायता मिलेगी।
   जैसे माँ भारती मुझे इतने पैसे भी दे रही हैं ..... बनवा लिया है (पृष्ठ ४६)
   या साहित्यिक सदा भावनाप्रवण ..... अफ़सोस नही हुआ (पृष्ठ ४६)
२. निबंधात्मक प्रश्न :
   जैसे १) रामवृक्ष वेणीपुरी 'माँ भारती' रचना में अपने जीवन के किन पक्षों को उभारते हैं?
२) रामवृक्ष वेणीपुरी जी ने राजनीति में रहते हुए साहित्य – सेवा कैसे की, लिखिए।
३. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :
१) क्या रामवृक्ष वेणीपुरी कॉलेज की पढ़ाई कर पाए?
२) वेणीपुरी जी बार बार अपने ऊपर किसकी कृपा बताते हैं?
३) आजादी मिलने के बाद वेणीपुरी जी किस बात को लेकर दु:खी रहते हैं?
४) वे कैसी 'नई दुनिया' का सपना देखते हैं?
५) वे राजनीति एवं साहित्य में से किसके निकट अंत में चले जाते हैं?
६) राजनीति से उनकी वितृष्णा क्यों बढ़ती गई?

७इ

'धरती और धान'

इकाई की रुपरेखा

७इ.० उद्देश्य
७इ.१ प्रस्तावना
७इ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार बिन्दु
७इ.३ शिल्प एवं शैली
७इ.४ मूल्यांकन
७इ.५ अभ्यास

७इ.० उद्देश्य

- जीवनी विधा का आस्वाद कराना।
- उग्र जी के बचपन, माता, पिता, भाइयों का सांगोपांग अनुभव प्रदान करना।
- उग्र जी का बेबाक वर्णन, यथार्थ चित्रण करने की उनकी शैली और कष्टमय जीवन को भी हास्य के पुट के साथ अंकित करने का अनुभव देना।
- हमारा जीवन, हमारे इर्द-गिर्द के व्यक्ति साहित्य के चरित्र एवं कथाओं से कम नहीं। चरित्र को सारे अन्तविरोधों में देख पाना और दिखला पाने की कला सिखाना।

७इ.१ प्रस्तावना

सन १९०० ई. में उ.प्र. के मिर्जापुर में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में जन्मे 'उग्र' हिंदी के बड़े कथाकारों में गिने जाते हैं। जीवन भर गरीबी और दु:ख- कष्टों को झेलते हुए भी वे अपनी खास कलादृष्टि के कारण इसका अतिक्रमण कर सके। इनकी जीवनीपरक रचना का नाम 'अपनी खबर' है जिसमें इनकी शुरुआती जिंदगी का वर्णन है। इनके विषय एवं शैली दोनों में ही एक विद्रोही तेवर नज़र आता है। उन्होंने गरीबी, कटुताओं, कुरूपताओं पर गहरे कटाक्ष किए हैं और उनका बेबाक वर्णन भी किया है

प्रस्तुत अंश 'धरती और धान' में उन्होंने अपनी परिवार और दुर्वह हालात का बड़ी साफ़गोई से वर्णन किया है, पर यह ह्रदयस्पर्शी भी है। वे अपने आई (माँ) के व्यक्तित्व के कई रग-रेशे अपने थोड़े से शब्दों से मूर्त कर देते हैं। उनकी उग्रता, कर्मठता, जीवन की गाड़ी खींचने की कला और भोलापन सब कुछ साथ-साथ उभर आता है। इसी तरह पिता की अतिशय ईमानदारी और सच्चाई का भी खासा अच्छा वर्णन करते हैं जिसकी कीमत उन्हें काफ़ी

बड़ी चुकानी पड़ी थी। फिर खुद को भी वे देखते हैं – भूख से मचलता बालक जो पेट में दाने पड़ने से उछलने-कूदने लगता था।

७इ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार-बिन्दु

७इ.२.१ उग्र जी की जन्मतिथि के संबंध में माँ का रोचक खुलासा :

उग्र जी ने यह अंश अपने माँ के एक वाक्य को याद करते हुए आरम्भ किया है। वे उनके उपनाम उग्र को कभी समझ नहीं पाई। उग्र उनके लिए 'उर्द जी' ही बना रहा। वे पढ़ी-लिखी न थी। उनका नाम जयकली था। जब भी उनसे उग्र जी ने अपने जन्म की तिथि या समय पूछा तो उन्हें काफ़ी घूम-घूमा के उत्तर मिला – बल्कि उत्तर नहीं ही मिल पाया। उसके अनुमान की ही हर संभव कोशिश होती रही। उन्हें उग्र जी के जन्म के आसपास की कई चीज़े याद थी पर तिथि याद रखना उनके वश का न था । जैसे कि उन्होंने जानकारी दी थी कि वह दिन पौष शुक्ल अष्टमी का था और पिता मंदिर से लौटे थे। या फिर कि उग्रजी के जन्म के १२ दिन बाद उग्र जी के भतीजे मातादयाल का जन्म हुआ था। यानी माता दयाल के जन्म के सहारे उग्र जी अपनी जन्मतिथि खोज सकें तो खोज लें।

७इ.२.२ पिता-श्री बैजनाथ पांडेय, उनकी सच्चाई की ज़िद एवं उसके 'दुष्परिणाम'।

उग्र जी लिखते हैं कि उनके पिता श्री बैजनाथ पांडे चुणार के एक अमीर व्यापारी द्वारा बनाए राम मंदिर में पुजारी का काम करते थे। पाँच रुपया महीना वेतन तय तो था पर उन्होंने कभी माँगा नहीं, कभी लिया ही नहीं। उग्र जी लिखते हैं "यहाँ तक कि मज़े में बिहारी साहू के मंदिर में वेतन-मोगी पुजारी रहे, पर वेतन लिया कभी नहीं – और मर भी गए।" अपने पिता के चरित्र का एक वाक्य में परिचय देते हुए वे लिखते हैं – "मेरे कहने का मतलब यह कि बैजनाथ पांडे अच्छे तो थे-बहुत–लेकिन अन बैलेंस्ड भी कम नहीं थे।"

सच्चाई के प्रति पिता की निष्ठा कुछ इतनी गहरी थी कि उन्हें जरा सा भी हेर फेर, मिलावट या समझौता पसन्द न था। एक बार उनके जजमानों मे एक बड़े जमींदार के मरने पर उनके बेटों में सम्पत्ति के लिए मुकदमा बाजी छिड़ गई। बड़े बेटे ने गवाहों में बैजनाथ पांडे का नाम भी लिखाया क्योंकि वे उनके कुल-पुराहित थे। पिता इस झगड़े में बिल्कुल पड़ना नहीं चाहते थे और नये जमींदार ने उन्हें जमीन वगैरह देने का लालच भी दिया था। पर इस का पिता पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। उन्होंने अदालत में पहले ही सच्चाई के प्रति अपनी निष्ठा की बात कह दी। उन्हींकी सच्चाई की बदौलत बड़ा भाई मुकदमा हार गया। पिता को जो थोड़ा बहुत लाभ हो सकता था – नहीं हुआ। जीवनभर को पत्नी उनको कोसती रही कि झूठ न सही, टेढ़ी-मेढ़ी बात कहकर ही गवाह धर्म का पालन कर लेते और जमींदारी पा जाते। लेकिन उग्र जी के पिता भी अपनी धुन के पक्के थे। थोड़ा सा पुरोहितकर्म और थोड़ी सी जमीन के सहारे अपने परिवार का खर्च 'मज़े मे' चला रहे थे। 'मज़े मे' शब्द उनकी वृत्ति का सूचक है, उनके हालात का नहीं।

वे संस्कृत के विद्वान, गीता के भक्त, शैव होते हुए भी वैष्णव प्रभाव से प्रभावित व्यक्ति थे। दिखने में सुंदर, चरित्र से उच्च और सत्यवादी भी थे। उन्हें क्षयरोग हुआ था। वे चाहते तो

रोग की दवा के रूप में बकरे का मांस आदि खाकर रोग को पछाड़ सकते थे। पर शैव एवं शाक्त होकर भी वे आत्मा से वैष्णव थे। उन्हें जीवन देना स्वीकार था, मांस भक्षण नहीं। हुआ भी यही। ४० साल की अल्पायु में वे इस दुनिया-जहान से विदा हो गए। परिवार पर जो कष्टों का पहाड़ टूट पड़ा, उसकी कथा कहना सरल कहाँ था। उनकी संताने भी काफी हुईं - वे १२ बच्चों के पिता बने। उग्र जी को पिता की धुंधली सी याद है। जब वे मंदिर से लौट कर बतासे घुला मीठा चरणामृत नन्हें से उग्र जी के मुँह में डाल देते थे। लेकिन उग्र जी को उनके मरने के दृश्य काफ़ी स्पष्टता से याद रहे। माँ का रोना, पछाड़ खा कर गिरना, घर मे घिरी घोर निराशा का माहौल – यह सब ढाई साल के बालक के स्मृतिपटल पर अंकित रह गया था।

७इ.२.३ भाई एवं परिवार के अन्य सदस्य :

तो पिता जाने के बाद के सब लोग अलाथ हो गए। चार बच्चे और भाभी और माँ समेत ६: लोग थे, पर कमाने वाला कोई भी न बचा। खेती-बाड़ी जितनी भी थी पर माई उसपर काम करने के बजाय नाटक एवं रासलीला में डूबे थे। पुरोहिताई की ज्यादा पूछ नये जमाने में नहीं रही थी। पैसे और पूंजी पर आधारित नया युग जो आया तो जीवन और कठिन हो रहा था। मंझला भाई बड़े भाई से लड़कर घर से भागकर रामलीला मंडलियों में अभिनय करने लगा था।

इन्हीं मे उग्र जी की एक चाची थी जिन्हें कोई बेटा न था। सबसे छोटा होने के कारण वे उनसे विशेष प्रेम करती थी। लेकिन माँ और चाची में झगड़ा अनवरत चला करता था।

७इ.२.४उग्र जी की महा क्रोधी एवं महा भोली आई (माँ)

उग्र जी के ब्राह्मण परिवार में क्रोध का तत्व तो था ही। उनमें माँ सबसे ज्यादा क्रोधी स्वभाव की थीं। गुस्से में पीट देना उनके लिए सामान्य बात थी। सोलह साल के उग्र जी को पीटने के लिए उनके हाथ मचलते रहते थे। क्रोध पर उग्र जी संकेतो में कुछ कुछ कह जाते हैं। भाई, माँ, और वे खुद क्रोध के बुरे परिणामों को भोग चुके थे। वे तुलसीदास के हवाले से बताते है कि मनुष्य की वृत्ती है अपने किए पापों को सात पर्दो में छुपाना और थोड़ी सी भलाई का ढ़ोल पीटते रहता। फिर वे माँ को याद करते हुए बताते है कि माँ कितनी सीधी-साधी और भोली थीं। इतनी भोली कि पैसों के हिसाब-किताब में अपने बेटे ही उन्हें ठगते रहते थे। माँ के परिश्रम को भी उग्र जी याद करते हैं। घर भर को लीप पोत कर वे नया बना देती थी। फटे-पुराने कपड़ो के कंथे सिल देती थी, सींक के पंखे और कागज़ के गूदे की अनगढ़ टोकरियाँ बनाती थी। शादी-ब्याह में गीत गाने में भी वे तेज थीं। जब घर में खाने को कुछ न बचता तो माँ मुहल्ले के लोगों का गेहूँ पीस पीस कर परिवार के मुँह मे कुछ डाल पातीं थी। इस तरह माँ गरीबी और परिवार की भूख से लड़ती थीं। उग्र को पेट भरने की खुशी का अनुभव आज भी याद है और उससे उपजी माँ की खुशी भी। वे कहा करती पेट, में पड़ा चारा, तो नाचे लगा बेचारा।

७इ.३ शिल्प एवं शैली

जीवनी शिल्प में स्मृति से बचपन के बहुत से ब्यौरे उभर रहे हैं। कई व्यक्ति उभरते हैं – पिता, आई, भाई, चाची एवं खुद लेखक। शैली उनकी संश्लिष्ट है पर कथा-कथन जैसी। बड़ी बड़ी दुखद स्थितियों में वे 'मजे से' शब्द जोड़ देते है – जैसे जो है, बिना लाग लपेट के

उसे कहना उनका लेखकीय कर्तव्य है। भाषा में बिंब उभारने की ताकत भी है। उदाहरण के लिए - 'एक बार तो अनेक झाडू उन्होने मुझ पर झाड़ भी डाले थे।' भाषा में लय भी है। जैसे 'तब कुछ पैसे मिलते, तब हमारे घर चूल्हा चेतता, मुँह निवाले लगते।'

७इ.४ मूल्यांकन

अपने दीन दरिद्र परिवार की स्थितियों का बयान जिस सहजता से उग्र जी करते है, बिना किसी अतिरिक्त नाटकीयता के, वह जीवन को देखने और जीने की एक दृष्टि देता है। उनके लेखन में जिस तरह घटनाओं का बाहरी स्वरूप उभरता है वैसे ही व्यक्ति का भीतरी संसार भी समाया रहता है। एक छोटे से अंश में कुछ ही रेखाओं में माँ का और पिता का पूरा व्यक्तित्व साकार हो उठता है। शैली की संश्लिष्टता और मूर्तिपरकता की चर्चा अलग से की गई है। जो मूल्य उभरते है वे हैं शायद संघर्ष करने की मनुष्य की अदम्य ताकत, दुखों के साथ मिला हुआ सुख और राहत तथा जिए हुए जीवन का आकलन करने की क्षमता।

७इ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या विषयक प्रश्न – जैसे

- मेरे कहने का मतलब .....अस्वीकृत कर दिया। (पृष्ठ ५१)
- नये नये जमींदार..... पेश कराया है। (पृष्ठ ५०-५१)
- मेरी आई परम ..... वह रख लेतीं। (पृष्ठ ५३)
  इत्यादि.

२) निबंधात्मक प्रश्न : जैसे

१. उग्र जी ने 'धरती और धान' में अपने माता, पिता और परिवार का वर्णन कैसे किया है ?
२. उग्र जी ने 'धरती और धान' में अपने बचपन एवं परिवार के अनुभवों का खुलासा किस तरह किया है ?
३. 'धरती एवं धान' के आधार पर उग्र जी के आरम्भिक जीवन की झांकी प्रस्तुत कीजिए। इत्यादि.

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

१. उग्र जी की माँ 'उग्र' की जगह क्या शब्द सुना करती थी ?
२. उग्र जी उन्हें क्या पुकारते थे ?
३. उग्र जी के पिता का देहांत किस रोग के कारण हुआ ?
४. उग्र जी के माँ में कौन सा बड़ा अवगुण था ?
५. उग्र जी की माँ किस तरह घर में चूल्हा जलाने का इंतजाम कर पाती थीं ?
६. उग्र जी की माँ के परिश्रमी होने का पता किस बात से चलता है। इत्यादि.

❖❖❖❖

८अ

कुटज

आ. हज़री प्रसाद द्विवेदी
(१९०७-१९८०)

इकाई की रुपरेखा

८अ.० उद्देश्य
८अ.१ प्रस्तावना
८अ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु
८अ.३ शिल्प एवं शैली
८अ.४ मूल्यांकन
८अ.५ अभ्यास

८अ.० उद्देश्य

- हिंदी के बड़े विद्वान, उपन्यासकार, शोधक एवं चिंतक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की लेखनी का अनुभव कराना।
- संसार की हर फूल-पत्ती तक के पीछे जीवन का गहरा अर्थ छिपा है - यह बात साहित्य के विद्यार्थी तक पहुँचाना।
- 'कुटज' के माध्यम से भाषाओं के इतिहास, अतीत के साहित्य के उदाहरण, भारतीय दर्शन के उदाहरण देते हुए आज के मनुष्य तक आना।

८अ.१ प्रस्तावना

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक गाँव में सन् १९०७ ई में हुआ। और देहावसान १९८० में दिल्ली में हुआ। संस्कृत के विद्वान, आचार्य द्विवेदी के पास अतीत के साहित्य, भाषा, कला, जीवन, ज्योतिष, दर्शन आदि का गहरा बोध था – लेकिन इतना ज्ञान उनके निबन्धों में बड़ी सहजता से जीवन का अंग बन कर प्रकट होता है। शांति निकेतन में हिंदी संस्कृत का अध्यापन करने के बाद पंजाब विश्वविद्यालय में भी विभाग के अध्यक्ष रहे। साहित्य के इतिहास में, उपन्यास विद्या में, हिंदी के मध्यकालीन संतों एवं भक्तों पर लिखते हुए और निबंधों में द्विवेदी जी का नाम अमर हो चुका है। आलोचनात्मक लेखन हो या सर्जनात्मक लेखन-दोनों में द्विवेदी जी अतुलनीय प्रतीत होते हैं। उनके निबंध संग्रह हैं कुटज, अशोक के फूल, कल्पलता, आलोक पर्व, विचार और वितर्क आदि।

प्रस्तुत निबंध पहले तो एक अजाने से पेड़ के पास पाठक को ले जाता है- उसका स्थान, उसका रूप और फिर उसके भीतर पैठी हुई जीवनी शक्ति धीरे धीरे प्रकट होती है। इस यात्रा में भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन सब साथ साथ चलते हैं। और द्विवेदीजी आज के छल एवं कपट पूर्ण जीवन का जवाब इस एक पेड़ के जीवन के माध्यम से हमें देते हैं।

८अ.२ गद्य रचना के (कुटज) प्रमुख विचार विन्दु

८अ.२.१ हिमालय, हिमालय की शिवालक श्रृंखला और बेहया से दिखते कुछ पेड़

आ. द्विवेदी का निबंध 'हिमालय' से आरम्भ होता है। कालिदास के शब्दों में वह 'पृथ्वी का मान दंड' है, वह हिमालय मानों अपनी दोनों बाहों से दोनो तरफ़ के समुद्रों की गहराई नाप रहा है। फिर द्विवेदी जी हिमालय की निचली श्रेणियों की चर्चा करते हैं जो दूर तक जाती है- और शिवालक श्रृंखला कहलाती है। नाम और भाषा के मर्मज्ञ द्विवेदी जी इस नाम का रहस्य गुनने लगते हैं। उन्हें लगता है यह नाम ज़रूर शिव + अलक यानी शिव की सूखी जटाओं से जुड़ा है। वैसे भी शिव हिमालय से जुड़े हैं। उन्हें तो लगता है कि ध्यान में डूबे शिव की कल्पना अचल-स्थिर हिमालय को देखकर ही किसी के मानस में उभरी होगी। अलकनंदा नदी इस स्थान से दूर है अतः नाम से उसका रिश्ता शायद न हो। जिस तरह शिव की छितराई जटाओं का निचला हिस्सा सूखा और कठोर है- कुछ वैसी ही है हिमालय की यह निचली पर्वत श्रृंखलाएँ। कहीं नमी, कहीं हरियाली नहीं, बस सूखी कठोर चट्टानें और उनपर कुछ झाड़ियाँ या फिर कुछेक 'बेह्या से खड़े पेड़' दिख जाते हैं। बेहया शायद इसलिए कि ऐसे खुश्क, कठोर, गर्म वातावरण में भी इन पेड़ों पर मानो कोई असर ही नहीं है। पर तभी द्विवेदी जी को लगता है कि कुछ लोग जो ऊपर से बेहया दिखते हैं, भीतर भीतर बेहद पुख्ता भी तो होते हैं-ऐसे में उनके पास कुछ तो विशेष होता है। वे अपनी जड़ों, अपने विचार, अपनी भावना के सहारे सब कुछ झेल जाते हैं और 'मस्तमौला' कहलाते हैं। इन सूखी पहाड़ियों पर मुस्कराते हुए से पेड़ बेहया नहीं-शायद मस्तमौला ही कहे जाएँगे।

८अ.२.२ इन पेड़ की अलमस्त अदा जानी – पहचानी होना पर नाम विस्मृत होना

द्विवेदी जी का ध्यान इन पेड़ों पर अटक जाता है। छोटे, ठिगने पेड़, पत्ते बड़े और चौड़े हैं, और फूल ही फूल खिले हुए हैं। द्विवेदी जी को ये पड़े आनन्द में डूबे, मुस्कुराते प्रतीत होते हैं और यह भी लगता है कि इन पेड़ों से उनका पुराना परिचय है। लेकिन दिमाग पर ज़ोर डालते पर भी इनका नाम तो याद नहीं आता। फिर वे इस भूल जाने को लेकर कहते हैं कि वैसेभी नाम तो व्यक्ति का पूरा परिचय नहीं देता- वह तो समाज की मुहर भर है वास्तव में तो रूप ही व्यक्ति की असली पहचान होता है। प्रकृति ने जिसे जैसा गढ़ा है, वही उसकी पहली पहचान है। फिर नाम तो कुछ भी दिया जा सकता है, इस पेड़ की वृत्ति के आधार पर। फिर भी द्विवेदी जी कुछ बैचैन से हो जाते हैं।

८अ.२.३ अचानक संस्कृत साहित्य (कालिदास के 'मेघदूत' का संदर्भ) के बीच से 'कुटज' नाम कौंध जाना

द्विवेदी जी को अचानक 'कुटज' नाम याद हो आता है- कुटज या कूटज यानी गिरिकूट (पर्वत) पर पैदा होने वाला वृक्ष। कालिदास का प्रिया से दूर हुआ विरही यक्ष जब आषाढ़

के पहले दिन मेघ को अपना दूत बनाकर प्रिया के पास भेजना चाहता है तो कुटज के फूल ही मेघ को अर्पित करता है। दु:ख और मुसीबत में काम आना कुटज का ही स्वभाव है। विरही यक्ष का साथ निभाने वाला यह गाढ़े का साथी फिर भुलाया क्यों गया- यह प्रश्न लेखक का हृदय मथता है। कवियों ने इसे वह यश-मान क्यों न दिया जो इसका अधिकार था।

मध्यकालीन काव्य में रहीम के काव्य में कुटज

रहीम भी अपने समय के महाकवि थे- बड़े दिलवाले और मस्तमौला व्यक्ति। बहुत कुछ स्वयं कुटज की नियति की याद दिलाते हैं। रहीम को भी जीवन में बादशाहों से अपमान झेलना पड़ा था- दु:ख कष्ट से गुज़रता पड़ा था। इसी लिए अपने आश्रयदाताओं पर कटाक्ष करते हुए उन्होने उन्हें ऐसे पेड़ कहा जो किसी को छाया नहीं दे सकते। और ऐसे पेड़ों में उन्होंने बेचारे कुटज की उपमा उन्हें दे डाली जो अनुचित थी। यानी जो व्यक्ति खुद अन्याय का शिकार था उसने इस पेड़ के साथ भी थोड़ा अन्याय कर दिया।

८अ.२.४ कुटज नाम का रहस्य

संस्कृत में कुट घड़े को कहते हैं, घर को भी कहते हैं। इसीलिए घर की दासी को कुटकारिका कहते हैं। पर इस पेड़ का भला यह नाम क्यों। द्विवेदी जी को लगता है कि यह शब्द आर्य भाषाओं का नहीं बल्कि आग्नेय भाषाओं (आस्ट्रो-ऐशियाटिक) का रहा होगा क्योंकि संस्कृत ने वनस्पतियों के नाम इन्हीं भाषाओं से लिए थे। वे यह भी कह जाते हैं कि संकुचित लोगों की तरह संस्कृत भाषा छुआ-छूत में विश्वास नहीं करती; सदा सर्व ग्रासी और उन्मुक्त रही है।

८अ.२.५ कठिन जीवनी – शक्ति का प्रतीक है कुटज-वृक्ष

द्विवेदी जी को लगता है कि इतनी सदियों से यह पेड़ वैसे ही हँसते हुए लहरा रहा है, नाम भी इसका गुम नहीं हुआ- समय और कठिन हालात उसे कभी हरा नहीं पाए। न नाम बदला न रूप कम हुआ। यमराज की सांसों की तरह के लू के थपेड़ों के बीच, दुर्जन के मन से भी ज्यादा कठोर चट्टानों के बीच, और मूर्ख के खाली दिमाग की तरह उजाड़ और सूने इस इलाके में इस तरह हरा-भरा-खिला रहना कोई हँसी-खेल तो नहीं। यह कभी न हारने वाली जीवनी-शक्ति का प्रतीक नहीं तो और क्या है। कैसे दु:खों में भी मुस्काराना चाहिए- जहाँ से मिले आनन्द और उल्लास निचोड़ लेना चाहिए – इसी बात का तो वह मूर्त रूप है, भाष्यकार है।

८अ.२.६ जीवन जीने का उद्देश्य क्या है: 'आत्मा' में ही 'सर्व' का समाहार

ठीक है कि कैसे जीना चाहिए-यह कला कुटज से बखूबी सीखी जा सकती है, पर क्या जीते चले जान ही अंतिम मूल्य है ? अपने लिए तो सभी जी रहे हैं। हर संबंध हर कर्म, हर उद्यय के मूल में स्वार्थ भाव है यह तो ऋषि याज्ञवल्क्य से लेकर मनोविज्ञान के आधुनिक पंडित सभी कहते ही हैं। स्वार्थ के गिर्द जीवन-चक्र चल रहा है- तर्क से तो यह बात ठीक लगती है पर मन इसे पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता। तब क्या साहित्य-कला, देश-प्रेम, परमार्थ- सबके मूल में केवल स्वार्थ है ?

तब जिजीविषा से भी आगे कुछ है- यह अहसास जगता है। 'आत्मन:' में व्यक्ति ही नहीं- सब कुछ भी तो समा सकता है। 'आत्मा' संकुचित ही नहीं व्यापक भी तो हो सकता है- इतना कि स्व और पर का भेद (अपने-पराए) ही अर्थहीन हो जाए। जब अपने को सर्व के लिए निछावर किया जाता है- तभी सुख एवं आनन्द भी पूर्ण होते हैं – वर्ना आधे-अधूरे, बन रहते हैं।

८अ.२.७ कुटज की अपराजित जीवन दृष्टि स्वार्थ की हदों को पार करने से उपजी है।

सुख और दु:ख में एक सा अविचलित रहने वाले कुटज की निडरता का भला रहस्य क्या है। इतिहास या काल मनुष्य से बड़ी ताकत है अत: कुछ भी करने का अभिमान या दूसरे पर किया गया दोषारोपण दोनों ही व्यर्थ हैं- भ्रम हैं। दु:ख-सुख भी मन के मानने की बातें हैं, वास्तविक सत्ता उनकी है नहीं। दु:ख इच्छाओं के, मन के वश में होने से होता है और सुख मन और इच्छाओं को जीत लेने का नाम है। ऐसे व्यक्ति को छल-कपट-खुशामद-ढोंग करने की ज़रूरत ही क्या होगी। वह तो वैरागी की सी पवित्र आत्मा के साथ सिर उठा के जी सकेगा-बिना डरे, भोगों में रहकर भी उनसे मुक्त।

कुटज शायद ऐसा ही तो है जिसने मन को जीत लिया है।

८अ.३ शिल्प एवं शैली

द्विवेदी जी के इस निबंध को ललित निबंध कहा गया है। ललित यानी सुंदर एवं रसमय। कुटज के माध्यम से उनका मानस कहाँ कहाँ निर्बंध यात्रा कर आता है। कभी कुछ भूल जाता है, कभी याद आ जाता है- कहीं बेचैनी है तो कहीं गहरी भावुकता और स्मृतिपरकता। द्विवेदी जी सारे चिंतन को गहरी निजता से बयान करते हैं- व्यक्ति हज़ारी प्रसाद द्विवेदी हमारे लिए पारदर्शी हो उठता है। उनका अतीत-मोह, उनकी जीवन सृष्टि, उनकी सौन्दर्य दृष्टि और समर्पित भाव हर पंक्ति में उभरता है। संस्कृत की तत्सम प्रधान भाषा में बिल्कुल आम शब्द चले आते हैं – बेह्या, मस्तमौला, दांत निपोरना, बगलें झांकना। कुटज केन्द्र ही नहीं माध्यम बन जाता है। रूप ही नहीं, रूपक बन जाता है। कहीं प्रश्नों की झड़ी है, तो कहीं उपमाओं की पांत।

८अ.४ मूल्यांकन

'कुटज' को द्विवेदी जी ने जिस तरह रम कर लिखा है- पाठक अगर उसी तरह उस अनुभव में रमेगा तो इस निबंध के सौंदर्य एवं श्रेष्ठता से प्रभावित होगा-अन्यथा तत्सम शब्दों में फँस भी सकता है। एक पेड़ के गिर्द इस तरह अर्थ एवं जीवन के अनुभव को तानते जानना साधारण बात नहीं है। प्राचीन साहित्य, भाषा-कुल, जीवन दर्शन, एवं काव्यानुभव को कुटज के पत्तों और फूलों में पढ़ना अभिभूत करता है।

८अ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या विषयक प्रश्न।

जैसे - ये जो ठिगने से———— या मस्त मौला हैं ? (पृष्ठ-२६)
कुटज ने उसके————उन्हें चढ़ा हूँ ? (पृष्ठ-२८)
दुख और सुख ——— जाल बिछाता है ——— कुटज ———
इनसे ———मुक्त है। (पृष्ठ ३३) इत्यादि।

२) निबंधात्मक प्रश्न

जैसे- १. 'कुटज' द्विवेदी जी के लिए किस चीज़ का प्रतीक है,विस्तार से लिखिए।
२. 'कुटज' के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
३. 'कुटज' के माध्यम से द्विवेदी जी क्या संदेश देना चाहते हैं ? इत्यादि

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

जैसे १. 'कुटज' वृक्ष के दर्शन द्विवेदी जी को कहाँ होते हैं ?
२. द्विवेदी जी किस संस्कृत कवि के माध्यम से कुटज को याद करते हैं ?
३. किस मध्यकालीन कवि ने कुटज के साथ थोड़ा अन्याय किया ?
४. कुटज को 'गाढ़े का साथी' क्यों कहा गयाहै ?
५. 'सबकुछ स्वार्थ के लिए है' यह बात किस ब्रह्मवादी ऋषि ने कही थी ?
६. आत्मोन्नति के हेतु नीलम कौन धारण नहीं करता ? इत्यादि।

८आ

गौरा गाय

महादेवी वर्मा

(१९०२-१९८८)

इकाई की रुपरेखा

८आ.० उद्देश्य
८आ.१ प्रस्तावना
८आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु
८आ.३ शिल्प एवं शैली
८आ.४ मूल्यांकन
८आ.५ अभ्यास

८आ.० उद्देश्य

- प्रेम, अनुराग एवं वात्सल्य और करुणा की डोर मनुष्यों को ही वहीं, मनुष्य एवं पशु-पक्षी और पेड़ पौधों को भी आपस में बांधती है- यह अनुभव देना।
- मूक-पशु में निहित भावमयता का दर्शन कराना।
- 'पशु' के समर्पण एवं विश्वास के बरक्स 'मनुष्य' की स्वार्थमयता एवं क्रूरता का बयान।
- महादेवी वर्मा की संवेदनशील एवं काव्यमय लेखनी का अनुभव करना।

८आ.१ प्रस्तावना

सन १९०२ में कर्रुखाबाद में जन्मी महादेवी वर्मा हिन्दी की एक महती रचनाकार (कवयित्री एवं गद्यकार) थीं। पीड़ा का रहस्यवादी काव्य लिखने वाली महादेवी की गद्यरचनाएँ भी अप्रतिम हैं। गद्य में स्मृति पर आधारित इनके रेखाचित्रों एवं संस्मरणों में उपेक्षित, पीड़ित मनुष्य की मार्मिक छवियाँ उभरी हैं। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' इनके गद्य संग्रह हैं। उनकी शैली में चित्र, काव्य एवं कथा की त्रिवेणी बहती है। वेदना एवं करुणा उनके साहित्य के मूल स्वर हैं।

प्रस्तुत रेखाचित्र में उनके द्वारा पालित गाय गौरा की करुण जीवन-यात्रा का मर्मस्पर्शी वर्णन है। महादेवी की करुणा दीन, दरिद्र, दुखियों के प्रति थी तो पशु-पक्षियों के प्रति भी थी। इसमें गौरा का रूप वर्णन, उसका वत्सल स्वभाव, उसका मातृत्व, और विश्वास उभरता है। महादेवी के साथ साथ घर के शेष पालतू पशु-पक्षी भी उससे घुलमिल गए थे। सभी उसके दूध के भागीदार थे। पर एक गोपालक ने ही उसके साथ छल किया और अपने व्यवसाय के हित में गौरा की जान ले ली। उसने गुड़ में सुई डालकर गौरा को खिला दी। महादेवी ने गौरा के क्रमश: मौत के मुँह में जाने का जो वर्णन किया है वह बेहद हृदय द्रावक है। उसी पीड़ा में से फूटता है कटुतम व्यंग्य और विडंबना का बोध-अपने गाय पूजक समाज पर।

८आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु

८आ.२.१ बहन के सुझाव और आग्रह पर महादेवी का गौरा (गाय) को पालने का निर्णय

महादेवी लिखती हैं कि उनकी छोटी बहन श्यामा उनसे व्यवहार बुद्धि और दुनियादारी में बड़ी थीं। गौरी गाय उन्हीं के घर में पली थी और अब बछड़ी से युवा हो गई थी। उन्होंने ही महादेवी से कहा कि इतने पशु-पक्षी पाला करती हो, गाय को पालो तो कुछ लाभ एवं उपयोग भी हो। महादेवी वर्मा पशु-पक्षियों से सहज प्रेम करती थीं। वे लिखती हैं कि भोजन के लिए पशु-पक्षी पालना उन्हें कभी अच्छा नहीं लगा था। पर बहन के कहने पर उन्होंने गौरा की तरफ़ जो नज़र उठाइ तो उसके सुंदर-सौम्य रूप को देखती रह गईं।

८आ.२.२ गौरा का सुन्दर स्वरूप:

गौरा का शरीर पुष्ट था, लचीला, चिकना और साँचे में ढला हुआसा था। उसके छोटे छोटे उगते हुए सींग थे, भीतर से गुलाबी दो कान कमल की अधखुली पंखुड़ियों जैसे, लंबी और घनी चामर जैसी पूंछ थी। उसका रंग और चिकनाहट ऐसी कि मानो इटैलियन संगमरमर में तराशा गया हो। उसकी त्वचा पर जहाँ रौशनी पड़ती- वहाँ चमक दिखने लगती। और यों बहन के सुझाव पर दुविधा में डूबी महादेवी ने उसे घर लाने का निर्णय कर लिया।

घर लाकर जब दही-पेड़ा खिला, फूलमाला पहना और आरती उतारकर उसका स्वागत हुआ तो गौरा की आँखे भी दिए की लौ की तरह चमकने लगीं। गौरांगिनी या गौरा नाम तभी उसे दिया गया। महादेवी उसकी काली, चमकदार और तरल आँखों पर मुग्ध थीं। चौड़े सफ़ेद माथे पर ये आँखे मानों बर्फ़ में नीले जलकुंडो की तरह थीं। उन आँखों में गहरे विश्वास का भाव था। हिरण के विस्मय भरे नेत्रों से नितांत अलग था यह भाव। महादेवी कहती हैं मनुष्य उसके साथ कुछ भी करे – पर गाय की आँखों का यह भाव नहीं बदलता। फिर गौरा की मृदु मंथर चाल में वे मन्द हवा में धीमे धीमे हिलते पुष्प गुच्छ के सौंदर्य को देखती हैं।

८आ.२.३ गौरा का घर के पशु-पक्षी समेत सबसे घुलमिल जाना

महादेवी लिखती हैं कि कुछ दिनों में घर के कुत्ते-बिल्ली और पक्षी सब उसके आसपास आ गए थे। वे अपनी लघुता और गौरा के विशाल आकार के भेद को भुलाकर उसके आत्मीय मित्र बन गए। और गौरा घरवालों के कदमों की आहट, मोटर की आवाज़, चाय-नाशते के वक्त को भी पहचानने लगी। महादेवी और गौरा के बीच गहरा अनुराग था। वह उनसे निकटता चाहती, स्पर्श चाहती और गर्दन आगे बढ़ा देती। हाथ फेरों तो आँखे मूंद लेती। उसके पास अपनी ज़रूरतों के लिए रँभने की एक आवाज़ थी पर मन में उठने वाला अनेक भावों की छाया केवल उसकी आँखों में तैरा करती थी।

८आ.२.४ लालमणि का जन्म और घरभर में दुग्ध-महोत्सव

फिर गौरा ने एक सुंदर बछड़े को जनम दिया जो गेरू सा लाल था इसलिए उसे लालमणि नाम मिला । गौरा के साथ खड़ा लालमणि बड़ा सुंदर लगता मानो हिम राशि और अंगार का साथ। लालमणि चंचल और प्यारा था- गौरा बर्फ़ सी शान्त और स्नेहमयी। गौरा ने सुबह-शाम लगभग १२ सेर दूध देना शुरू किया। लालमणि के अलावा घर के पशु-पक्षी, आसपास के बाल-गोपाल सब मानो दूध में नहाने लगे। पशुपक्षी दुग्ध-दोहन के वक्त एक पंक्ति में मेहमानों की तरह बैठ जाते-उनके कटोरे सामने रखे होते। फिर दूध जब उनके पात्रों में डाला जाता, वे पीते और फिर गौरा के इर्द-गिर्द कूढते-फांदते गौरा के प्रति कृतज्ञता जताते।

लेकिन इस सब के बीच सुबह-शाम दूध-दुहना शहरी नौकरों के लिए एक समस्या थी। ऐसे में जब पहले दूध देने वाले ग्वाले ने यह काम करने का आग्रह किया तब महादेवी ने उसे स्वीकार कर लिया।

८आ.२.५ गौरा का गिरता स्वास्थ्य और परीक्षणों के बाद एक निर्मम रहस्य का खुलना

कुछ ही समय बाद गौरा के स्वास्थ्य में गिरावट के लक्षण दिखने लगे-उसने चारा खाना कम कर दिया। वह शिथिल और दुर्बल हो गई। तमाम पशु चिकित्सक आए - कई निरीक्षण-परीक्षण हुए तो पता चला कि गाय के पेट में सुई है जो दिल तक पहुँचने से उसकी जान ले लेगी। यह भी पता लगा कि सुई चारे के साथ पेट में जा ही नहीं सकती-जुगाली करती गायके मुख में ही प्रकट हो जाती है। इसे तो गुड़ की भेली में छिपा कर उसे जानबूझ कर खिलाया गया है जिसे गाय निगल लेती है। यह बात फैली तो ग्वाला अचानक गायब हो गया। तब महादेवी को इस निर्मम षडयंत्र का पता चला। अपना दूध घर में फिर बेच सके, इसके लिए गाय की हत्या करने का यह छल कितना गर्हित, कितना क्रूर, कितना घृणित था-सोच सोचकर महादेवी सिहर उठतीं।

८आ.२.६ गौरा और मृत्यु का संघर्ष

महादेवी ने पशुचिकत्सकों की भीड़ जुटा दी- कई कई उपाय किए जा रहे थे कि सूई की नोक पर कैल्शियम की परत जम जाए और वह चुभे नहीं। इसके लिए नली से गौरा को सेब

का रस पिलाया जाता। ताकत के बड़े बड़े इजैंक्शन लगते । और गौरा भीतर और बाहर की पीड़ा को चुपचाप सहती रहती। कभी कभी उसकी सुंदर उदास आँखों में दो आंसू के कतरे झलक उठते।

उधर लालमणि इस सब से अजाना, माँ से खेलना और उसका दूध पीना चाहता-उसके चारों ओर उछलता-कूदता कि वह उठ जाए पर गौरा अब खड़ी नहीं रह पाती थी-बैठी ही रहती थी।

महादेवी के पास जाने पर अपना सिर उनके कंधे पर टिका देती थी। महादेवी के लिए उसे मृत्यु के नज़दीक जाते देखना बड़ा कठिन था।

८आ.२.७ गौरा की मृत्यु और अंतिम बिदाई

दिन के अलावा महादेवी रात नें उठउठकर गौरा को देखती। उसकी आँखों की चमक बुझने लगी थी और सेब का रस भी अन्दर नहीं जा पा रहा था। एक दिन रात चार बजे महादेवी गौरा के पास गईं, गौरा ने अपना मुख उनके कंधे पर रखा कि वह पत्थर सा भारी हो गया और सिर नीचे सरक गया। सुई ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया था।

जब महादेवी अपनी प्यारी गौराकी मृत देह गंगा को समर्पित करने जा रहीं थीं तो दु:ख का सागर लहरा रहा था। पर लालमणि मृत्यू के सत्य से नावाकिफ़ इसे भी खेल समझता रहा, उछलता कूदता रहा। और अपने समाज की कृतघ्नता के प्रति, पशुता के प्रति, गाय की पालना और पूजा के ढोंग के प्रति महादेवी के पास केवल एक उत्तप्त आह बचती है, शब्द एक भी नहीं।

८आ.३ शिल्प एवं शैली

यह रेखाचित्र का शिल्प है। इसमें गौरा गाय के स्वरूप से लेकर उसके स्वभाव, व्यवहार सबका बड़ा मूर्त वर्णन है। उसका आगमन, उसका मातृत्व, उसका मृत्यु से क्रमिक संघर्ष-सब कल्पना में सजीव हो जाता है। शब्दों से हर चीज़ का, हर ब्यौरे का चित्र खींच देना चित्रप्रेमी महादेवी की शैली भी है। उपमाओं के ज़रिए वे काव्य जैसा सौन्दर्य तो रचती ही हैं-चित्र भी उभारती हैं।

८आ.४ मूल्यांकन

एक गाय और मनुष्य का बीच सहज अनुराग को हम पहचानते हैं। और साथ ही पहचानते हैं मनुष्य में छिपे स्वार्थ की सीमा को – जिसके लिए पशु-पक्षी के जीवन का मूल्य अपने लाभ के सामने कुछ भी नहीं। करुणा की धारा बहाता यह रेखाचित्र महादेवी की अन्यतम सृष्टि है। यह रेखाचित्र आहलाद में पहले पूरा खिल जाता है – फिर उतना ही तीखा और क्रूर प्रहार होता है और आल्हाद को पाला मार जाता है।

८आ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या विषयक प्रश्न।

जैसे - १. निकट जाने पर———— तैरा करती थीं। (पृष्ठ-३७)

२. लालमणि बेचारे को ———— परिक्रमा ही देता रहता (पृष्ठ-३९)

३. जब गौरा की———— देखने जाती रही (पृष्ठ-४०) इत्यादि।

२) निबंधात्मक प्रश्न

जैसे- १. गौरा की त्रासद कथा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

२. 'गौरा गाय' में महादेवी मूक पशु के विश्वासभाव और मनुष्य के स्वार्थ और छल को किस प्रकार बताती है ?

३. गौरा के पशु-पक्षियों से और महादेवी के साथ भावात्मक संबंध का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए। इत्यादि

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

जैसे १. गौरा को पालने का सुझाव महादेवी को किसने दिया था ?

२. गाय 'करुणा की कविता' है किसने कहा है ?

३. गौरा के बछड़े का क्या नाम रखा गया ?

४. दूध दुहने की समस्या का समाधान कैसे हुआ ?

५. सुई की बात पता चलने पर कौन अन्तर्धान हो गया ?

६. गौरा के अवशेष कहाँ प्रवाहित करने थे ? इत्यादि।

९अ

राजर्षि का जीवन दर्शन

माखन लाल चतुर्वेदी
(१८८९-१९३८ ई.)

इकाई की रुपरेखा

९अ.० उद्देश्य
९अ.१ प्रस्तावना
९अ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु
९अ.३ शिल्प एवं शैली
९अ.४ मूल्यांकन
९अ.५ अभ्यास

९अ.० उद्देश्य

- हिंदी के विद्यार्थियों को एक महान हिन्दी सेवी के व्यक्तित्व की उदात्तता से परिचित करवाना।
- हिंदी राष्ट्र की वाणी है, और तमाम भारतीय भाषाओं की सृहृद-मित्र भी है- यह बताना।
- गांधीजी, राजर्षि टंडन, स्वयं माखनलाल चतुर्वेदी, विनोबा भावे जैसे लोगों ने हिंदी भाषा के लिए कितना संघर्ष किया है- कितनी गहराई से सोचा है- यह अनुभव कराना।

९अ.१ प्रस्तावना

सन १८८९ में बावई मध्य प्रदेश में जन्मे माखन लाल चतुर्वेदी स्वतंत्रता आंदोलन के एक सेनानी और ओजस्वी कवि रहे। उनकी वाणी में अग्नितत्व है तो करुणा की तरलता भी। गनेश शंकर विद्यार्थी जैसे निर्भिक पत्रकार का इनपर काफ़ी प्रभाव था और 'प्रताप' के आप संपादक भी रहे। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं- कृष्णार्जुन युद्ध, हिमकिरीटनी, साहित्य देवता, हिम तरंगिनी और युगचरण, समर्पण, वेणु लो गूँजेधरा गद्य रचनाए हैं।

भारतकी स्वतंत्रता को समर्पित ऐसे रचनाकार ने अपने समकालीन व्यक्तित्व राजर्षि के जीवन का जो मूल्यांकन किया है, वह महत्त्वपूर्ण है। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टडंन संत

व्यक्तित्व के राजेनता और हिंदी सेवी थे। लाला लाजपत राय, गांधीजी, वियोगी हरी, बनारसीदास चतुर्वेदी सबसे उनका संबंध था। इस संस्मरण में उन की कर्मठता, निर्मलता, विनम्रता, तेजस्विता और राष्ट्रप्रेम सब पक्ष उभर आए हैं। सबसे बढ़कर हिंदी को प्रतिष्ठा और गौरव दिलाने में उनकी भूमिका अन्यतम है। हिन्दी उनके लिए विविध वर्णी राष्ट्र का पर्याय है, कोई संकुचित सोच नहीं। वह तमाम भारतीय भाषाओं का हाथ थामे-पूरे राष्ट्र को आगे ले चलती है। ऐसी ही कल्पना थी राष्ट्र की वाणी के बारे में राजर्षि की। क्योंकि स्वयं उनका व्यक्तित्व भारती से, भारत की संस्कृति से जुड़ा हुआ था।

९अ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु

९अ.२.१ उँचे पदों और आर्थिक प्रलोभनों से ऊपर भारतीय तत्त्वचिंतन एवं जनसेवा को समर्पित व्यक्तित्व : राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन

माखनलाल चतुर्वेदी राजर्षि टंडन के व्यक्तित्व को संतो के समान मानते हैं। उनका जीवन भी ऊँचा है और उनकी सोच एवं दृष्टिभी भारतीय मनीषा के अनुरूप है । यानी उनके लिए व्यक्तिगत लाभ, राग-द्वेष, भौतिक सुख का कोई मूल्य नहीं। मूल्य है तो देश एवं जन को समर्पित जीवन का, भारतीय संस्कृति का और ऊँचे चरित्र एवं उदारता का। इस बात का सुबूत चतुर्वेदी कई घटनाओं से देते हैं। लाला लाजपत रायने राजनीतिक तिलक विद्यालय (तिलक स्कूल ऑव पालिटिक्स) की स्थापना की थी और राजर्षि उसके अध्यक्ष चुने गए थे। पर वह किसी भी तरह अतिरिक्त वेतन या सुविधाएँ लेने को राज़ी न हुए ते। वे साधारण सदस्यों जितना वेतन ही लेना चाहते थे। इसीलिए लाला लाजपत राय ने राजर्षि की शिकायत करते हुए उन्हें बहुत जिद्दी होने की उपाधि दे डाली थी। दूसरी घटना में नाभा के राजा ने राजर्षि को अपना दीवान बनाया था। एकबार राजर्षि प्रयाग जान चाहते थे और उन्होंने अपने स्थान यानी प्रयाग जाने के लिए छुट्टी मांगी। नाभा नरेश ने छुट्टी तो दी पर उनकी भंगिमा एवं मुद्रा में एतराज़ झलक रहा था। राजर्षि को यह भंगिमा चुभ गई और प्रयाग पहुँचकर उन्होंने अपना त्यागपत्र राजा को भिजवा दिया। इसी प्रकार चतुर्वेदी जी लिखते हैं कि उन्हें एक प्रान्त के गवर्नर का पद देने की पेशकश हुई- तो उन्होने बड़ी नम्रता से उसे ठुकरा दिया था। यानी उनके लिए धन, पद, नौकरियों का मूल्य न था । वे तो देश की राष्ट्रीयता से एकमेक थे। वे तो देश की ग़रीब जनता से घुलमिल जाना चाहते थे, क्रांतिकारी तरुणों के प्रेरणा स्त्रोत थे, और सौभाग्य की जगह जनसेवा को ह्रदय से लगाए थे।

९अ.२.२ नम्रता और तेजस्विता का अद्‌भुत संयोग

राजर्षि के व्यक्तित्व में बहुत कुछ ऐसे पक्ष थे जो पहली नज़र में विरोधी प्रतीत हो सकते थे। जैसे नम्रता, कोमलता की प्रतिमूर्ति होकर भी अपने विचार पर अडिग रहना, आग्रह करना, और बड़े-बड़े व्यक्तियों तक को अपना विरोध दर्ज़ कराना। आज़ादी के बाद हिंदी के एक प्रस्ताव पर उन्होंने कांग्रेस की नीति से अलग मत दिया और फिर कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। हिंदी और कई विषयों को लेकर गांधीजी और उनमें मतभेद बने रहे पर गांधी जी उनकी निष्ठा, उदारता और सच्चाई को हमेशा आदर देते, उनसे सलाह लेते।

इसी तरह हिन्दी-भक्त राजर्षि अग्रेज़ी और उर्दू के विद्वान थे। बेहद सीधे-सादे होकर भी प्रयाग युनिवर्सिटी की क्रिकेट टीम के कप्तान थे।

९अ.२.३ राजर्षि की हिन्दी भक्ति का स्वरूप

राजर्षि ने अपना जीवन हिंदी-भाषा के गौरव के लिए होम कर दिया था। चतुर्वेदी जी लिखते हैं उन्होंने खुद को जीते जी राष्ट्र-भाषा भवन की नींव में गाड़ दिया था। वे हिन्दी के इतने बड़े उन्नायक थे कि उनके बिना हिंदी की चर्चा त्रिवेणी बिना प्रयाग (इलाहाबाद) की चर्चा है। उनके त्याग एवं तपस्या से प्रयाग हिंदी का गढ़ बन गया। और हिंदीवादी कहलाकर उन्होंनें लोगों की गालियाँ भी सहीं।

पर हिंदी उनके लिए राष्ट्र की आज़ादी पाने का माध्यम थी और आज़ादी के बाद आज़ादी को बचाए रखने का। वे कहते कि अगर हिंदी भारतीय स्वतंत्रता का आड़े आएगी तो मैं उसका गला घोंट दूँगा।

वे हिन्दी के विराट स्वरूप की कल्पना करते थे। सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा और आत्मा बनने के लिए उसे अगर अपने को सबके अनुसार ढलना भी पड़े, बदलना भी पड़े तो ठीक होगा। वे हिंदी कविता-एवं गद्य के अनुरागी तो थे ही- हिंदी पुस्तकें भी ज़रूर खरीदते और अपने वेतन का एक हिस्सा उस प्रदेश में चलनेवाली (लाहौर) हिंदी पाठशालाओं को दिया करते।

लेकिन हिन्दी-प्रेमी होने का मतलब यह भी नहीं कि वे अन्य भारतीय भाषाओं का आदर न करते हों। जब एक बार लेखक हिन्दी, मराठी, गुजराती का गुणगान कर रहा था तो राजर्षि तमिल, तेलुगु और मलयालम के महान साहित्य की चर्चा करने लगे। उन्होंने तमिल के भारतेतर चरित्र को भी रेखांकित किया। उर्दू-काव्य के तो वे विशेष प्रेमी थे। अग्रेज़ इस हिन्दी भक्त के उर्दू प्रेम को कभी समझ नहीं सकते थे क्योंकि शायद वे विजय एवं पराजय के भाव से दुनिया जीतने निकले थे जबकि सहअस्तित्व भारतीय विचारधारा का मूल स्वर है।

९अ.२.४ कर्मठ एवं प्रेरक व्यक्तित्व

उनका मन, बुद्धि और तन सदा किसी न किसी काम में रत रहता। उनका काम विचार से भरा होता, विचार कर्म से जुड़ा रहता। चतुर्वेदी जी लिखते हैं कि उन्होने टंडनजी को जब जब देखा, किसी न किसी विचार या कर्म में उलझे देखा । बेकार रहना उनका स्वभाव न था। कहीं यात्रा भी करते हो, या कहीं जाना भी पड़े तो उनका जीवन समर्पित ही रहा। बिना किसी व्यक्तिगत राग द्वेष के वे संस्थाओं के लिए काम करते, और तरुणों को प्रेरित करते। उन्होंने पुस्तकें ज़्यादा चाहे न लिखी हों पर देश और हिंदी की सेवा करने वाले व्यक्तियों का निर्माण किया है। जो बात उन्हें कहने होती, हर कीमत पर कहते। बच्चों-बूढ़ो सबसे वही कहते। उनका समर्पण, उनकी निष्ठा, उनका त्याग ही हिंदी वालों के लिए जीता-जागता आदर्श है और उनकी हिन्दी भी पूरे भारत में व्याप्त हिंदी है- क्षेत्र, धर्म, जाति की दीवारों से मुक्त।

९अ.३ शिल्प एवं शैली

माखन लाल चतुर्वेदी भावुक कवि रहे थे। अत: हिंदी के महान नायक राजर्षि टंडन के व्यक्तित्व का आकलन करते हुए वे बड़ी भावमयता के साथ उनकी विशेषताएँ बताते हैं। कभी कोई घटना सुनाते हैं तो कभी प्रशस्ति में डूब जाते हैं। संस्मरण की सभी विशेषताएँ आ गई हैं पर स्मृति जैसे एक क्रम से नहीं चलती-वैसे ही यहाँ विचार इधर उधर बिखरे मिलते हैं। शैली में बार बार भावुक कवि दिखता है- भावाद्रेक में लंबे वाक्यों को गूंथता जाता।

९अ.४ मूल्यांकन

हिंदी-सेवी राजर्षि का समग्र चरित्र इसमें उभर आया है। संस्मरण लंबा है पर सम्पूर्णता का अहसास जगाता है। उनकी कोमलता-तेजस्विता, आदर और झगड़ा, सीधी सादी उदासीनता भरी वेशभूषा और अपरिमित ज्ञान सब साथ साथ दिखते हैं। हिंदी भाषा के साथ कैसे महान एवं समर्पित व्यक्तित्व जुड़े रहे, इसका भी आभास होता है।

९अ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या विषयक प्रश्न।

जैसे - १. लोग अक्सर यह ————————बचाए रखने का। (पृष्ठ-५८)
२. अपनी संतुलित शक्तियों————————याद रखना (पृष्ठ-६१)
३. यदि एक हाथ में————————से वही कहेंगे (पृष्ठ-६३)
४. हिंदी भाषा एवं ————————को भी समझ सके (पृष्ठ-६४)

२) निबंधात्मक प्रश्न

जैसे- १. राजर्षि के व्यक्तित्व को अपने शब्दों में लिखिए।
२. हिन्दी की सेवा राजर्षि ने किस प्रकार की, लिखिए।
३. हिंदी को राजर्षि विराट स्वरूप देना चाहते थे और राष्ट्र की वाणी बनाना चाहते थे- इस कथन की समीक्षा कीजिए।

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

जैसे १. लाला लाजपत राय ने राजर्षि टंडन को जिद्दी क्यों कहा ?
२. नाभा-नरेश ने राजर्षि टंडन को क्या नौकरी दी ?
३. उन्होंने कांग्रेस से त्याग पत्र किस के लिए दिया ?
४. वे दक्षिण की किस भाषा की तारीफ़ कर रहे थे ?
५. वे प्रयाग-विश्वविद्यालय की किस टीम के कप्तान थे ?
६. हिंदी पुस्तक-प्रकाशकों की दुकानों पर वे क्या करते थे। इत्यादि।

❖❖❖❖

९आ

जहाँ आकाश नहीं दीखता

विष्णु प्रभाकर

इकाई की रुपरेखा

९आ.० उद्देश्य
९आ.१ प्रस्तावना
९आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु
९आ.३ शिल्प एवं शैली
९आ.४ मूल्यांकन
९आ.५ अभ्यास

९आ.० उद्देश्य

- एक महानगर के चरित्र को उसके तमाम अन्तर्विरोधों के साथ प्रस्तुत करना।
- कलकत्ता की निरंतर दौड़ती भागती भीड़, हर तरह के पेशे एवं वर्ग, सड़क से लेकर विलासमय होटल, राजनीतिक आंदोलनों, कला एवं साहित्य और स्त्री-समाज का एक आँखो देखा अनुभव पाठक से साझा करना।
- कुछ बातों को छोड़कर बहुत कुछ इस रिपोतार्ज में किसीभी शहर के चरित्र से जुड़ जाता है। अतः इस के माध्यम से हम अपने इर्दगिर्द के शहर एवं यथार्थ को भी ऐसे समझ पाएँ।
- रिपोतार्ज की शैली एवं शिल्प का अनुभव कराना।

९आ.१ प्रस्तावना

उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फरपुर में सन १९१२ ई में जन्मे श्री. विष्णु प्रभाकर हिंदी के वरिष्ठ रचानाकारों में रहे। कई नौकरियाँ करने के बाद दिल्ली आकर टिके। आपने गद्य की लगभग हर विधा को समृद्ध किया जिनमें कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, स्केच एवं रिपोतार्ज शामिल हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं ढलती रात, स्वप्नमयी (उपन्यास) आदि और अन्त, संघर्ष के बाद (कहानी संग्रह) नवभारत (सम्पूर्ण नाटक) एवं डॉकटर और जाने-अनजाने इत्यादि।

प्रस्तुत रचना में कलकत्ता शहर का बड़ा गतिशील वर्णन हुआ है। कलकत्ता के विराट हावड़ा पुल से नीचे देखने पर गंगा बहती दिखती है और सड़कों पर बहती है इंसानों की भीड़। इस भीड़ में हर पेशे हर रंगके लोग हैं। कलकत्ता बड़ा जोशीला शहर है। राजनीतिक हों या सांस्कृतिक-सामाजिक- हर तरह के आन्दोलन की शुरु आत यहाँ से हुई है। फिर प्रभाकर जी यहाँ के आम आदमी की राजनीतिक चेतना का अनुभव बताते हैं। वे सड़कों पर जीने वाले शाश्वत रिफ्यूजी लोगों का दिग्दर्शन कराते हैं तो एक होटल के भीतर घुसकर मानों एक दूसरी ही सोने की दुनिया देखते हैं। अन्न की भूख में छटपटाते लोग हैं तो देह और काम की चूख का चेहरा भी सड़कों पर दिख जाता है। औरत के कई रूप दिखाई पड़ते हैं- पर साधारण बंगाली औरत की गरिमा, सादगी और शालीनता उन्हें गहरे स्पर्श भी करती है। कलकत्ता की सड़के, उनके नाम, ट्रामें, बसें-यानी संदेह वर्णन मिलता है और वहीं लेखक की पैनी नज़र इस शहर की आत्मा में भी झांकती है।

९आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु

९आ.२.१ कलकत्ता का आकाश, गंगा और निरंतर गतिमान जीवन लिए धरती

विष्णु प्रभाकर कलकत्ते का वर्णन करते हुए पहले उसके आकाश की ओर देखते हैं। कहने को तो आकाश ज़मीन से निर्लिप्त होता है, एक सा प्रसरित होता है। पर विष्णु प्रभाकर को लगता है कि कलकत्ते के जीवन की अनुगूँज आकाश तक जाती है। तभी तो कलकत्ते का आकाश शून्य नहीं-उसमें कुछ छाया रहता है जो न केवल कुहरा है, न धुंध, न धुआँ, न शोर। वहाँ सबकुछ का मिश्रण है, घालमेल है।

लेकिन धरती पर पैर टिकाकर आकाश देखने की मोहलत कलकत्ते की रेल-पेल नहीं देती। दोनों ही दुर्लभ हैं यहाँ। विष्णु प्रभाकर शाम को कलकत्ता की पहचान यानी हावड़ाके लौह पुल पर से जब नीचे देखते हैं तो बदरंग गंगा धीरे धीरे बह रही है। लेकिन कलकत्ते में दूसरा प्रवाह मनुष्यों का है- जो खासी तेज़ी से लपका आता है- बहता जाता है। लेखक इस भीड़ को देखते हैं तो इसमें हर तरह के पेशे है मज़दूर से लेकर बाबुओं तक, जेबकतरों और वेश्याओं के दलालों से लेकर साहूकारों तक। सभी जीविका कमाने को भागे जा रहे हैं। भाग रही हैं ट्रामें, बसें भी। जैसे सब चलते रहना चाहते हों।

९आ.२.२ अन्तर्विरोधों और आंदोलनों का शहर कलकत्ता

लेखक को इस शहर के लोगों में भावुकता का सैलाब दिखता है। इसी की बदौलत जहाँ वे एक और संगीत और कला के आकाश में तिरते हैं, वहीं संगीन और गोली से भी परहेज़ नहीं करते। यहाँ एक और भूख है तो दूसरी ओर कला और संस्कृति की ऊँचाइयाँ।

न जाने कितनी तरह के आंदोलनों से आंदोलित रहता है कलकत्ता का हृदय। समाज सुधार के दीवाने हों या कला एवं संगीत के परवाने, स्वभाषा के आंदोलन हों या स्वाधीनता के, भूख के विषय में हो या फिर कुछ और-कलकत्ता का काम आंदोलन के बगैर चल ही नहीं सकता। जिस आवेश से निर्माण होता है- उतने ही आवेश में विनाश भी।

९आ.२.३ चलती ट्राम से देखे गए राजनीतिक उत्तेजना के, मारा-मारी के दृश्य

विष्णु प्रभाकर दक्षिण कलकत्ता से उत्तर की ओर आने के लिए ट्राम में बैठे हैं तो हर स्टेशन पर लोगों का सैलाब उमड़ता है। शोर होता है और सड़क पर दिखता है कि दो दल आपस में झण्डे लिए हुए लड़ रहे हैं। लाठियाँ चल रही हैं। तभी पुलिस भी आती है और उन्हें रोकती है। ऐसा लगता है कि यह वहाँ की बेहद स्वभाविक दैनंदिन लय है। बार बार भिड़ना, नारे बाज़ी, चीखचिल्लाहट और फिर पुलिस का आकर इस को सभ पर लाना। ऐसा दृश्य इस ट्राम यात्रा में दो बार दिख जाता है। चोट खाए हुए लोगों के लिए भी यह कोई असामान्य घटना नहीं- वे हँसते हुए लेखक से सवाल-जवाब करते हैं। पूछते हैं कि वह किस पार्टी का सदस्य है। लेखक के 'ना' कहने पर वे मानने को तैयार नहीं कि कोई केवल इंसान और लेखक भर हो सकता है। कोई न कोई राजनीतिक झुकाव तो होगा ही। शायद राजनीति कलकत्ता के आकाश का, कलकत्ता की आत्मा का एक अनिवार्य पक्ष है। कलकत्ता में वामपंथ की चर्चा भी होती है- और उसके तार चीन के कम्यूनिस्टों से जुड़ते हैं। लेखक ट्राम में बैठा कलकत्ता की भीड़ को, जन समूह को देखता, खुद को अजनबी महसूस करता हुआ ट्राम से उतर जाता है।

९आ.२.४ ऐश्वर्यमय कलकत्ता : कलकत्ता का एक दूसरा रूप

एक मित्र अचानक प्रभाकर जी को ग्रांड होटल में ले जाता है। लेखक को लगता है कि वह जहन्नुम से जन्नत में आ गया हैं। चारों तरफ़ सौंदर्य है, चमक है, शान है, ऐश्वर्य का प्रबल अहसास है। वह इस आलीशान होटल की बालकनी से, जन्नत से, नीचे झांकता है तो मनुष्यों का सैलाब उसी तरह उमड़ा है, प्रवाहित है। लगता है हर कोई बस आ-जा रहा है। इसी आने-जाने में जीवन के सारे नाटकीय दृश्य समाए रहते है। एक ओर इतनी विलासिता एवं धन है तभी तो दूसरी ओर दरिद्रता और भूरव है- तभी तो आंदोलन और क्रांति की पुकार है।

९आ.२.५ कलकत्ता के फुटपाथों का जीवन

इस सब भागमभाग में न जाने कितने जुम्ले हैं जो लेखक के कानों के ज़रिए भीतर उतरते रहते है कोई परिचित टकरा जाता है तो हाल पूछता है, कोई अजनबी टकराता है तो घूर कर डांटता है। यानी लेखक से कलकत्ता महानगर सध नहीं पाता। ट्राम छोड़ फिर वे फुटपाथ पर आ जाते हैं। यहाँ कलकत्ता के जीवन के कुछ और पन्ने खुले हुए हैं । फुटपाथों पर जीने वाले शरणार्थी।पूर्वी बंगाल से आए, या फिर दरिद्रता की पाताली दुनिया के लोग, या फिर बिहार, उ. प्रदेश या उड़ीसा से जीविका की तलाश में आए लोग। फुटपाथ सबकी अंतिम शरणस्थली है। हर चीज़ में तो मिश्रण है- कलकत्ता में इकहरा तो कुछ भी नहीं। लेकिन व इस मिश्रण में जीवन का नशा भी है। सब कुछ यही घटित होता है- खाना पकाना, खाना, सोना, व्यापार, प्रेम, प्रसव और शायद मृत्यु भी।

९आ.२.६ स्त्री के अनेक रूप

इन्ही फुटपाथों पर अन्न की भूख के अलावा देह और काम की मूख भी उघड़ी दिख जाती है। बड़े बड़े वैज्ञानिकों एवं विद्वानों के नाम वाली सड़कें हैं – पर उनपर दिखती है एक ऐसी स्त्री जिसके चेहरे से जीवन का सारा आनन्द, उत्साह ही नहीं दु:ख भी रिस गया है- बचा है

एक खाली पन । वह मूड़ी को किसी मशीन की तरह मुख में फेंक रही है। उसके आसपास कुछ लोग हैं जो शायद उसका मोल भाव कर रहे हैं। लेखक घृणा से नज़रे हटा लेता है लेकिन स्त्री के अनेक रूप उसका पीछा करते हैं। होटलों में नाचती स्त्री, मिलने का समय तय करती स्त्रियाँ———— पर इन्ही रूपों के बरक्स स्त्री के कुछ दूसरे रूप भी उभरते हैं। वे स्त्रियाँ जो युनिवर्सिटी में विद्यार्जन करने को ट्रामों और बसों से उतर रही हैं, सड़कों पर, गलियों में धीरे धीरे आगे बढ़ती हुई-उनके कदमों में तेज़ी न सही पर एक विश्वास है। प्रभाकर जी ने यों तो सारा देश घूमा है- पर ऐसी सादगी और गरिमा एक साथ स्त्रियों में कहीं न दीख पड़ी। धन का दिखावा वेशभूषा में ज़रा भी नहीं, धीमी-मन्थर गति और नज़रों और दिल में सहज आत्मीयता के भाव के साथ चेहरे का लावण्य दृष्टिको बांध लेता है। उन्हें याद आती है बंगाल के गाँव की एक वधू, व्यर्थ की लज्जा संकोच से परे उसका आत्मीय एवं शालीन व्यवहार। प्रभाकर जी को उसी ने ले जाकर बैठाया और भोजन हुआ कि नहीं यह पूछा था। और प्रभाकर जी के संकोच करने पर उसने खाने का सहज आग्रह किया था। इस आतिथ्य में कहीं कोई औपचारिकता या बनावट न थी।

९आ.३ शिल्प एवं शैली

पूरी गद्य रचना में रिपोतार्ज का शिल्प दिखता है। विष्णु प्रभाकर कलकत्ता की सड़कों पर, हावड़ा ब्रिज पर, फुटपाथों पर, ट्रामों में घूम रहे हैं और जो जो भी उन्हें दिखता है- उसी का आँखो देखा वर्णन करते जाते है। लेकिन एक संवेदनशील और पैनी नज़र वाले रचनाकार के बाहरी दृश्यों के वर्णन में भी भीतरी मर्म उभर आता है। कहीं वे भीड़ का अनुभव जगाते हैं, तो अपने अजनबी और अकेले होने का बोध भी है। पूरे रिपोतार्ज में ट्राम की तरह की ही गति है मानो खिड़की से दिखते बदलते दृश्य हों – बातों के जुम्ले इधर उधर से आते रहते हैं- लोगों के चेहरों के भाव और मुद्राएँ तक अंकित हैं। शैली में रवानी के साथ साथ चित्रमयता है, नाटकीय संवाद हैं, काव्यमय रूपक भी है। उदाहरण के रूप में- ''नीचे गंगा है शिथिल, बदरंग, किसी बिफ़री-धनी प्रौढ़ा सी और ऊपर मानव की खरस्त्रोता भीड़ है, जो क्षुधा के विराट रूप की तरह . . . . . ।''

९आ.४ मूल्यांकन

ये बड़ा रोचक रिपोतार्ज है, जहाँ कलकत्ता की धरती, आकाश, गंगा, भीड़, भावुकता, आंदोलन, आर्थिक विपन्नता चित्र रूप में, विष्णु प्रभाकर के निजी अनुभव के ज़रिए पाठक के भीतर उतर जाती है। कलकत्ता का भूगोल है तो, इतिहास भी है, धरती है तो आकाश-भी है, प्रेम है तो आक्रोश भी है। दृश्यों से रचा गया यह रिपोतार्ज मूक नहीं-वहाँ जन की वाणी भी सुनाई पड़ती है और लेखक के मनोभावों का भी खुलासा होता चलता है। कलकत्ता के छिटपुट दृश्यों से कलकत्ता की आत्मा को दिखा देना बड़ी प्रतिभा का ही लेखन है।

९आ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या विषयक प्रश्न।

जैसे - १. नीचे गंगा है———— उड़ा जा रहा हूँ। (पृष्ठ-६७)

२. जैस अब तक———— मनुष्य, मनुष्य और मनुष्य (पृष्ठ-७०)

३. सहसा मेरी दृष्टि———— घिर आए हैं। (पृष्ठ-७१) इत्यादि

२) निबंधात्मक प्रश्न

जैसे- १. कलकत्ता शहर की विशेषताओं का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

२. कलकत्ता की भीड़भाड़, गति, राजनीति एवं स्त्री-पुरुषों का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

३. कलकत्ता हर तरह के आंदोलनों का शहर है- उक्ति की विवेचना कीजिए। इत्यादि

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

जैसे १. विष्णु प्रभाकर शाम को किस पुल पर खड़े थे ?

२. विष्णु प्रभाकर दक्षिण से उत्तर कलकत्ता जाते हुए किसपर सवार थे ?

३. एक आंदोलनकारी ने उनसे क्या पूछा ?

४. कलकत्ता के फुटपाथों पर कौन लोग रहते है ?

५. शून्य चेहरे वाली औरत कौन हो सकती है ?

६. बंगाली स्त्रियों की क्या विशेषता विष्णु प्रभाकर को प्रभावित करती है ? (आदि. . . . . .)

१०अ

१ मातादीन चाँद पर

- हरिशंकर परसाई (१९२४)

इकाई की रुपरेखा

१०अ.० उद्देश्य
१०अ.१ प्रस्तावना
१०अ.२ गद्य रचना के प्रमुख बिन्दु
१०अ.३ शिल्प एवं शैली
१०अ.४ मूल्यांकन
१०अ.५ अभ्यास

१०अ.० उद्देश्य

- भारतीय पुलिस की भ्रष्टता, अमानवीयता, सुविधापरस्ती का अनुभव रोचकता एवं हास्य के पुट के साथ कराना।
- इस तरह के रवैये का समाज के मूल्यों पर, आम लोगों पर, क्या प्रभाव पड़ता है - इसका परिचय देना।
- व्यंग्य विधा एवं फतांसी शैली का अनुभव कराना।
- हरिशंकर परसाई के लेखन की शक्ति से साक्षात्कार।

१०अ.१ प्रस्तावना

हरिशंकर परसाई हिंदी के शीर्ष व्यंग्यकार हैं। उनका जन्म इटारसी, मध्यप्रदेश (जमानी गाँव) में २२ अगस्त, १९२४ ई. को हुआ। अध्यापन के बाद पूर्ण कालिक लेखन में जुट गए। जबलपुर से 'वसुधा' नाम की पत्रिका का संपादन करते रहे। लेखन तो यों इन्होंने कहानी और उपन्यास विधा में भी किया पर ख्याति इन्हें इनके व्यंग्य निबंधो के कारण मिली। कुछ निबंध-संग्रह हैं - 'तब बात और थी', 'भूत के पाँव पीछे', 'बेइमान की परत', 'पगडंडियों का जमाना', 'सदाचार की तावीज', 'शिकायत मुझे भी है', और अंत में।

परसाई जी आजादी के बाद के भारतीय समाज की राजनीति, धर्म, नौकरशाही, सामाजिक एवं निजी जीवन - अर्थात हर पक्ष के बड़े प्रखर व्याख्याकार हैं। उन्होंने इस समाज की तमाम विडंबनाओं पर खूब नश्तर चलाए हैं।

प्रस्तुत निबंध में परसाई जी के निशाने पर है - भारतीय पुलिस। उन्होंने बड़ी रोचक कल्पना (फंतासी) रची है कि चाँद पर जीवन है, मानव-समाज है - और अपराध भी है। अत: चांद की सरकार भारत की सरकार से अपने पुलिस - विभाग को ट्रेन करने का प्रस्ताव करती है। इंस्पेक्टर मातादीन बतौर भारतीय पुलिस के प्रतिनिधि वहाँ जाते हैं और ऐसी भ्रष्ट ट्रेनिंग देते हैं कि चाँद की पुलिस भी रिश्वतखोरी, झूठी गवाहियों और झूठे केस बनाने, बेकसूरों को सजा दिलवाने में सिद्धहस्त हो जाती है। परिणाम यह होता है कि पुलिस के डर से समाज के इंसानी मूल्य एवं रिश्ते, आपसी सद्भाव एवं सहयोग खत्म हो जाते हैं और अपराध फलने-फूलने लगते हैं। तब चांद की सरकार की आँखे खुलती हैं और वह मातादीन को वापस धरती पर, भारत में भेज देते हैं।

१०अ.२ गद्य रचना के प्रमुख बिन्दु

१०अ.२.१ मातादीन का विज्ञान को सिरे से नकार देना :

मातादीन जो पुलिस विभाग में सीनियर इन्सपेक्टर के पद पर हैं - विज्ञान के सत्य एवं शोध के तरीकों पर यकीन नहीं रखते। उनका मानना है कि वैज्ञानिक ठीक से 'इन्वेस्टीगेशन' नहीं करते। जैसे कि चाँद का उजला पक्ष देखा और कह दिया कि चाँद पर जीवन नहीं। पर मातादीन तो अँधेरे और अपराध के मर्मज्ञ हैं - अंत: वे वहाँ के अँधेरे में घूम कर आए तो पाया - वहाँ भी मनुष्य रहते हैं। इसी तरह अपराधी की तलाश में भी वैज्ञानिक सबूत जैसे छुरे पर के निशान, मुलजिम के फिंगर प्रिट्स से न मिलने पर भी, मातादीन उसपर जुर्म साबित कर देते हैं, सजा दिलवा देते हैं। परसाई जी कहना चाहते हैं कि पुलिस विज्ञान के सहारे सत्य तक पहुँचने का लंबा पर सही रास्ता अपनाना नहीं चाहती।

१०अ.२.२ चांद से चांद की पुलिस को ट्रेन करने को भारतीय पुलिस को बुलावा आना और मातादीन के जाने की तैयारी :

फैंटेंसी की शुरुआत चाँद से आए एक निमंत्रण से होती है। इसमें चाँद की सरकार भारत से दरख्वास्त करती है कि उनकी पुलिस कुछ अक्षम है। और चूँकि भारत में 'रामराज' है तो इसका श्रेय वहाँ की पुलिस को ही जाता है। अत: भारत से कोई पुलिस अफसर आकर उनकी पुलीस को शिक्षा दे।

किस पद के व्यक्ति को भेजा जाए, इसपर खूब बहस के बाद अन्तत: चाँद जैसे उपग्रह के लिए एक सीनियर इंस्पेक्टर को भेजना ठीक समझा जाता है।

यात्रा के दिन चाँद से एक यान उतर आता है। मातादीन राम को याद करते हुए यान में प्रवेश करने को हैं कि अपने मातहत मुंशीर अब्दुल गफूर और हवलदार बलभद्दर को अपने पीछे से कुछ काम सौंपते हैं और वे दोनों खुशी खुशी खुशामदी लहजे में हाँ मे हाँ मिलाते हैं। ये काम है 'घर में जचकी के बखत अपने खटला (पत्नी) को मदद के लिए भेज देना।' अर्थात बच्चे के जन्म के समय मातहतों की पत्नियों की ड्यूटी लगा देते हैं, उनका निजी इस्तेमाल करना अपना अधिकार मानते हैं। दूसरी तरफ वे खुद एस.पी. साहब की पत्नी का हुक्म बजा लाने को परम

तत्पर हैं। एस.पी. साहेब की पत्नी की फरमाइश है - 'चाँद से एड़ी चमकाने का पत्थर लेते आना'। उसके बाद मातादीन चंद्रयान के ड्राइवर पर शुद्ध पुलसिया ढंग से रौब गांठते हैं, गाली-गलौज करते हुए अंतरिक्ष में चालान करने की धमकी देते हैं। उनकी भाषा सुनकर चंद्रमानव सन्न रह जाता है - पर मातादीन गालीविहीन भाषा को पुलिस की 'कमजोरी' कहते हैं। यों मातादीन के निर्देशों और डांट फटकार के बीच यान उड़ता है और यान चाँद के अंतरिक्ष अड्डे पर पहुँच जाता है।

१०अ.२.३ मातादीन का प्राथमिक मुआयना और फिर कुछ सुझाव देना :

(हनुमानजी का आदर्श, वेतन घटाना और उसका परिणाम)। चाँद पर उतर कर मातादीन ने अपने स्वागत में खड़े पुलिस के लोगों का अभिवादन करना इसलिए जरुरी न समझा कि उनके तमगे वगैरह नहीं लगे थे। क्योंकि भारत में पद और दर्जे को सैल्यूट किया जाता है - मनुष्य को नहीं। एक दिन आराम करने के बाद जब उन्होंने पुलिस का निरीक्षण किया तो कुछ नतीजो पर पहुँचे और कुछ सुझाव दिए। पहला सुझाव था कि पुलिस के आराध्य देव हनुमान जी की मूर्तियाँ जगह जगह स्थापित हों। कारण यह नहीं कि उन्होंने भले लोगों की मदद की थी बल्कि मातादीन के अनुसार उन्होंने सीता के 'एबडक्शन' के मामले में रावण की 'प्रापर्टी' में आग लगाकर सजा वहीं दे दी थी - पुलिस को भी अदालत का झंझट न होना चाहिए। उसे मनमानी करने की छूट रहनी चाहिए। इसी लिए रामचन्द्र जी ने नगर में लाकर उनका प्रमोशन करवाया था। दूसरा सुझाव मातादीन ने यह दिया कि पुलिस की अक्षमता का कारण उनकी बड़ी बड़ी तनखाहें हैं। उनकी जरुरतें आसानी से पूरी हो जातीं हैं - वे काम करें तो क्यों ? जबकि भारत में ये तनख्वाहें इतनी कम हैं कि २४ घण्टे पुलिस कोई भी केस ढूँढने को बेकरार रहती है - सच्चे-झूठे का फर्ख ही नहीं है। केस पकड़े बिना ऊपरी आमदनी होगी नहीं और ऊपरी आमदनी बिना उनका गुजारा ही न चलेगा। अत: यहाँ परसाई जी भ्रष्टाचार की जड़ तक जाते हैं और व्यापक तौर पर व्याप्त भ्रष्टाचार का कारण स्पष्ट करते हैं। सचमुच ही इस सुझाव पर जब अमल किया जाता है तो पुलिस एकदम जाग जाती है और धड़ल्ले से 'केस रजिस्टर' होने लगते हैं। उनके पहले और बाद में क्या होता है - इसका कोई अंदाज उससे लगता नहीं। सब लोग इस चमत्कार से प्रभावित होते हैं, और सबसे अधिक प्रसन्न हैं पुलिसवाले जिनके मुँह को ऊपरी आमदनी का खून लग गया है - और वह क्षुधा तो अनादि-अनन्त है।

१०अ.२.४ मातादीन का एक हत्या के केस में खुद इन्वेस्टीगेशन कर के चाँद के पुलिस को 'ट्रेन' करना।

कत्ल के केस में मातादीन केवल एविडेंस से शुरुआत करके, वहीं अंत करने का अपना सिद्धांत पेश करते हैं। कातिल के बारे में ज्यादा तफ्तीश करने, या कारण वगैरह ढूंढने के जहमत उठाने की जरुरत ही नहीं। अत: इस केस में जिस भले आदमी ने घायल को उठाकर हस्पताल पहुँचाया था, उसी को पकड़ लिया जाता है क्योंकि उसके कपड़ो पर मदद करते हुए खून लग गया था। मातादीन लंबी बहस करते हैं और उससे एक ही प्रश्न बार बार करते हैं कि 'वहाँ गए ही क्यों' अर्थात ऐसी जगहों से दूर रहना चाहिए। और मदद करोगे तो फँसना तो पड़ेगा। इस तरह अपनी ही बात पर अड़े रहना भी सिखाते हैं। वे पुलिसवालों को पुलिस का 'मानवतावाद' समझाते हैं कि कत्ल हुआ हैं तो किसी मनुष्य को सजा होनी चाहिए - कसूरवार हो या बेकसूर, यह सोचने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मनुष्य, मनुष्य सब बराबर हैं।

इस तरह के और भी कई सिद्धांत हैं कि जरुरत पड़ने पर किन किन को फँसाया जाना चाहिए। अगर वह पुलिस के लिए बाधक हो, या फिर राजनेताओं (ऊपरवाले) की आँख का रोड़ा है।

यें दोनों ही बातें उस भले व्यक्ति पर लागू होती हैं अत: अब तो तय है कि इसेही सजा दिलवानी है। बस अब कुछ झूठे गवाहों की गवाही की देर है। तो मातादीन छोटे-मोटे अपराधियों को थाने में बुलाते हैं और धमकाते हैं कि झूठी गवाही दो कि तुमने इसे मृतक पर वार करते देखा था। बेचारे गुण्डे समझ नहीं पाते-पर अन्त में मातादीन के डर से कुछ भी कहने को तैयार हो जाते हैं और भविष्य के लिए भी 'पुलिस के गवाह बन जाते हैं'। भले आदमी को बीससाल की सजा हो जाती है। पहले तो पुलिसवालों की नैतिकता आड़े आती है - पर मातादीन उन्हें अपनी अपराध बोधहीन आचार संहिता सिखा ही देते हैं। हर सही बात का झूठा जवाब देना सिखा देते हैं - कि "हम क्या करें! यह सब ऊपर से हो रहा है"।

१०अ.२.५ चन्द्रमा की पुलिस के कायाकल्प पर मातादीन का सार्वजनिक अभिनंदन :

अब जब मातादीन की ट्रेनिंग रंग लाई तो केस तो खूब बनने लगे, सजाएँ भी होने लगीं। पुलिस की ऐसी सक्रियता और सरगर्मी पर सरकार खुश थी - उन्होंने मातादीन को सम्मानित करने का फैसला किया और संसद ने उन्हे धन्यवाद दिया। मातादीन बिल्कुल भारतीय राजनेताओं के अंदाज में, फूल मालाएँ पहने, एक खुली जीप में बैठे जब निकले तो हज़ारो लोग जय जयकार कर रहे थे और उन्हें गुमान हो रहा था कि वे कोई बड़े मंत्री हैं।

१०अ.२.६ कुछ समय बाद चन्द्रमा की संसद में चाँद के बदले हुए समाज का एक दूसरा चेहरा सामने आया और मातादीन का जबरन धरती पर लौटना ।

एक दिन संसद के सदस्य गुस्से में चिल्लाते हैं कि हमारे समाज में कोई बीमार बाप का इलाज नहीं करता, डूबते बच्चों तक को नहीं बचाता, जलते मकान की आग नहीं बुझाता। ऐसा अमानवीय समाज पहले तो न था। धीरे धीरे कारण समझ में आता है। लोग दूसरों के दु:ख कष्टों से दूरी बनाए रखना चाहते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि कुछ भी हो गया तो वे झूठे केसों में फँसा दिए जाएँगे। बेटे पर बाप के कत्ल का आरोप लगेगा, बचाने जाने वालो पर बच्चो को डुबाने का आरोप और आग बुझाने जाने वालों पर आग लगाने का जुर्म कायम होगा। ऐसे में लोग संकटो में घिरे गुहारते रहते हैं पर कोई उनके पास नहीं जाता। यह सब मातादीन की ट्रेनिंग का नतीजा था।

चाँद के प्रधानमंत्री मातादीन को तुरंत वापिस भेजना चाहते हैं - पर मातादीन अड़ जाते हैं। हार के चाँद के प्रधानमंत्री भारतीय प्रधानमंत्री से गुजारिश करते हैं कि उनके साथ भारत ने बहुत बुरा किया - कृपया अपने दूत को वापिस बुला लें। मातादीन को आई जी का आर्डर मिलता हैं और वे वापिस 'रामराज्य' में आ जाते है।

१०अ.३ शिल्प एवं शैली

फंतासी का प्रयोग करने वाला यह व्यंग्य शिल्प है जिसमे चाँद पर जाकर पुलिस में भ्रष्टाचार फैलाने की कथा के माध्यम से लेखक ने दरअस्ल भारतीय पुलिस का विश्लेषण किया है और उनके भ्रष्ट तौरतरीकों पर कटाक्ष किया है। परसाई जी ने हनुमान जैसे पौराणिक पात्रों

की भी मातादीन के माध्यम से नई व्याख्या की है। संवादो, बोलियों, चौपाइयों और गाली गलौज तक को यथास्थान इस्तेमाल किया है। लेखक द्वारा वर्णन हो या मातादीन वगैरह के संवाद - सबमें बेहद गतिशीलता, चुस्ती और धारदार मित कथन के गुण हैं। 'पुलिस का मानवतावाद' विज्ञान ने मातादीन से सदा मात खाई है, ऊपर का सपोर्ट, झगड़े की जगह जाना ही क्यों - कटाक्ष वाक्य देर तक गूंजते है।

१०अ.४ मूल्यांकन

यह व्यंग्य परसाई जी के श्रेष्ठतम निबंधो में हैं - पुलीस का कोई भी पक्ष - कम वेतन, झूठी गवाहियाँ, पुलिस की दूषित जबान और दबंगई, और ऊपर की कमाई पर जीना वगैरह - उनसे छूटा नहीं है। इस सब को दिखाने की उनकी युक्ति भी निराली है जहाँ एक दूसरे उपग्रह पर जाकर भारतीय इंस्पेक्टर इन दूषित प्रणालियो की शिक्षा देता है।

सबसे बड़ी खूबी है यह दिखाना कि इस सब का प्रभाव समाज पर असंवेदना एवं उदासीनता के रूप में प्रकट होता हैं। यह दुर्घटना भारतीय समाज में घटित हो चुकी है।

१०अ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या विषयक प्रश्न

१. मैं समझ गया ..... तलाश करते है। (पृ - ७७)
२. सवाल है - किसको ..... का मानवतावाद है (पृ. ८०)
३. घबराओ मत। ..... ऊपर से हो रहा है (पृ. ८१) इत्यादि

२) निंबधात्मक प्रश्न :

१. मातादीन ने चाँद की पुलिस को क्या प्रशिक्षण दिया ?
२. 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' में परसाई जी ने भारतीय पुलिस पर गहरा व्यंग्य किया है, स्पष्ट कीजिए।
३. मातादीन ने चाँद के समाज की आधी संस्कृति कैसे नष्ट कर दी - अपने शब्दों में लिखिए।

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

१. मातादीन से कौन सदा हारता आया है ?
२. मातादीन ने मुंशी गफूर और बलभद्दर को जाने से पहले क्या काम सौंपा ?
३. चाँद की पुलिस लाइन में किनके मंदिर बनवाने का आदेश दिया गया ?
४. एस. पी. साहब की पत्नी ने चाँद से क्या चीज मँगवाई ?
५. चन्द्रलोक के एक निरपराध आदमी को मातादीन की वजह से कितनी सजा मिली ?
६. मातादीन को वापिस जाता देख पुलिसवाले क्यों रो पड़े ?
(आदि .....)

❖❖❖❖❖

१०आ

खेल

मुंशी प्रेमचंद (१८८०-१९३६)

इकाई की रुपरेखा

१०आ.० उद्देश्य
१०आ.१ प्रस्तावना
१०आ.२ गद्य रचना के प्रमुख बिन्दु
१०आ.३ शिल्प एवं शैली
१०आ.४ मूल्यांकन
१०आ.५ अभ्यास

१०आ.० उद्देश

- पहला उद्देश्य तो प्रेमचंद जो दिखाना चाहते हैं, वही है, यानी बच्चों के खेल तक में भी जीवन की विषमताएँ, वर्ग एवं लिंग के भेद, पारिवारिक तनाव साफ प्रतिबिंबित होते हैं, कि खेल, खेल होकर भी मात्र खेल नहीं।
- सामान्य उम्र के एक से बच्चों मे कोई मालिक है, कोई नौकर। यह भेदभाव खेलमें भी कायम है। मालिक में मालिक होने की अहमन्यता है। नौकर में बड़े आदमी की भूमिका निभाने की सहज चाह। यह बात प्रेमचंद कितनी मार्मिकता से दर्शाते है, इस बात का अनुभव पाठकों को कराना।
- प्रेमचंद की कला और दृष्टि से विद्यार्थियों का साक्षात्कार करवाना - कैसे केवल बच्चों के संवादों के जरिए, खेल ही खेल में उन्होंने जीवन की विषमताएँ उघड़ दी हैं। इन भेदभावों के प्रति संवेदना जगाना।

१०आ.१ प्रस्तावना

हिंदी के उपन्यास सम्राट एवं महानतम कथाकार मुंशी प्रेमचन्द का जन्म बनारस जनपद के लमही गाँव मे सन १८८० ई. मे हुआ। बचपन के धनपत राय ही बाद में प्रेमचन्द कहलाए। प्रेमचन्द १९२१ में गांधी जी के आन्दोलन के प्रति समर्पित रहे। उनकी कहानियों और उपन्यासों में उस समय के राष्ट्रीय एवं सामाजिक तनाव, घरेलू जिंदगी का लगभग हर पक्ष बड़ी अन्तदृष्टि और सहानुभूति से उभरा है। प्रमुख उपन्यासों में है - सेवासदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, रंगभूमि, एवं गोदान। 'मानसरोवर' के आठ खंडों में इनकी २२४ कहानियाँ संकलित

हैं। प्रेमचन्द ने हंस, जागरण, मर्यादा आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया था। साहित्य की इस विभूति का देहावसान १९३६ में वाराणसी में हुआ था।

'खेल' नाम की इस कहानी में दो भाईबहन - बबलू और छवि 'घर-घर' का खेल खेल रहें है, साथ में अपनी उम्र के घर के नौकर परताप को भी शामिल करते हैं। भूमिकाएँ बाँटी जाती हैं तो उन्हीं में नौकर और मालिक का भेदभाव उभरने लगता है। दोनों बच्चों के मन में वह 'नौकर' है, 'गंदा है' के बोध के अलावा दोस्ती का बोध भी है। खेल ही खेल में माता-पिता के तनाव भी आते हैं, बच्चे जिसके सहज साक्षी हैं। प्रेमचन्द की जीवन मर्मज्ञता के दर्शन इस कहानी में भी हो जाते हैं। इस कहानी को नाटक की तरह खेला भी जा सकता है क्योंकि कहानी संवादों से ही बुनी गई हैं। छोटे-बड़े, सत्तावान एवं सत्ताहीन का भेद मालिक-नौकर, स्त्री-पुरुष, मनुष्य और जीव जन्तु जड़ जमाए है।

१०आ.२ गद्यरचना (कहानी) के प्रमुख विचार बिन्दु

१०आ.२.१ दोपहर में भाई - बहन के 'घर-घर' खेलने की योजना और घर के हम उम्र नौकर 'परताप' को भी शामिल करना

दो छोटे बहन और भाई - छवि और बबलू माँ के सोने के वक्त 'घर-घर' खेलने का कार्यक्रम बनाते हैं। दोनों का सहज भाव है कि 'परताप' जो घर का सेवक है, (हालांकि उन्ही की उम्र का है) को भी इस 'नाटक' में शामिल कर लें। भाई बहन की बातचीत मे उभरता है कि परताप उनका साधारण साथी नहीं, वह उनसे अलग हैं क्योंकि वह 'नौकर' है, नौकरों को कुछ नहीं आता, वे गंदे रहते हैं, फटे कपड़े पहनते हैं, शिक्षा और उसमें भी अंग्रेजी शिक्षा से वे कोसों दूर हैं। पर इस सबके बावजूद घर-घर के इस खेल में उसकी वक्ती जरूरत को नकारा नही जा सकता। वैसे भी घर का माहौल एक सेवक के बिना सम्पूर्ण कैसे हो सकता है।

परताप घर के कामों से मुक्त होकर थोड़ी राहत के लिए आंगन में जा बैठा था। बबलू उसे कमरे में आकर खेलने का प्रलोभन देता हैं। उनके कमरे में पंखे की ठंडी हवा है। परताप मालकिन के जग जाने की संभावना से डरता है- पर फिर अपने छोटे मालिकों की बात और खेल की सहज इच्छा के चलते मान जाता है। दो कुर्सियों पर पंलग पोश तान कर घर की छत तैयार हो जाती है।

१०आ.२.२ 'नौकर' बनाए जाने पर परताप का विद्रोह और माता-पिता की भूमिकाओं की अभिनय क्षमता को लेकर भाई-बहन में बहस।

जब भूमिकाएँ बँटती है तो छवि और बबलू तो सहज ही मम्मी-और पापा हो जाते है। परताप को भी उसी तरह 'घर के नौकर' की भूमिका ही मिलेगा - यह बात मानों पहले ही से तय है। परताप को यह बिल्कुल स्वीकार नहीं कि हर खेल में उसकी यही भूमिका तय हो। वह कमसकम खेल में तो अपनी आवाज उठा सकता है और उठाता भी है। तब अन्य समश्रेणी भूमिकाओं पर चिंतन होता है - जैसे कि पोस्टमैन, या माली। पर परताप नौकर नहीं, 'बड़ा आदमी' बनना चाहता है। लेकिन यह बात बच्चों के गले उतर नही पाती कि ऐसे फटे पुराने

कपड़ों में परताप 'बड़ा आदमी' बन ही कैसे सकता है। लेकिन छवि खेल के लालच में 'डॉक्टर' की भूमिका पर समझौता कर लेती है। परताप को यह भूमिका हर्षित करती है। लेकिन इस भूमिका का दावेदार बबलू भी है क्योंकि उसे लगता है कि पापा के रोल में करने को कुछ होता नहीं - जबकि माँ की भूमिका निभाती छवि घर भर के कितने कामों का अभिनय करती हैं।

डॉ. की भूमिका को लेकर छवि परताप को डांटती है कि डॉ. का अभिनय करने की भी हैसियत परताप में नहीं। क्योंकि डॉक्टर अंग्रेज़ी बोलते हैं और परताप को अंग्रेजी नहीं आती। यद्यपि परताप भी पढ़ता है लेकिन बच्चों की नजर में उसका स्कूल 'फटीचर है हिन्दी वाला'। यानी शिक्षा की दृष्टि से भी समाज में छोटे-बड़े, गरीब अमीर के अन्तराल को बरकरार रखा गया है।

१०आ.२.३ विलायत से लौटे अंग्रेजीदाँ जयंत का रौबदार पात्र और बातों बातों में माता-पिता के बीच गहरे तनाव के संकेत

अंग्रेजी से बात खुदबखुद जयंत मामा पर कूद जाती है क्योंकि वे केवल 'इंगलिश' बोलते है और १० साल इंग्लैड में रहकर लौटें हैं। दोनों भाई-बहन जयंत और उनकी लाई 'इम्पोटेड' चीजो के माध्यम से परताप पर रौब भी गालिब कर रहे है। उन्हीं बातों में बबलू उनकी लाई कमीज पर पिता का 'जुम्ला' उघृत करता है कि 'पापा तो कहते हैं कि उनकी कमीज बड़ी घटिया है'। लेकिन बच्चों का मानना है कि पापा ऐसी बातें माँ से लड़ने के लिए, उन्हें दु:ख पहुँचाने को करते हैं। तभी परताप भी अपने पिता के बारे में खुलता है कि कैसे दारू पीकर उसका बाप गाली देता है और मारता भी है। अचानक उसके मुँह से निकलता हैं कि वह बड़ा होकर इस अन्यायपूर्ण शहर से कहीं दूर चला जाएगा, दिल्ली, कलकत्ता जैसे बड़े शहर में। दिल्ली में ही बच्चों के मामा रहते हैं तो कल्पना यही की जाती है कि परताप वहाँ जाकर उनकी बड़ी गाड़ी का ड्राइवर बनेगा। माँ जग न जाए, बहन के यह कहने पर भाई का कहना है, वह सोई नहीं आँखो पर हाथ रखे रोती रहती हैं। और माँ की चिढ़ और रोने के कारण बच्चे सोचते हैं कि उनके पात्र को छोड़ ही दिया जाए तो खेल कैसा रहे।

१०आ.२.४ माँ कि भूमिका छोड़के उनकी जगह जयंत, उनके ड्राइवर के नये पात्रों की सृष्टि एवं जीजा-साले का दृश्याभिनय

हर दम दु:खी रहकर बेवजह डाँटने वाली माँ का पात्र त्याग दिया जाए और दो नये चरित्रों - जयंत मामा और उनके ड्राइवर का अभिनय जुड़े, ऐसा फैसला होता हैं। माँ के बगैर थोड़ी दिक्कत होगी 'घर-घर' खेलने में, पर सोच लिया जाएगा कि अम्मा (झूठ-मूठ मे) गई है। खैर दृश्य का अभिनय शुरु होता है। जीजा के घर जयंत आते हैं, अभिवादन होता है, खाना-पीना पूछा जाता है। लेकिन संवादों के बीच बीच में वास्तविक जीवन के क्षेपक चलते हैं, आपत्तियाँ उठती रहती हैं।

१०आ.२.५ खेल के बीच बातों के साथ साथ एक तितली के आने से अभिनय की लय टूटना

शक्तिवान और अशक्त के भेदभाव का एक ओर क्रूर अध्याय जुड़ता है। माता-पिता के व्यवहार से विरक्त होकर बच्चे अपने को कई तरह से वंचित अनुभव कर ही रहे होते हैं (और

इस दृष्टि से तीनों एक समान है) कि एक सुंदर तितली उड़ती हुई आती है और बच्चों का मन देख परताप उसे पकड़ लाता है। उस बंदी जीव के हाथ-पैर- आँखे देखकर बबलू के मन मे उसे तड़पते देखने की क्रूर इच्छा जगती है और वह उसका एक पैर नोच डालता है, पँख फाड़ देता है। परताप के मन में उस जीव की हालत पर दया है - पर बच्चों को उसके मरने से कोई फर्क न पड़ेगा - 'तो क्या हुआ ? तितली ही तो है न ? अरे गधे, छोड़ क्यों दी ?'

इस गाली पर नौकर परताप फिर विद्रोह कर उठता है। और अब मालिक के बच्चे प्रभुता के रंग में आकर उससे झगड़ने लगते है। परताप को खेल से निकालने की बात पर भाई-बहन में झगड़ा तेज हो जाता है। अंग्रेजी - हिंदी और बड़े-छोटे लोगों की चर्चा फिर होती है और झगड़ते हुए घर-घर का खेल समाप्त होता है।

१०आ.३ शिल्प एवं शैली

है तो यह कहानी का शिल्प, जो घटना के एक बिन्दु से शुरु होकर अंत में जाकर खत्म होता है, पर इसमें लेखक खुद वर्णन करने के बजाय सारी बात तीन बच्चों के संवादों के माध्यम से कहता है- जो नाटक का शिल्प है। हाँ, नाटक की तरह यह दृश्यों में बँटा नही है, और रंगसंकेत वगैरह भी नहीं हैं। ज्यादातर तीन चरित्र घर घर का नाटक खेलने की योजना के तहत आपस में बहस करते हैं, कौन क्या चरित्र बने और क्यों नहीं, इसीमें लेखक ने सबकुछ कह दिया है। कहानी में नाटक के कुछ संवाद और अभिनय उभरता भी है। प्रेमचंद की शैली हमेशा की तरह बड़ी जीवंत, गतिवान, चुस्त और बेहद सहज है। बच्चों के लिए बच्चों की सी जबान का उपयोग हुआ है। उसमे कोई बड़ी बड़ी बाते नहीं - छोटे छोटे सवाल, जबाब, रुठना, मनाना है। शैली में खूबी है कि साधारण बातचीत ही विडंबना एवं विषमता के संदर्भ में दूसरे अर्थ ध्वनित करती है।

१०आ.४ मूल्यांकन

यह प्रेमचंद की बेहतरीन कहानी है। बच्चो की बोली-बानी, उनका झगड़ना, उनकी अपनी तरह की तर्कशीलता, सब प्रेमचन्द को सिद्ध कलाकार बना देते हैं। बच्चों की बातचीत के आधार पर छोटे-बड़े के अन्यायपूर्ण भेदभाव की तस्वीर आँक देना प्रेमचंद के ही वश की बात थी। अमीर और गरीब ही नहीं, बच्चे और बड़े, स्त्री और पुरुष, कोमल तितली और मनुष्य - के बीच के रिश्ते क्या एक से नहीं हैं ? यहाँ तक की प्रेमचन्द ने भाषा की वर्गगत ताकत और कमजोरी का भी ग्रहण किया है। क्या ताकत का खेल इन तमाम साक्षात्कारो में दिखाई नहीं पड़ता।

१०आ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याखा :

१. "आ हा हा ; डॉक्टर बनूँगा ..... स्पोलिंग क्या होती है ?" (पृ. ८९)
२. " तो आफिस जाकर ..... हो मजे से। "
३. ऐसा करते हैं ..... और मैं अम्मा। (पृ. ८८)

२) निबंधात्मक प्रश्न :

१. 'खेल' कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द स्त्री-पुरुष और छोटे-बड़े (अमीर-गरीब) का भेदभाव कैसे दिखाते हैं, लिखिए।
२. बच्चो के खेल में जीवन की विषमताएँ एवं अन्याय उभरते हैं - व्याख्या कीजिए।
३. 'खेल' में नौकर एवं मालिक के भेदभाव का वर्णन कीजिए।

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

१. दोनो भाई बहन मिलकर क्या खेल खेलना चाहते हैं ?
२. खेल मे वे किसे शामिल करना चाहते हैं ?
३. परताप को क्या भूमिका देना चाहते हैं ?
४. परताप क्या भूमिका करना चाहता है ?
५. माँ की भूमिका को छोड़ने की बात क्यों उठती है।
६. बच्चों के मामा का क्या नाम है ?
इत्यादि।

❖❖❖❖

११अ

शनि : सबसे सुंदर ग्रह

- गुणाकर मुले(१९३५)

इकाई की रुपरेखा

११अ.० उद्देश्य
११अ.१ प्रस्तावना
११अ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु
११अ.३ शिल्प एवं शैली
११अ.४ मूल्यांकन
११अ.५ अभ्यास

११अ.० उद्देश्य

- गुणाकार मुले के इस विज्ञान निबंध के ज़रिए हिंदी में सरस विज्ञान-लेखन की एक बानगी प्रस्तुत करना।
- अंतरिक्ष एवं सौर मंडळ के नक्षत्रों में शनि के बारे में बड़ी रोचक और अद्‌भुत जानकारी देना।
- भारतीय मन में शनि को लेकर जो तमाम अंधविश्वास हैं, उनका खंडन करना।
- पुरातन अनुमानों एवं अध्ययन के सामने नयी दृष्टि, विज्ञान एवं तर्क की खोजी दृष्टि की स्थापना।

११अ.१ प्रस्तावना

महाराष्ट्र के अमरावती जिले की सिंही व्रजरुक गाँव में जन्मे गुणाकार मुले ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से गणित में एम.ए. किया था। इनके लेखन के विषय विज्ञान एवं तकनालजी से लेकर भारत के इतिहास तथा संस्कृति रहे हैं। ३० के लगभग पुस्तकें और ढाई सौ लेखों के लेखक गुणाकार मुले को अनेक पुरस्कार भी मिले हैं।

प्रस्तुत निबंध सौर मंडल के एम महत्त्वपूर्ण ग्रह के बारे में बड़ी रोचक जानकारियाँ ही नहीं देता, अंतरिक्ष के इस ग्रह को देखने की हमारी दृष्टि में आमूल परिवर्तन करता है। गुणाकार मुले ने उसके वृध्द आकार, मंद गति, पीत रंग, वायुमंडल एवं चहुँ ओर के प्रसिद्ध वलयों और उपग्रहों का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। साथ ही साथ पुरातना पंडितों और ज्योतिषों ने उसे जैसे

समझा है, उसका भी वर्णन कर दिया है। शनि को धीमें चलने वाला 'शनैश्चर' और अशुभ ग्रह माना जाता रहा है- गुणाकार मुले बड़ी सादगी से इस बात का खंडन कर देते हैं।

११अ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु

११अ.२.१ शनि का वृध्द आकार, सूर्य से दूरी, रंग, वायु मंडल और तापमान का परिचय

गुणाकार मुले सौर मंडल में शनि के स्थान के बारे में लिखते हैं कि शनि का पथ या कक्षा बृहस्पति (जो आकार में सबसे बड़ा है) के बाद आती है। स्वयं शनि का आकार बहुत बड़ा है- आकार की दृष्टि से बृहस्पति के बाद उसी का महत्त्व है। यह हमारी पृथ्वी से ७५० गुणा विराट है। शनि का व्यास ही पृथ्वी से कोई ९ गुणा बड़ा है।

जहाँ पृथ्वी की सूर्य से दूरी केवल १५ करोड़ किलो मीटर है, वहीं शनि की दूरी १४३ करोड़ कि.मी. है। उसके गति कम नहीं है, पर सूर्य से दूर होने के कारण सूर्य के गिर्द उसकी एक परिक्रमा पूरी होने में हमारे लगभग ३० साल लग जाते हैं। पृथ्वी इस परिक्रमा (सूर्य से नज़दीक होन के कारण) को एक वर्ष में (३६५ दिन) पूरा करती हैं। कितनी रोचक बाद है कि पृथ्वी के हिसाब से ९० वर्ष का बूढ़ा, शनि के हिसाब से केवल तीन साल का कहाएगा। बिना दूरबीन के देखने पर इसके पीली सी आभा पुराने लोगों ने देखी थी और इसको पुराने लोग आकाश में पहचानते भी थे। सूर्य से बहुत दूर होने ही की वजह से सूर्यताप इसपर ज़्यादा पहुँच नहीं पाता, अतः यह बहुत ही ठंडा ग्रह है, - १५०° सेटी ग्रेड तक इसके वायुमंडल का तापमान है।

इसका वायुमंडल हाइड्रोजन, हीलियम, मिथेन तथा अमोनिया गैसों के मिश्रण से बना है। दूरबीन से देखें तो इसका चमकता हुआ बाहरी वायुमंडल दिखता है, उसकी सतह नहीं। बीच में ठोस ग्रह भी होगा ही, इसका अनुमान है। लेकिन अनुमान के आधार पर मनुष्य को उसपर उतारना संभव नहीं।

११अ.२.२ शनि के विषय में पुरातन धारणाएँ : शनैःचर, से जुड़े अंधविश्वास, पुराण-कथाएँ एवं वाराह मिहिर की व्याख्याएँ

चूँकि शनि को सूर्य के गिर्द चक्र पूरा करने पर ३० साल लगते हैं तो आकाश पर इसकी गति बेहद कम लगती है। इस प्रतीयमान धीमी गति के कारण इसका नाम शनैःचर (धीमे चलनेवाला) पड़ा और ज्योतिषियों के 'सनीचर' से तो लोग भयभीत रहने लगे- उसे घोर अशुभ ग्रह माना जाने लगा जो सात साल तक एक राशि में अटका रहता है।

भारतीय पुराणों में उसे सूर्य का पुत्र कहा गया, मंदगतिवाला भैंसा उसका काल्पनिक वाहन बना। यूनानी कथाओं में सैटर्न (शनि) को जुपिटर का पिता याना गया और रोमनो में उसे कृषि का देवता कहा गया।

ईसा की छठी सदी के ज्योतिषी वाराहमिहिर ने तो इसकी अशुभ एवं अमांगलिक प्रभावों पर अपने ग्रंथ वृहतसंहिता में 'शनैश्चरा चार' नामक एक अलग अध्याय ही लिख डाला। बाद के पंडितों ने भी वाराहमिहिर की धारणाओं को यथावत् मान लिया।

११अ.२.३ 'दिव्यदृष्टि' (दूरबीन) से देखने पर शनि का वलय-मंडित अनुपम सौन्दर्य

इन सब पुराने विचारों का तब खंडन हो गया जब पहली बार १६०९ ई. में गैलीलियो ने दूरबीन या दिव्यदृष्टि से आकाश को देखा। जब शनि उस यंत्र के सहारे दिखा तो वह अद्‌भुत था। उसके चारों ओर गोल छल्ले या वलय थै जैसे उसके गले में हार पहना दिए गए हों। पुराने ज्योतिषी या खगोलविद्‌ इन वलयों को कभी देख ही न पाए थे। पिछले कुछ दशको में अंतरिक्ष यानों की मदद से और भी नयी जानकारियाँ मिली हैं।

११अ.२.४ शनि के वायुमंडल एवं उपग्रहों का विशेष (खासकर टायटन) अध्ययन

कुछ दशक पहले शनि के दस उपग्रह खोज लिए गए थे- अब तक तो उसके उपग्रहों की संख्या १७ से चुकी है। गुणाकार मुले धरती के यानों 'पायोनियर' ओंर 'वायजर' के अभियानों की चर्चा करते हैं, जिन्हों ने सात नये चन्द्रमा या उपग्रह खोज निकाले। शनि पर यान उतारा नहीं जा सकता- पर शनि के बड़े चाँद टायटन पर उतारा जा सकता है और जीवन के अध्ययन किए जा सकते हैं। टायटन का वायुमंडल मुख्यतः नाइट्रोजन से बना है, और पृथ्वी से भी ज़्यादा घना है। मिथेन भी यहाँ है जो तरल रूप में भी हो सकती है- पानी की तरह। और वहाँ जीवन के तत्त्वों का क्रमिक विकास भी संभव है। इन अध्ययनों से पृथ्वी पर जीवन के इतिहास के बारे में नयी अन्तदृष्टियाँ मिल सकती हैं।

११अ.२.५ शनि के वलय

गैलीलियों ने ही सबसे पहले शनि के गिर्द वलयों को देखा था। कुछ समय पहले इनकी संख्या तीन मानी गई थी- लेकिन 'पायोनियर' और 'वायजर' की बदौलत अब यह संख्या सात हो गई है।

यों तो बृहस्पति, यूरेनस और नेपच्यून के गिर्द भी वलय दिखे हैं- पर वे शनि जितने बड़े और साफ़ नहीं हैं। यह शनि की सतह के ५० हज़ार फुट ऊपर शुरू होते हैं- दो लाख कि.मी. दूर तक फैले हैं, हालांकि इनकी मोटाई, ज़्यादा नहीं- मात्र १० किलोमीटर। इस लिए कई बार इनके भीतर से तारे भी दिखते है।

अतः इतने सुंदर ग्रह पिंड को अशुभ वगरैह मानना स्वयं भी अशुभ एवं अमांगलिक दृष्टि होगी।

११अ.३ शिल्प एवं शैली

निबंध का शिल्प है, जिसमे शनि के विषय में बहुत सी जानकारी है। सौर मंडल में शनि के पड़ोसी बृहस्पति के आधार पर शनि के घर के पते से निबंध शुरु होता हैं और फिर आकार प्रकार, रंग, रूप उभरने लगता है। निबंध बेहद औपचारिक हो सकता था अगर मुले की शैली

इतनी सहज, सुन्दर और सरस न होती। वे नयी खोजों के साथ साथ हमारे मनों मे बसे शनि के परंपरागत अशुभ रूप, सूर्य पुत्र, कर्मकांड वगैरह को भी बताते हैं। यह सीधा सहज वाक्य देखिए: **सनीचर का नाम लेते ही अंधविश्वासियों की रूह कांपने लगती है।** या फिर ढेर सारी जानकारियों के बीच यह वाक्य- **'शनि के केंद्रभाग में ठोस गुठली होनी चाहिए।'** और यह विज्ञान में, अंतरिक्ष की विराटता का अनुभव रखने वाले का स्पष्ट कथन- **किसी भी ग्रह को शुभ या अशुभ समझने का कोई भौतिक कारण नहीं हैं।**

११अ.४ मूल्यांकन

प्रेमचंद, महादेवी, हज़ारी प्रसाद जैसे साहित्यिकों के बीच में गुणाकार मुले जैसे विज्ञान-लेखक का शनि ग्रह के बारे में यह निबंध बेहद नया और सुंदर है- यह हमें धरती के जीवन से अलग अंतरिक्ष एवं सौर मंडल की अपारता में ले चलता है। भारतीय, यूनानी एवं रोमन मिथकों, पुराणों और परंपराओं को भी मुले जी स्पर्श करते हैं- पर लक्ष्य उनका उससे आगे जाकर शनि की सच्ची तस्वीर पाठकों को देना है। इसमें वे बेहद सफल हुए है।

११अ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या :

जैसे - १. शनि को शनैश्चर ———— से चलने वाला। (पृष्ठ-९९)
२. शनि हमारे सौर मंडळ ———————— खूबसूरत ग्रह है। (पृष्ठ-१०१)
३. ईसा की छठी———— ही अंधानुकरण किया। (पृष्ठ-९९)

२) निबंधात्मक प्रश्न

जैसे- १. शनि: को गुणाकर मुले सौर मंडल का सबसे सुंदर ग्रह क्यों मानते हैं, लिखिए।
२. शनि को अशुभ क्यों माना जाता था, शनि के बारे में परंपराओं की व्याख्या कीजिए।
३. शनि के आकार, गति और वलयों के बारे में बताइये।

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

जैसे १. शनि की कक्षा किस ग्रह के बाद है ?
२. ९० साल के बूढ़े की आयु शनि पर क्या होगी ?
३. शनैशर का क्या अर्थ है ?
४. पहली बार दूरबीन से किसने आकाश को देखा ?
५. शनि के चारों ओर क्या हैं ?
६. शनि का सबसे बड़ा चंद्र कौन सा है ?

❖❖❖❖

११आ

हिमालय

- विद्यानिवास मिश्र
(१९२६ ई- २००)

इकाई की रुपरेखा

११आ.० उद्देश्य
११आ.१ प्रस्तावना
११आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु
११आ.३ शिल्प एवं शैली
११आ.४ मूल्यांकन
११आ.५ अभ्यास

११आ.० उद्देश्य

- हिमालय पर्वत जो इस पृथ्वी और फिर हमारे देश की विभूति है, उसके प्राकृतिक सौन्दर्य, महिमा और सांस्कृतिक महत्त्व को अनुभव कराना।
- हिमालय से जुड़ी पौराणिक कथाओं, मिथकों, संस्कृत काव्यों (कालिदास का 'मेघदूत') का भी स्पर्श पाठकों तक पहुँचाना।
- हिमालय के माध्यम से भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के मूलतत्वों को (आत्मदान, त्याग, तप, शांति एवं धैर्य) रेखांकित करना।
- चीन के युद्ध की ओर संकेत।

११आ.१ प्रस्तावना

१९२६ में गोरखपुर में जन्मे विद्यानिवास मिश्र जी संस्कृत की पढ़ाई के बाद गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति रहे, भाषाविज्ञान के बड़े शोधक रहे और सबसे बढ़कर हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध परंपरा के ललित निबंधकार रहे। उन्हें निबंधकार के रूप में बहुत ख्याति मिली। कुछ प्रमुख निबंध संग्रहों में है- 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, छितवन की छाँह, आंगन का पंछी और बनजारा मन' इत्यादि । उनका लेखन संस्कृत की क्लासिकता परंपरा की पृष्ठभूमि में लोक जीवन की माधुरी और भोलापन, तथा आधुनिक अलगान और व्यंग का सुंदर मिश्रण

प्रस्तुत करता है। उनके निबंधों की रचना प्रक्रिया कविता की रचना प्रक्रिया की तरह एक आत्मगत मूड से जन्म लेती हैं। भाषा भी उनकी संस्कृत निष्ठ एवं बिंबों वाली है।

प्रस्तुत निबंध में हिमालय का सौन्दर्य वर्णन तो है ही, उसके सांस्कृतिक महत्त्व का गौरवगान अधिक है। हिमालय से जुड़े पौराणिक आख्यान, शिव-पार्वती, विष्णु जैसे चरित्र और भारतीय संस्कृति एवं दर्शन सबकुछ यहाँ सिमट आया है। मिश्र जी लिखते हैं कि हिमालय का चरित्र उदात्त एवं उदार रहा है, इसी लिए उसने अंध:कार को भी शरण दी है। और शायद इसी लिए किरातों ने इस उदारता को दुर्बलता मानकर उसपर आक्रमण किया है। लेखक को इसका क्षोभ है और वे इस पराजय की ग्लानि को धोना चाहते हैं।

११आ.२ गद्य रचना के प्रमुख विचार विन्दु

११आ.२.१ भारत के भूगोल के अलावा हिमालय भारत की देवतुल्य आत्मा का प्रतीक पर्वत है।

मिश्र जी मानते हैं कि हिमालय भारत की भौगोलिक सीमाओं का प्रहरी, और उन्नत पहचान का मूर्त रूप तो है ही, कुछ और भी है। कालिदास ने उसे पृथ्वी का मानदंड कहा था, पर हिमालय भारत की पवित्रता और उदात्तता का, उच्च आदर्शो का प्रतीक है। उसकी आत्मा में देवताओं की आत्मा बसती है- इसलिए वह देवात्मा है।

११आ.२.२ वसुंधरा का पुत्र हिमालय

हिमालय को लेकर पुराणों में एक कथा आती है जिसका मूल स्वर यह है कि यह पर्वत वसुंधरा पृथ्वी का प्रिय पुत्र है। जब एक बार पृथ्वी की उर्वरता समाप्त सी हो गई- प्रजा इस बंजर पृथ्वी से पीड़ित होने लगी तो राजा पृथु ने पृथ्वी से प्रार्थना की। पृथ्वी ने कहा कि मैने अपनी हरीतिमा, अपने रत्न एवं औषधियाँ अपने भीतर छिपा ली हैं- जब तक किसीपर मेरा वात्सल्य नहीं उमड़ता, मेरी निधियाँ बाहर नहीं आएँगी। तब पृथु ने पर्वतों में सबसे युवा पर्वत हिमालय को बछड़े के रूप में पृथ्वी के सामने रखा और गो के रूप में पृथ्वी ने अपना पूरा रस, रत्न और वनस्पतियाँ लुटा दीं।

११आ.२.३ गंगा जैसी पवित्र नदियों का स्त्रोत हिमालय

मिश्र जी मानते हैं हिमालय का महत्व उसकी ऊँचाई के कारण या सौन्दर्य के कारण ही नहीं बल्कि इस कारण है कि उसके हृदय से गंगा जैसी नदियाँ बहीं हैं-जिन्होंने एक पूरे देश, एक भूमाग, एक संस्कृति को सींचा है।

११आ.२.४ हिमालय का आपादमस्तक संम्पूर्ण व्यक्तित्व

विष्णु ने भी हिमालय को पवित्र कर्म यानी यज्ञ का साधन कहा है। फिर मिश्र जी हिमालय के ऊँचे शिखरों से उसके चरणों तक का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि हिमालय स्वयं में पृथ्वी का गौरव मय मुकुट है। अपने उँचे शिखरों में उसका ऊँचा मस्तक दिखता है जिसपर सूर्य की आभा चमका करती है। उसके हृदय में एक ओर प्रेम का रस है, तो वैराग्य के राग भी

गूंजा करते हैं। बाहें उसकी नदियों के जलकणों से लदी वायु से सिहरा करती हैं। उसकी गहरी नाभि है मानसरोवर झील-जहाँ दूर दूर से हंस आकर तिरते हैं। कलकल बहते झरनों की ध्वनि मानों हिमालय का कटिभूषण है। पैरों में जो हरे तपोवन हैं वहाँ मृगों क सुरम्य वास है। देवताओं के अलावा शंकर का कैलास भी यहीं हैं और गंधर्व-किन्नरों जैसे अपदेवता का निवास भी। सिद्ध हों या साधक सभी को हिमालय की प्राकृतिक शोभा रास आती है। मिश्र जी मानते हैं कि हिमालय सबकी अंतिम शरणस्थली है। और तो और अंधेरे को भी शरण हिमालय में ही मिलती है। लेकिन हिमालय में जो स्वर्ण कमल खिलते हैं- उन्हें वही तोड़ सकता है जिसके पास ऊँचे आदर्श हों।

११आ.२.५ जगत की माँ पार्वती के पिता-हिमालय

मिथक-कथाओं के अनुसार देवी पार्वती हिमवान अर्थात् हिमालय की बेटी है। देवी अगर सबकी माँ है तो हिमालय, उनके पिता का दर्ज़ा और भी ऊँचा हो उठता है। यह पार्वती तपस्वी शिवकी शक्ति हैं। पार्वती और शिव के संयोग से वीर कार्तिक के रूप में अगर असुर संहारक वीरता का जन्म होता है तो समस्त कलाओं और विद्याओं का भी। इस तरह यह पर्वत भारतीय संस्कृति जो अखंड ज़ीवन में विश्वास रखती है का प्रतीक बन जाता है। मिश्र जी मानते हैं कि भारतीय संस्कृति, में निषेध नहीं बल्कि सब कुछ का समाहार है। हिमालय को याद करना भारत की इस समग्र दृष्टि को याद रखना है। अगर समुद्र में गंभीरता और गहनताका गुण माना गया है तो धैर्य के लिए सदा हिमालय की उपमा दी गई है।

११आ.२.६ भारत की भक्तिभावपूर्ण भिन्न जीवन दृष्टि को दुर्बलता समझने की भूल

भारत ने अपनी वीरता का दिखावा कभी नहीं किया, न ही वह दूसरों की भूमि का भूखा रहा है। उसमें दूसरों को पराजित करने का लोभ एवं लालसा उत्पन्न ही नहीं हुई- क्योंकि भारत सदा सह अस्तित्व एवं विश्व-मैत्री में विश्वास करता रहा है। दूसरों को कभी पराजित किया भी हो तो उनका नाश कभी न किया है। उसकी जीवन-दृष्टि शांति और धैर्य के धागों से बुनी गई है। लेकिन ज़रूरत पड़े और मौका आए तो भारत अपनी वीरता और पराक्रम का परिचय भी देता आया है। इसलिए उसकी शांति को अक्सर बाहरवालों ने गलत समझा है। जब मिश्र जी कहते हैं कि 'हिमालय में अन्धकार ने डेरा डाला है, उसकी उज्ज्वलता पर रक्त की धाराएँ उभरी हैं . . . . . ' तो वे चीन के हिमालय पर आक्रमण का संकेत कर रहे हैं। किरातों की हिंसा का अर्थ है चीनियों की हिंसा जिन्होंने पागल हाथी की तरह हिमालय की शांति को तहस-तहस कर डाला है। हिमालय तो आज भी अजेय है, विराट है, नदियों, मणियों, औषधियों से भरपूर है-पर हम भारतवासी उसके योग्य नहीं हो पा रहे हैं। जिन आदर्शों का वह प्रतीक रहा है, उन्हें जीवन में फिर से उतार कर हम अपनी पराजय को जय में बदल सकते हैं।

११आ.३ शिल्प एवं शैली

ललित निबंध का उन्मुक्त शिल्प है जिसमें विचार बिना रोक टोक के गतिमान होते हैं। मिथक कथाओं, रूपको, उपमानों और बिंबों से हर बात सीधी न रहकर कुछ बंकिम ढंग से व्यक्त हो रही है। मिश्र जी पुराणों की प्रतीकात्मक व्याख्या करते जाते हैं। संस्कृतनिष्ठ भाषा एवं

व्यंजनाप्रधान शैली का उपयोग करते हैं- जिससे थोड़ी दुरूहता तो आती है पर उनके पीछे छिपे भाव समझ लिए जाएँ तो अर्थ प्रकाशित भी हो जाते हैं।

११आ.४ मूल्यांकन

हिमालय की शोभा से ज़्यादा उसके प्रतीकत्व पर ज़ोर है। उन मानवीय मूल्यों पर जो भारत के दर्शन का आधार रहे हैं। अंत में जाकर लेखक ने हिमालय पर चीन के आक्रमण से विचार की लय को तोड़ा है- और हिमालय के गौरव के प्रति भारतीयों को जाग्रत करना चाहा है।

११आ.५ अभ्यास

१) संदर्भ सहित व्याख्या विषयक प्रश्न :

जैसे - १. हिमालय या बड़प्पन———— लुटा रहा है। (पृष्ठ-१०३-१०४)
२. भारतीय संस्कृति अखंड————हुई दृष्टि है। (पृष्ठ-१०५)
३. इस भक्तिविगलित भाव ———— पराजित करने में नहीं।(पृष्ठ-१०५)

२) निबंधात्मक प्रश्न

जैसे- १. हिमालय भारतीय संस्कृति का प्रतीक किस तरह है, लिखिए।
२. हिमालय की सुषमा का वर्णन करते हुए उसकी आत्मा को विद्यानिवास मिश्र ने कैसे उभारा है ?
३. हिमालय की महिमा के वर्णन के साथ साथ चीन युद्ध के बारे में भी अपने विचार लिखिए।

३) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

जैसे १. हिमालय किस का प्रिय वत्स है ?
२. गो रूपी पृथ्वी ने किसे बछड़े के रूप में अपनी ममता दी ?
३. हिमालय का बड़पन किस से सिद्ध होता है ?
४. हिमालय की बेटी कौन है ?
५. हिमालय का संबंध किस देवता से है ?
६. यक्ष एवं गंधर्व कहाँ बसते हैं ?
(आदि. . . . .)

❖❖❖❖

सेवा सदन - प्रेमचंद

लेखिका - डॉ. शशि मिश्रा

१२

सेवासदन - प्रेमचंद

इकाई की रुपरेखा

१२.० लेखक परिचय
१२.१ प्रस्तावना
१२.२ उद्देश्य
१२.३ कथानक

१२.० लेखक परिचय :

मुंशी प्रेमचंद के बचपन का असली नाम धनपतराय था। उनका जन्म ३१ जुलाई १८८० में बनारस के समीप लमही नामक गांव में हुआ था। उनके चाचा उन्हें स्नेहवश नवाबराय कहा करते थे। प्रेमचंद ने अपनी आरंभिक रचनाएं नवाबराय के नाम से ही लिखी थी।

मुंशी प्रेमचंद का बचपन कठिनाई में बीता बचपन था। आठ वर्ष के मासूम उम्र में प्रेमचंद की माता का निधन हो गया। पिता ने दूसरी शादी कर ली। विमाता का व्यवहार उनके प्रति कठोर था।

सन् १८९५ में, पंद्रह वर्ष की उम्र में उनका विवाह हुआ। सन १८९६ में सर से पिता का साया उठ गया। विधवा विमाता और पत्नी के बीच आये दिन कलह हुआ करते थे। पिता की मृत्यु के बाद परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी प्रेमचंद के कधों पर आ पड़ी। इन परेशानियों में वे अपनी शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दे सके। पाँच रुपयों का मासिक ट्यूशन करते हुए स्व-विकास के साथ-साथ उन्होंने पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी निभायी। शिक्षक प्रशिक्षण में प्रेमचंद प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और उनकी नियुक्ति स्कूल के हेड़मास्टर के रुप में हो गयी। तब से लगातार विकास और पदोन्नति की दिशा में अग्रसर रहे। प्रगतिशील विचारों के पक्षधर प्रेमचंद ने बाल-विधवा शिवरानी देवी के साथ दूसरा विवाह किया।

पहनावे और रहन-सहन में वे सामान्य लोगों के समीप थे। उनकी सादगी और सरलता को देखकर लोग विश्वास नहीं कर पाते थे कि ये ही महान उपन्यासकार प्रेमचंद हैं। प्रेमचंद उन्मुक्त हास्य के धनी थे। स्त्रियों, दीन-दुखियों, दलितों के प्रति उनके मन में अपार संवेदना थी। उनकी तीन सौं कहानियाँ तथा तेरह उपन्यास, अंतिम अधूरा उपन्यास इन्हीं मानवीय संवेदना एवं करुणा के उदाहरण हैं।

प्रेमचंद वास्तव में अपने समय के क्रांतिकारी शिल्पी थे। वे पहले साहित्यकार हैं जिन्होंने सामान्य व्यक्ति को प्रतिष्ठित किया। गरीब-संघर्ष मय किसानों, मजदूरों, उपेक्षित, प्रताड़ित स्त्रियों को अपने कथा-साहित्य का हिस्सा बनाया। प्रेमचन्द सच्चे अर्थ में अपने पुत्र के "कलम के सिपाही" थे। परिस्थितियों की कठोरता को स्वभाव की कोमलता से संवारा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सत्याग्रह – सिध्दांत के वे आजीवन प्रशंसक रहे। अपनी रचनाओं में त्रासद यथार्थ को वे लगातार आदर्श की ओर ले गये, उनके इस विचारधारा के मूल में महात्मा गांधी के आदर्श विचार ही थे। प्रेमचंद के पात्र सामाजिक सच्चाई से उभरे पात्र हैं। उन्होंने पहले समाज को देखा, उसकी रुढियों, कुरीतियों, सकीर्णताओं, आडम्बर को देखा, उन्हें समझा और इन कुरीतियों, रुढियों और पाखंड के शिकार पात्रों को अपनी करुणा एवं संवेदना दी। सेवासदन उपन्यास की सुमन ऐसी ही पात्र है। जिसको हम उपेक्षणीय मानते हैं, पतित कहते हैं ऐसे पात्रों को उन्होंने गौरव देने का काम किया। समाज के सभी उपेक्षित, प्रताड़ित पात्रों के हमदर्द साथी की भूमिका निभायी। उन्हे उबारने का प्रयत्न किया। आततायियों से क्षमायाचना करवायी। ऐसा लगता है कि समाज के सभी उपेक्षितों के वे साथी है, द्रष्टा है और मानो उनके मर्म को सहला रहे हो, उनके घाव पर सहानुभूति का लेप लगा रहे हो। फिर चाहे वह परिस्थिति की मारी सुमन हो अथवा धीर-गंभीर स्वभाव की स्वामिनी शांता। प्रेमचंद देख रहे थे कि मनुष्य अपनी ही धारणाओं, कर्मो का शिकार है, दु:खी है, मनुष्य ने मनुष्य को पीड़ित कर रखा है; पर –पीड़ा के इस अवगुण को मानवीय स्नेह, आस्था और दुलार की जरुरत है। अत: उनकी रचनाएं इन मानवीय गुणों आवश्यकताओं की वकालत करती है। उनकी रचनाओं का कथ्य अपेक्षित बदलाव एवं सुधार की भावना से ओतप्रोत कथ्य है। अपने लेखन से प्रेमचंद ने अपने समय और समाज के मानस को बदला है।

प्रेमचंद की रचनाओं में एक खुलापन है जो पाठक को गहरे में प्रभावित करता है। गहरी इंसानी हमदर्दी, जन-जीवन के विशाल प्रांगण में बने रहने की उत्कट कामना का प्रतीक है उनका सेवासदन उपन्यास उनके लेखन ने साहित्य जगत में आदर्शोन्मुख यथार्थ की नींव रखी जो आज भी अपने संप्रेषण में प्रांसगिक है। सार्वकालिक है। प्रेमचंद हिंदुस्तानी कौम की भीतरी एकता कायम करने वाली एक जबरदस्त ताकत थे।

सेवासदन में जीवन और समाज के गंभीर और कटु सत्य को दिखाकर प्रेमचन्द अपेक्षित आदर्श का संकेत प्रस्तुत करते है। प्रेमचन्द समाज की उस स्थिति का वर्णन करते हैं जिसमें दारोगा कृष्णचंद्र को अपनी ईमानदारी पर पछताना पड़ता है। सुमन को पथभ्रष्ट होना पड़ता है या फिर शांता का जीवन संघर्षमय होता है। वकील पद्मसिंह न चाहते हुए भी अनजाने में, सामाजिक दबाव में सुमन के पतन का कारण बनते हैं। महन्त रामदास जैसे लोग धर्म की आड़ में बांके बिहारी के नाम पर ठगी करते; धर्म को धूर्तो का अड्डा बनाते है

१२.१ प्रस्तावना :

सेवासदन हिंदी के उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद का पहला महत्त्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। सन १९१६ में लिखा गया। यह उपन्यास तत्कालीन समाज के बहुआयामी समस्याओं को अपना विषय बनाता है। समाज कैसा हो ? मानव-व्यवहार कैसा हो जैसे सवाल इस उपन्यास के सवाल हैं। राष्ट्रपिता गांधीजी के आदर्शों का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने आर्थिक

बदहाली के बावाजूद बीस सालों की नौकरी छोड़ दी। महात्मा गांधी के प्रति उनका यह दृष्टिकोण जीवनपर्यंत बना रहा । वे उनके निष्ठावान भक्त और अनुयायी बने रहे।

साहित्य के सहितस्य-भावने प्रेमचंद को मानव जीवन से संलग्न बनाये रखा। उनके लिए साहित्य जीवन को अधिक जीने-योग्य बनाने का एक ज़रिया था। वे आम लोगों के जीवन स्तर को उठाना चाहते थे। अपने इसी मकसद और सोच को स्थापित करने के लिए प्रेमचंद ने कलम अपने हाथों में पकड़ी। वे ''कलम के सिपाही'' बने। एक सिपाही की तरह वे अपने समाज की समस्याओं को समझना चाहते थे, उनसे जूझना चाहते थे। मानवीय समस्याओं का खात्मा उनका उद्देश्य था। इसी से अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों की किस्सागोई से आगे बढ़ कर वे अपने उपन्यास को ''मानव चरित्र के चित्र'' का रूप देते हैं। साहित्य को साधारण जन की समस्याओं से जोड़ते हैं।

१२.२ उद्देश्य :

सेवासदन उपन्यास में स्त्री-समस्या उसकी मुक्ति, कामना, बेमेल, विवाह, वेश्या-समस्या उसके मुख्य विषय हैं। ''सेवासदन'' में प्रेमचंद इन्हीं समस्याओं के कारणों की पड़ताल करते हैं उनके विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करते हुए सेवासदन के निर्माण का आदर्श प्रस्तुत करते है। यह स्त्री-समस्याओं, उसके आत्म-सम्मान एवं स्वाभिमान का सेवासदन है। यहां समाज की उपेक्षित स्त्रियां स्वयं का जीवन जीने लायक बनाती है; समाज को उसके पाखंड और दो मुँहेपन से अवगत कराती है। इस उपन्यास की मूल धारा सामाजिक असंगति की कथाधारा है। इसमें ब्रिटिश पुलिस के अत्याचारों का वर्णन है, साथ ही छद्म समाज सेवियों के छद्म की भी कथा है। समस्या का एक पक्ष सामाजिक है और दूसरा धार्मिक। ये सभी पक्ष अंतर्कथाओं के रूप में हैं। तत्कालीन समाज का आयना है यह उपन्यास। सेवासदन उपन्यास में यद्यपि दहेज की समस्या, समाज की झूठी नैतिकता या पांखड जैसे प्रश्न है, परंतु प्रेमचन्द की मुख्य चिंता विधवाओं की स्थिति, विशेषत: वेश्या-समस्या तथा उसके सुधार-और आर्थिक स्वावलंबन का प्रश्न है। उपन्यास में क्वींस पार्क में आयोजित व्याख्यानमाला का प्रयोजन यही है। उपन्यास के मुख्य पात्र पद्मसिंह, विट्ठलदास, सुमन तथा म्युनिसिपैलिटी के अन्य सदस्यों के माध्यम से प्रेमचंद इन समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। सुमन और गजाधर की कथा उपन्यास की मार्मिकता को गंभीर दिशा देते हैं। उपन्यास के मुसलमान पात्र और उनकी कथा लेखक के सांप्रदायिक सौहार्द्र संबंधी चिंता को प्रस्तुत करते हैं। मानो वे समाज के तमाम गंभीर मुद्दों का हल ढूंढना चाहते है। सेवासदन की कथा सामाजिक सच की कथा है। वास्तविक संसार के समानांतर प्रेमचन्द का रचना-संसार चलता रहता है। प्रेमचंद की लड़ाई एक ही स्तर पर अनेक चीजों से थी। प्रेमचंद ने अपने समय के पीड़ित मनुष्य को सुधारवादी, धर्म-संबंधी पक्षो या परिप्रेक्ष्यों में देखते हुए धार्मिक, सामाजिक कदमों को उधाड़ा है। एक रचनाकार की हैसियत से प्रेमचन्द ने अपने समय के खोखलेपन की पूरी तरह चित्रित किया और उनका डटकर विरोध किया। विधवा-समस्या, अनमेल विवाह जैसे सामाजिक प्रसंगो के साथ प्रेमचंद हमारी धर्म-संस्कृति के उन सभी हिस्सों की चर्चा करते हैं जो धीरे-धीरे जन-जीवन को रुढिबध्द समाज में बाँटता है। मध्यवर्ग की अनेक भंगिमाओं का चित्रण 'सेवासदन' में मिलता है। शहरी परिवेश में मध्यवर्ग की समस्याओं के साथ पुलिस विभाग के भ्रष्ट चक्रव्युह, नौकरशाही का विवरण अपने समय की सच्चाई का सटीक नमूना है। अपने समय की सच्चाई की पहचान है। सच्चाई की यह

पहचान पूर्ण मानवीय पहचान है। प्रेमचंद की रचनाएं अपने समय के यथार्थ परिप्रेक्ष्य और धारणाओं के विवरण की रचनाएं है। प्रेमचन्द की रचना-दृष्टि तमाम सामाजिक धार्मिक भ्रम के निवारण की दृष्टि है। 'सेवासदन' प्रेमचंद की इसी रचना-दृष्टि की शुरुआत है।

१२.३ सेवासदन उपन्यास का कथानक :

'सेवासदन' उपन्यास मूल रूप से नारी-समस्या पर लिखा गया सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने दहेज-समस्या, स्त्री की पराधीनत। उसकी मुक्ति-कामना, अशिक्षा और इन सब संदर्भो में ''सामाजिक-असंगति'' को विषय बनाया है। अनमेल-विवाह, धन और धर्म की मिली भगत, सामंती प्रथा अमीर-गरीब के बीच की खाई, अंग्रेजी शिक्षा के रास्ते घुसी अपसंस्कृति आदि कथा के माध्यम से प्रेमचन्द समाज की समस्त बुराई को मानो खोल कर रख देना चाहते हैं। सेवासदन का पहला ही वाक्य इस उपन्यास के मर्म को प्रकट करता है-

''पश्चाताप के कड़वे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं; लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं, दारोगा कृष्णचंद्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे।''

समाज के तमाम कड़वे सच, जिसमें विवाह सौदे का, लेन-देन का दूसरा नाम है। जिसे लोग शिष्टता, विवशता एवं व्यावहारिकता के आवरण में ढंक कर करते हैं इस उपन्यास के विषय हैं। दारोगा कृष्णचंद्र नए विचारों के पिता हैं। वे बाल-विवाह के खिलाफ हैं। अपनी बेटियों को शिक्षित कर उनके लिए शिक्षित वर की ख्वाहिश रखते हैं। उन्हें भ्रम था कि शिक्षित परिवारों में दहेज की सौदे-बाजी की चर्चा न होगी। बड़ी बेटी सुमन की शादी के लिए योग्य वर की तलाश में निकलने पर उनका यह भ्रम टूट जाता है। उन्हें यह देखकर आश्चर्य होता है कि विवाह संस्था को लोगों ने एक बाजार बना रखा है। इस बाजार में लड़के की कीमत उसकी शिक्षा के आधार पर है। इस सच का अनुभव उन्हें पश्चाताप से भरता है, अपने आदर्शों और सिद्धांतों के प्रति क्षुब्ध करता है। वे सोचते हैं-

''यदि मैं पाप से न डरता तो आज मुझे ये ठोकरें न खानी पड़ती। --- यदि आज मैंने लोगों को लूटकर अपना घर भर लिया होता, तो लोग मुझसे संबंध करना, अपना सौभाग्य समझते।''

समाज के तथाकथित सम्य, 'शिक्षित' लोगों के छद्म और पाखंड को प्रेमचन्द बड़ी ही मार्मिकता के साथ व्यक्त करते हैं। ऊपर-ऊपर दहेज प्रथा की बुराई बताने वाले ही उसे कायम रखने का औचित्य ढूंढ़ लेते हैं। शिक्षा की आड़ में वे धूर्त और लफ्फाज हो रहे हैं। नौजवान, पिता की आज्ञा कारिता का आश्रय लेते हैं तो पिता अपने अभावों, बेटे की शिक्षा-दीक्षा में खर्च हुए पैसों का । सुमन के विवाह-प्रसंग के बहाने प्रेमचंद उन तमाम शिक्षितों की हकीकत जाहिर करते हैं जो विवाह और सतीत्व को धर्म और धन से जोड़कर लेन-देन करते हैं। समाज के इस वीभत्स सच को जानने के बाद दारोगा कृष्णचंद्र में एक स्वाभाविक क्रूर प्रतिक्रिया जागती है। वे सोचते हैं-

''अब लोगों के खूब गले दबाऊँगा, खूब रिश्वते लूगाँ । यही अंतिम उपाय है।''

''सज्जन का दण्ड पाना अनिवार्य है'' को कलियुगी धारणा को प्रेमचंद दारोगा कृष्णचंद के जीवन में घटित करते हैं। नौसीखिए कृष्णचंद्र रिश्वत लेते पकड़े जाते हैं, उन्हें जेल होती है। बेटी सुमन का विवाह उसके मामा उमानाथ लाचार होकर एक गरीब, अधेड़, दुहाजू (जिसकी पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है) लड़के से कर देते हैं। दारोगा कृष्णचंद्र ने परिवार की सुख-सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान दिया था। ''घर वालों को आराम देना'' वे अपना कर्तव्य समझते थे। सुख-सुविधा की आदी सुमन को पति की किफायती जिंदगी रास नहीं आती। उसे सुंदर आभूषणों,उत्तम वस्त्रों एवं स्वादिष्ट भोजन की आदत थी। वह पति से यह सब चाहती थी।

घर के पड़ोस में भोली-वेश्या के मान-सम्मान एवं ठाट को देखकर सुमन की सामाजिक धारणायें बदल जाती हैं। वासना और दौलत की पूजा देखकर उसका हृदय परिवर्तन होता है। वकील पद्मसिंह की पत्नी सुभद्रा के स्नेहिल संपर्क से आकर्षित होकर वह पद्मसिंह के घर आना-जाना शुरू करती है। पति गजाधर उस पर शक करता है और घर से निकल जाने को कहता है। अपमानित सुमन, सुभद्रा के यहाँ शरण लेती है, किंतु पति के अफवाहों और विट्ठलदास के आरोपों से आहत-पद्मसिंह सुमन को अपने घर से निकालने को विवश होते हैं। सुमन वेश्या भोली के यहाँ शरण लेने को लाचार होती है। वहाँ वह पैसेवाले अमीरों का पाखंड देखती है। वह देखतीहै कि-

''भोली के सामने केवल धन ही सिर नहीं झुकाता, धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है। धर्मात्मा लोग भी उसका आदर करते हैं। धर्मधुर्तों का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एकसे एक मगरमच्छ पड़े हुए हैं। भोले भाले भक्तों को निगल जाना ही उनका काम है।''

वेश्या-समस्या पर प्रेमचन्द अपनी राय देते हुए कहते हैं- ''यह हमारी ही कुवासनाएं हैं, हमारें ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया। यह दालमण्डी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिबिम्ब, हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात् स्वरूप है। हमारे समाज के दुराचार अग्नी के समान हैं और यह अभागिनी रमणियाँ तृण के समान।''

भोली और सुमन दोनों के अनमेल विवाह की परिणति वेश्यावृत्ति में दिखाकर प्रेमचंद दहेज-प्रथा के घातक परिणाम पर प्रकाश डालते हैं।

वकील पद्मसिंह का भतीजा-सदन अपने चाचा के यहाँ रहने आता है। वह सुमन के कोठे पर पहुँचता है। सुमन को पता चलता है कि सदन पद्मसिंह का भतीजा है तो वह उसे प्रोत्सहन देना बंद कर देती है। सुमन को खुश करने के लिए सदन अपनी भाभी- सुभद्रा के कंगन उसे तोहफे मे देता है। सुमन कंगन पद्मसिंह को लौटा देती है।

इस बीच विट्ठलदास सुमन को वेश्यालय से निकालने का प्रयत्न करते हैं। उसे विधवाश्रम में रखना तय करते हैं। यह प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थ की कामना का प्रतिफलन है। यथार्थ की लाचारगियों, मजबूरियों को आदर्श परिणति देने की कामना का प्रतिफलन।

इस घटना क्रम में चार सालों का समय बीत चुका है। सुमन के पिता कृष्णचंद्र जेल से छूट आए हैं। किंतु अब वह संसार से उदास और अर्धविक्षिप्त से रहने लगे हैं। उनकी छोटी बेटी

शांता का विवाह उमानाथ ने सदन के साथ तय किया था। किंतु सुमन के अतीत, उसकी वेश्यावृति को जानने के बाद बारात दरवाजे से लौट जाती है।

सदन दुबारा बनारस आता है। वेश्या संबंधी भाषण सुनकर वह ग्लानी से भर जाता है और खुद को बदलने की कोशिश करता है। वह अपनी कुचेष्टाओं पर पछताता है। सुमन की सत्विक और मुरझाई आभा उसे सहज नहीं रहने देती।

इधर कृष्णचंद्र शांता के विवाह की असफलता से और भी विक्षुब्ध हो जाते हैं। और एक दिन आधी रात को घर छोड़ कर निकल पड़ते हैं। सहसा एक साधु से उनकी मुलाकात होती है। यह साधु सुमन का पति गजाधर था जो अब स्वामी गजानन्द्र के नाम से जान जाता है। सुमन के घर से निकल जाने के बाद गजाधर ग्लानिवश संन्यास धारण करता है। गजानन्द से सुमन की अधोगति की सही सही जानकारी मिलने के बाद कृष्णचंद्र को राहत तो मिलती है, लेकिन अपनी बेटीद्वारा उठाये गए गलत कदम को वे स्वीकार नहीं कर पाते और गंगा की बहती धार में अपने प्राण विसर्जन कर देते हैं।

वकील पद्मसिंह, सदन, गजाधर, विट्ठलदास आदि सभी पुरुष पात्रों के माध्यम से प्रेमचन्द एक ओर पुरूष के अन्यायी, कठोर चरित्र की बात रखते हैं तो दूसरी ओर इन सभी से भूल स्वीकार करवाकर, ग्लानि और पश्चाताप को दिखाकर वे मानवीय भूल सुधार का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। 'सेवासदन' की कथा को आदर्श की ओर मोड़ते हैं। पद्मसिंह वकालत छोड़कर समाज-सुधार का कार्य करने लगते हैं। सदन अपने अपराधों का प्रायश्चित करता है; शांता को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है। स्वावलंबी बनता है। गजाधर संन्यास लेकर वेश्याओं की अनाथ कन्याओं के लिए आश्रम में अपना सहयोग देते हैं।

मौका पा कर सुमन पद्मसिंह और विट्ठलदास को खरी-खोटी सुनाती है। अपने जीवन की त्रासदियों के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराती है। पद्मसिंह स्वयं को दोष मुक्त नहीं मान पाते। सुमन की पतन के लिए अपने क्रूर आचरण से क्षुब्ध होते हैं। सुमन विधवाश्रम में शिक्षिका का काम करने लगती है। बहन शांता के जीवन की त्रासदी के मूल में स्वयं को पाकर वह आत्मग्लानि से भर उठती है। शांता के विधवाश्रम आने की खबर सुनकर वह विचलित हो उठती है। और गंगा नदी में डूबकर प्राण देने का निश्चय करती है। सहसा उसकी भेंट गजाधर से होती है। गजाधर अपने अपराध की क्षमा माँगते हैं। गजाधर से अपने पिता की आत्महत्या की खबर से दुखी होकर वह पुनः आत्महत्या करना चाहती है लेकिन गजाधर के समझाने पर विधवाश्रम लौट आती है।

सदन अब सुधर चुका है। पद्मसिंह के समाज सुधार की गतिविधियाँ उसके भाषणों, लेखों से प्रभावित होता है। अपनी गलतियों को सुधारने का सामर्थ्य बटोरता है। आत्मनिर्भर होकर जीने के उपक्रम में नाव खरीद कर जीवन यापन करता हैं। शांता को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है। सुमन के संबंध में उसके संस्कार आड़े आते हैं। वह सुमन के साथ सहज नहीं हो पाता। शांता का भी व्यवहार पहले जैसा नहीं रह पाता। वह सदन के घर से निकल कर पुनः वेश्याओं की कन्याओं के लिए खोले गए आश्रम में शिक्षिका का काम करने लगती है।

सुमन के माध्यम से प्रेमचंद समाज के ज्वलंत मुद्दों को (अनमेल विवाह) उठाते हैं। दहेज-प्रथा अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, धार्मिक ढ़ोंग, चारित्रिक पतन, सदन के बहाने अमीर घराने के तरूणों के मनचलेपन जैसे सामाजिक समस्याओं के कारणों की जानकारी देते हुए प्राय: सभी व्यक्तियों एवं प्रवृत्तियों को आदर्श की ओर मोड़ते हैं। सेवा सदन का पूरा कथानक अथ से इति तक सुधारवाद और आदर्शवाद की कामना से दीप्त है।

दारोगा कृष्णचंद्र का जीवन वृत्तांत नेकी के पराजय का वृत्तांत है तो सुमन, पद्मसिंह, विट्ठलदास, सदन, गजाधर-सभी की जीवन-गाथा, भूल सुधार की संभावना और उज्ज्वल परिणाम की। इसी को समीक्षकों ने आदर्शोन्मुख यथार्थ कहा है। 'सेवासदन' उपन्यास समाज की तमाम ज्वलंत समस्याओं के निदान और उपचार को दर्शानेवाला उपन्यास है। दहेज प्रथा और वेश्यावृत्ति के मूल में अनमेल विवाह और गरीबी है अत: आर्थिक स्वावलंबन अनिवार्य है। वेश्या-वृत्ति नारी-जीवन का अभिशाप है। अत: प्रेमचन्द नहीं चाहते कि वेश्यालय आवासों के समीप हों। लेकिन वे यह भी जानते थे कि वेश्याओं को शहर-बहर करना, इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता। मुख्य प्रश्न वेश्याओं के सम्मानजनक जीवन-निर्वाह का है। इस मुद्दे पर प्रेमचन्द पद्मसिंह, विट्ठलदास, सुमन जैसे मुख्य पात्रों के बीच लम्बी चर्चा करवाते हैं। वेश्याओं की संतान के लालन-पालन के उद्देश्य से चलनेवाली संस्थाओं के प्रति समृद्ध लोगों से उदारता की गुहार करते हैं तो स्वयं वेश्याओं को अपनी बचत के पैसों को बच्चों की देख-रेख में लगाने का सुझाव भी देते हैं।

सेवासदन में नारी-समस्या के अतिरिक्त अन्य समस्याओं को भी लेखक ने उठाया है। पुलिस और जमींदार की मिली भगत को वे बूढ़े, स्वाभिमानी, गरीब चेतू-प्रसंग के माध्यम से व्यक्त करते हैं। जमींदार की बेरहमी से चेतू मरा और पुलिस ने रिश्वत लेकर कातिल जमींदार को अभय प्रदान किया। इस तरह लेखक ब्रिटिश पुलिस के अत्याचार और अनाचार की कहानी सामने लाते हैं। प्रेमचन्द ने अपने समय को अपने उपन्यास का विषय बनाया। 'सेवासदन' अपने समय का प्रतिबिंब है। यह अपने समाज-समय का ऐसा सत्य है कि समय की सीमा को तोड़ता हुआ कालजयी हो जाता है। दहेज की मजबूरी भोली और सुमन जैसी कन्याओं को वेश्यावृत्ति की ओर ढकेलता है।

इस उपन्यास में एक अन्य तथ्य यह भी है कि सुमन जैसी नवयुवतियाँ, चंचलवृत्ति तथा चटोरी प्रवृत्ति की है। संतोषी न होने एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति उदासीनता उनके गृहस्थ-जीवन को असफल बनाती है।

तीसरी प्रमुख समस्या रिश्वत खोरी की समस्या है। जिस व्यवस्था में ईमानदार लोगों का पेट ईमान की कमायी से नहीं भरता, सिद्धांतों का निर्वाह कठिन होता है वहाँ रिश्वतखोरी एक लाचारी है।

महन्त रामदास जैसे लोग धर्म की आड़ में बांके बिहारी के नाम पर ठगी करते हैं, लोगों से मनमाना सूद (ब्याज) और मालगुजारी वसूल करते हैं। गूंडे पालते हैं, चन्दा वसूल करते हैं। सरकारी कर्मचारियों को रिश्वत देकर अभयदान प्राप्त करते हैं, पुलिस द्वारा अत्याचार करवाते हैं। और यह सब कुछ राम-नाम की चादर ओढ़कर। प्रेमचंद को कहना पड़ता है कि आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा बना हुआ है। एक मुख्य समस्या वेश्याओं के संतान के लालन-पोषण की

भी है। प्रेमचन्द सुझाव देते हैं कि वेश्याओं के बच्चों को वेश्यालय के माहौल से दूर रखना चाहिए। धार्मिक एवं सामाजिक सुधारकों को उनकी शिक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इस तरह 'सेवासदन' में प्रेमचन्द्र मूलरूप से वेश्या-समस्या को अपना कथ्य बनाते हैं। इसे एक सामाजिक कुरीति के रूप में देखते हुए उसके मूल में निहित आर्थिक कारण की पड़ताल करते हैं। वेश्या-वृत्ति को कम करने, रोकने के तमाम मुद्दों पर प्रेमचंद विचार करते हैं और वेश्याओं के जीवन-निर्वाह की समस्या पर उपन्यास का प्रत्येक पात्र विमर्श करते दिखता है- पद्मसिंह, विट्ठलदास, सुमन म्युनिसिपैलिटी के सदस्य इस विषय पर मंथन करते हैं, समस्या की गहराई में जाते है।

१३

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ सेवासदन की मूल समस्या पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : सेवासदन की मूल समस्या वेश्या-वृत्ति के कारणों तथा उसके सुधार के उपायों पर प्रकाश डालना है। मुख्य कारण दहेज-प्रथा है; जिसे पूरा न कर पाने पर दारोगा कृष्णचंद्र अपनी शिक्षित बेटी सुमन के लिए सुयोग्य वर नहीं तलाश पाते। मजबूरन रिश्वत लेते हैं और जेल जाना पड़ता है। सुमन के मामा उमाकांत लाचार होकर सुमन का विवाह एक अधेड़ उम्र के विधुर (दुहाजू व्यक्ति- गजाधर बाबू) से कर देते हैं। यह अनमेल विवाह सुमन के जीवन का अभिशाप साबित होता है। उसकी सहज, निश्छल, सामाजिक, मानवीय व्यवहार पर पति शक करने लगते हैं। अनादर करते हैं और घर से निकल जाने को विवश करते हैं। पड़ोस की भोली वेश्या का जीवन यथार्थ उसकी धारणाओं को बदल देता है। वह देखती है कि सिद्धांत के रूप में घृणित, मानी जाने वाली स्त्रियों को सामाजिक ही नहीं अपितु धार्मिक, आर्थिक क्षेत्र में भी महत्त्व दिया जाता है और उस जैसी शील और चरित्र को महत्त्व देनेवाली स्त्रियां कदम-कदम पर अपमानित की जाती हैं। सुमन के माध्यम से प्रेमचंद छद्म-सामाजिकों, उनके घृणित आचरण का खुलासा करते हैं। इस उपन्यास में अनमेल विवाह की परिणति वेश्या-वृत्ति में दिखाकर प्रेमचंद एक ओर सामाजिक विडंबना का एहसास कराते हैं तो दूसरी ओर स्त्रियों के साथ हुए सामाजिक अन्याय का । सामाजिक मुद्दों के साथ साथ प्रेमचंद ने इस उपन्यास में धार्मिक-दुराचारों, पुलिस के भ्रष्टाचार, धन और धर्म की मिली भगत को अंतर्कथाओं के रूप में गूँथा है। उपन्यास की मूल समस्या नारी की समसामायिक स्थिति ही है। पतिद्वारा अपमानित होने पर सुमन के पैर घर से बाहर की ओर उठते हैं। परिणाम स्वरूप उसके जीवन के घृणित मोड़ को प्रस्तुत कर प्रेमचंद पारिवारिक महत्त्व, पारिवारिक अवधारणा एवं अस्तित्व का औचित्य रेखांकित करते हैं तो दूसरी ओर स्त्री के मन की मुक्ति-कामना । सुमन के माध्यम से प्रेमचंद मानो स्त्रियों को स्वयं की समस्याओं से लड़ने का बल दे रहे हों। वेश्या समस्या के मूल में प्रेमचंद पूँजीवादी विलास की मनोवृत्ति को देखते और दिखाते हैं। धर्म के नाम पर चलनेवाले अनाथालयों का अंतर्जगत, पाखंड, दलाली सभी समस्याएँ यहाँ एक-दूसरे से जुड़ी हैं। पहले पति का घर छोड़कर परिचित सुभद्रा के घर जाना, सामाजिक कुशंकाओं के चलते वकील पद्मसिंह जैसे शिक्षित पुरुष की कायरता को दिखाना, भोली की सामाजिक प्रतिष्ठा से प्रेरित और प्रभावित होकर वेश्या होना और फिर उस जीवन से निकल आना- उस युग का वह क्रांतिकारी कदम है जिसे प्रेमचंद आदर्शोन्मुख यथार्थ से जोड़ते हैं। मानो मुक्ति की पक्षधरता करते करते स्वच्छंदता के दुष्परिणामों को याद दिलाना चाहते हैं। दोनों के बीच की पतली रेखा की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। भुल-सुधार की मानवीय आकांक्षा की पक्षधरता करते हैं।

सेवासदन उपन्यास में प्रेमचंद कई मोर्चों पर लड़ रहे थे। प्रेमचंद की संप्रृक्ति अपने समय और समाज से है। जीवन के चारों तरफ पसरे अंधकार के बीच से ही वे प्रकाश की खोज

करते हैं। घटनावली का निर्माण और उसके अंतिम अंजाम दिखाने में वे आदर्श को महत्त्व देते हैं। सुमन के चरित्र का सुधार, सदन की सदबुद्धि, गजाधर के पश्चाताप प्रसंग प्रेमचंद के इसी आदर्शोन्मुखता के प्रतीक हैं। सुमन के जीवन की त्रासद परिणति की जिम्मेदारी उसका पति-गजाधर अपने पर लेता है। वह कहता है- "इसका कारण मेरा अन्याय था । वह सब मेरी निर्दयता और अमानुषीय व्यवहार का फल है। वह सर्वगुण सम्पन्न थी, वह इस योग्य थी कि किसी बड़े घर की स्वामिनी बनती। मुझ जैसा दुष्ट, दुरात्मा मनुष्य उसके योग्य न था। एक दिन रात को सहेली के घर पर केवल जरा विलम्ब हो जाने के कारण मैंने उसे घर से निकाल दिया।"

प्रेमचंद सेवासदन में समाज के कलुष को एक-एक कर खोलते है। लड़कियों की इच्छा-अनिच्छा, योग्यता को देखे बिना किसी भी उपलब्ध पात्र-कुपात्र को सौंप देने की सामाजिक विडंबना को प्रेमचंद सुमन की मां गंगाजली के मुख से कहलवाते है। वह अपनी बेटी को कुएँ में डालने की विवशता पर रोती है- यह विवशता इस उपन्यास की वास्तविक समस्या है।

सुमन और भोली दोनों इस समस्या की शिकार हैं। प्रेमचन्द नारी के समाज की समस्या को तीखेपन के साथ पाठकों के सामने लाते हैं। सुमन विट्ठलदास से कहती है- "जितना आदर मेरा अब (वेश्या बनने के बाद) हो रहा है उसका शतांशभी तब नहीं होता था।"

वकील पद्मसिंह पर व्यंग्य करते हुए सुमन कहती है - "अपने घर से निकाल कर आपने मुझ पर बड़ी कृपा की मेरा जीवन सुधार दिया ।"

सेवासदन की अन्य समस्याएँ है- पुलिस का भ्रष्टतंत्र, उनका दमन चक्र, धार्मिक नेताओं, समाजसुधारकों का पाखंड - "अंधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं।"

प्रेमचंद वास्तव में नारी को मनुष्य का दर्जा देना चाहते थे। वह नारी की मूल कथा उसकी समूची पृष्ठभूमि के साथ पाठक के सामने रखते हैं।

प्रश्न २ 'सेवासदन' उपन्यास के नामकरण अथवा शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

किसी कृति का नामकरण करते समय अथवा उसका शीर्षक तय करते समय लेखक को अपने कथा को याद रखना होता है। अपनी कृति का उद्देश्य ध्यान में रखकर एक ऐसा नाम जो कृति के कथ्य एवं उसके संदेश को व्यंजित कर सके। इस दृष्टि से देखने पर 'सेवासदन' शीर्षक एक मार्मिक एवं सार्थक शीर्षक साबित होता है। इस उपन्यास का मुख्य विषय वेश्यावृत्ति कारणों की पड़ताल कर उसका समाधान प्रस्तुत करना है। जिन परिस्थितियों में सुमन को घर छोड़ना पड़ा और वेश्यालय में शरण लेने को वह विवश हुई; उसके कारण जितने गंभीर और सामाजिक हैं; प्रेमचंद इस समस्या का समाधान भी उसी सिद्दत के साथ करना चाहते हैं। प्रेमचंद इस पक्ष में नहीं कि सामाजिक बस्ती के बीच वेश्यालय हो और न ही वे किसी सार्वजनिक स्थान पर वेश्याओं की उपस्थिति चाहते हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था के लिए कतिपय सुझाव देते हैं- पहला यह कि शहर के सम्पन्न लोग उदारता के साथ सुधार संस्थाओं को दान दें। प्रेमचंद का दूसरा सुझाव यह है कि स्वयं वेश्याओं को अपने एकत्रित धन का उपयोग बच्चों की

शिक्षा-दीक्षा पर करना चाहिए। विधवाओं के लिए आश्रम-व्यवस्था ये सभी मुद्दे सामाजिक सुधार एवं सेवाभाव के मुद्दे हैं। पहले सुमन और फिर उसकी बहन शांता, दोनों ही को विधवा आश्रम में आश्रय दिलाकर प्रेमचंद सेवासदनों की पक्षधरता व्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से यह शीर्षक अत्यंत सटीक, सारगर्भित, सांकेतिक एवं सार्थक शीर्षक हैं। सेवासदन एक समस्या–प्रधान उपन्यास है । इसमें सामाजिक भ्रष्टाचार, धार्मिक, पाखंड, छल-छदम के साथ-साथ पुलिस तंत्र के भ्रष्ट संगठन की चर्चा करते हुए प्रेमचन्द इन्हें समाप्त करने के सुझाव प्रस्तुत करते हैं। सेवा संस्थानों की उपयोगिता दीखाते हुए वेश्याओं, विधवाओं, विधवा-संतान, तिरस्कृता स्त्रियों के संरक्षण को महत्त्व देते हैं। जाहिर है कि इन, कामों को अंजाम देने के लिए सेवासदनों की आवश्यकता है। भटके हुओं को थामने और संभाल लेने की विकलता है प्रेमचंद के मन में। सुमन, भोली, शांता, गंगाजली तमाम स्त्री पात्रों के कष्टों को दूर करने का भाव; सेवा-भाव है। गजाधर, पद्मसिंह, विट्ठलदास, सदन जैसे पात्रों के सामाजिक भटकाव को भी प्रेमचंद सुधार भाव, प्रायश्चित-मार्ग की ओर मोड़ते हैं। सुमन के पतन की जिम्मेदारी गजाधर अपने ऊपर लेते हैं तो पद्मसिंह स्वयं को दोषी मानते हैं । ये दोनों ही सुमन से क्षमा-याचना करते हैं उसे सन्मार्ग पर लौट आने की विनती करते हैं और अतंतः सफल होते हैं। शांता के साथ ज्यादती करने के बाद सदन पश्चाताप से भर उठता है। सुमन द्वारा फटकारे जाने पर भूल स्वीकार करता है और शांता को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करता है। पद्मसिंह सामर्थ्य भर सदन को थामते हैं और उसके माता-पिता अपने ममत्व एवं वात्सल्य भाव से सदन एवं शांता का पारिवारिक जीवन खुशियों से भरते हैं।

इस तरह सेवासदन उपन्यास का प्रत्येक पात्र एवं प्रसंग मानवीय कमज़ोरियों एवं सुधार–संभावनाओं को अपने भीतर समेटे हुए सामाजिक-सेवा के लेखकीय उद्देश्य से प्रेरित एवं गुंफित है। प्रत्येक प्रसंग आपस में एक-दूसरे से जुड़कर, एक-दूसरे का संबल बन रहे हैं, एक दूसरे को थामते हुए सामाजिक उत्कर्ष की ओर अग्रसर होते हैं। यह एक उदात्त मानवीय पहल एवं सेवा है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक कारणों से भटके हुए लोगों के प्रति प्रेमचन्द के मन में सहानुभूति है। वे मनुष्य की मनुष्यता के पक्षधर हैं। उनकी मानवीय दृष्टि सामाजिक सरोकारों, नैतिक-मूल्यों, आदर्शों के प्रति सकारात्मक है। इन मूल्यों की रक्षा के लिए अनेकानेक संगठनों की आवश्यकता है। गजाधर, वकील पद्मसिंह, सदन एवं विट्ठलदास जैसे पुरुष पात्र अपनी-अपनी गलतियों का एहसास करने के बाद इन सेवा-संस्थाओं से जुड़ते हैं। स्वयं की मानवीय आस्थाएं बुलंद करते हैं। सुमन एवं शांता जैसी भटकी हुई, लाचार, प्रताड़ित स्त्रियों को इन संस्थाओं में आश्रय मिलता है।

इस तरह उपन्यास का प्रत्येक पात्र अंततोगत्वा सुधार की कामना एवं प्रयास में प्रयत्नरत होते हैं। मनुष्य और मानव-समाज के नैतिक-मूल्यों के संरक्षक के रूप में 'सेवासदन' की स्थापना करना, उसके महत्त्व को रेखांकित करना, मानो पूरे उपन्यास का उद्देश्य है। उपन्यास का प्रत्येक प्रसंग, प्रत्येक घटना प्रत्येक पात्र इसी दिशा की ओर बढ़ते हुए सेवासदन की अहमियत को सतत् बनाये हुए हैं। सेवासदन से जुड़कर पात्र संतुष्ट होते हुए अपने जीवन को सार्थक करते हैं। तमाम सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक पतन को नियंत्रित करने की उम्मीद है- सेवासदन । यही प्रेमचन्द का अमीष्ट भी। अतः 'सेवासदन' शीर्षक सर्वथा उचित, सटीक, सारगर्भित शीर्षक है। 'सेवासदन' उपन्यास का मंतव्य इस शब्द में निहित है। यह शब्द लेखकीय मंशा की व्यंजना समेटे हुए है अतः सवर्था सही शीर्षक अथवा नामकरण है। स्वामी गजानन्द के मुख से लेखक कहलवाते हैं - ''सत्ययुग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता में सत्य से,

द्वापर में भक्ति से, पर इस कलियुग में इसका केवल एक ही मार्ग है, और वह है सेवा।- - - - कलियुग में परमात्मा इसी दुःख सागर में वास करते हैं।'' सुमन अपने अपराध का प्रायश्चित वेश्या-कन्याओं के लिए निर्मित अनाथालय में करती है, शांता को भी इसी आश्रम में जगह मिलती है; इस तरह 'सेवासदन' शीर्षक सर्वथा उचित शीर्षक है।

प्रश्न ३ सेवासदन उपन्यास के उद्देश्य की चर्चा कीजिए।

''सेवासदन'' प्रेमचंद द्वारा रचित एक सामाजिक उपन्यास है। समाज के धर्माचार्यों, धनपतियों, सुधारकों के आडंबर, ढोंग,पाखंड, दंम, चरित्रहीनता, दहेज-प्रथा, बेमेल-विवाह, पुलिस की घूसखोरी, वेश्यागमन, मनुष्य के दोहरे चरित्र, सम्प्रदायिक द्वेष आदि समाज के अनेकानेक प्रसंगो की चर्चा करना तथा इन सबका समाधान खोजना इस उपन्यास का उद्देश्य है। इन सबसे कहीं अधिक गहन-गंभीर उद्देश्य है- नारी जाति की परवशता, निस्सहाय अवस्था, आर्थिक एवं शैक्षिक परतंत्रता। नारी-जीवन के विभिन्न पक्ष गंगाजली सुमन, सभद्रा, भोली एवं शांता के चरित्र में फलित होते हैं। गंगाज़ती एक व्यावहारिक, पारंपरिक मूल्यों को महत्त्व देनेवाली स्त्री है। बेटियों के प्रति उसका दृष्टिकोण समाज-सापेक्ष है। वह बेटियों का विवाह उचित उम्र में कर देने की पक्षधर है, स्त्री-शिक्षा के प्रति उसका कोई रूझान नहीं है।

सुमन अपने समय की शिक्षित, स्वाभिमानी और क्रांतिकारी नारी-पात्र है। पति द्वारा अपमानित किये जाने पर घर छोड़ देती है। वकील पद्मसिंह को सामाजिक दुविधा से बचाने के लिए सुभद्रा के यहां से भी निकल आती है। उसके जीवन के लिए एक मात्र पड़ाव रह जाता है- भोली का वेश्यालय। यहाँ वह किसी बदले की भावना से नहीं आती बल्कि अपने भरण-पोषण और निर्वाह के लिए आती है। वेश्यालय में उसे समाज के दूसरे पक्ष पुरुषों के दोहरे मानदंड धर्मचारियों के पाखंड की जानकारी मितली है और वह वहाँ से भी निकल आती है।

सुभद्रा एक सहज, स्वाभाविक नारी-पात्र है लाचार सुमन को आश्रय देना अपना धर्म समझती है, किंतु पति की इच्छाओं के सामने घुटने टेक देती है।

भोली अपने वैवाहिक जीवन से दुखी होकर, बेमेल जीवन-साथी को छोड़कर वेश्या-वृत्ति अपनाती है। समाज के जिम्मेदार पदाधिकारियों की भीतरी सच्चाई से प्राप्त दृष्टि से वह खुशहाल रहती है।

सदन की बारात दखाज़े से लौट जाने के बावजूद शांता स्वयं को सदन की पत्नी मानती है; अंततोगत्वा उसकी पत्नी और उसके बच्चे की माँ बनकर सुखी होती है।

इस तरह अलग-अलग नारी-चरित्र के भीतर समाज के अलग-अलग पक्ष को प्रस्तुत करते हुए प्रेमचंद स्त्री की पराधीनता के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं। आज के समय की आवाज बन चुकी – स्त्री – विमर्थ की नींव रखते हैं। स्त्रियों को उनके कर्तव्यों के साथ-साथ आधिकारों की चेतना देते हैं। स्वयं की लड़ाई जीने की प्रेरणा देते हैं। चूंकि पूरे उपन्यास में ये स्त्री प्राप्त पुरजोर अस्तित्व बनाये हुए हैं; सारी कथा इनके ईर्द-गिर्द गुंथी हुई है अतः नारी-पराधीनता को दूर करना प्रेमचंद की, इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य है।

नारी-पराधीनता की जड़ उसकी शिक्षा, उसकी आर्थिक-परावलंबन में है अत: प्रेमचंद इस मुख्य उद्देश्य से जुड़े तमाम मुद्दों की चर्चा करते हैं। प्रेमचंद उन सभी शक्तियों को यहाँ समग्रता में प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने सुमन को वेश्या बनने के लिए मजबूर किया, जिसके कारण भोली वेश्या बनी। प्रेमचंद ने विस्तार से दिखाया है कि इस समाज-व्यवस्था में संपत्ति के रक्षक सदाचार की आड़ में वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नहीं देते, वेश्याओं को जन्म भी देते हैं। अत: प्रेमचंद वेश्यावृत्ति के लिए जिम्मेदार शक्तियों को कठघरे में खड़ा करते है। दहेज, बेमेल विवाह, पति का संदेह, उसके क्रूर व्यवहार की परिणति वेश्या-जीवनमें दिखाकर इस सारे सामाजिक कारणों पर प्रहार करते हैं। भोली और सुमन अनेकानेक अवसर पर समाज के दोहरे मानदंड को खोलती हैं।

१४

प्रश्नोत्तर

प्रश्न ४ सेवासदन उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए।

सेवासदन उपन्यास के मुख्य पात्र सुमन, गजाधर, कृष्णचंद्र, शांता, सदन, पद्मसिंह एवं विट्ठलदास हैं। ये सभी समाज की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। उपन्यास का पहला वाक्य शुरू होता है दारोगा कृष्णचंद के पश्चाताप से- "पश्चाताप के कड़वे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते है।" लेकिन लोग बुराइयों पर पछताते हैं, दारोगा कृष्णचंद्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे।"

यह वाक्य दारोगा कृष्णचंद्र की भलमनसाहत को व्यक्त करता है तो साथ ही समाज के नैतिक-पतन का भी संकेत करता है; जहाँ अच्छें और सच्चे लोग पछताने कों विवश हैं।

उपन्यास की प्रमुख पात्र सुमन जिसके जीवन-वृत्त को आधार बनाकर प्रेमचंद ने उपन्यास का नामकरण किया है वह माध्यम है- सामाजिक अपराध; धार्मिक-पाखंड, धन और धर्म के साँठ-गाँठ, नैतिक-मूल्यों के दोहरे मानदंडों को व्यक्त करने का।

इसी तरह शिक्षित वकील पद्मसिंह, सुमन के लिए वर के चयन हेतु शिक्षित युवकों द्वारा पिता की लालच-वृत्ति को सांस्कारिक जामा देने वाले युवक समाज-सेवी विट्ठलदास, महत्त्वाकांक्षी युवक-सदन, वेश्या-भोली एवं शांता के माध्यम से प्रेमचंद समाज के व्यापक मुद्दों को उठाते हैं। ''सेवासदन'' में महन्त रामदास भी हैं, जिनका सारा कारोबार बांकेबिहारी के नाम पर चलता है। महन्त रामदास के माध्यम से प्रेमचंद तत्कालीन समाज के नियामक तत्व-धर्म व्यवस्था और नेताओं की असलीयत सामने लाते हैं । सेवासदन के कतिपय चर्चित पात्र इस तरह हैं-

१. दारोगा कृष्ण चंद्र-

कृष्णचंद्र एक ईमानदार पुलिस अधिकारी हैं। वे आधुनिक विचारों से प्रेरित एवं प्रभावित होते हुए स्वयं को प्रगतिशील बनाते हैं। परिवार के लिए सुख-सुविधाओं को जुटाना अपना कर्तव्य समझते हैं तथा अपनी पुत्रियों को शिक्षित कर उन्हें सम्मानपूर्ण दर्जा दिलाना चाहते हैं। यह वह दौर था जब देश और समाज में सुधार एवं सुधारवाद की एक आंधी सी आयी हुई थी। लोक तमाम रूढ़ियों, सामाजिक, विकृतियों से मुक्ति की कामना कर रहे थे। चारों ओर आदर्श की बयार थी। अतः दारोगा कृष्णचंद्र मानते थे कि शिक्षित बेटियों के विवाह में कोई रुकावट नहीं आएगी। दारोगा कृष्णचंद्र बेटियों की अल्पायु में विवाह के खिलाफ थे। अतः सुमन और

शांता दोनों को शिक्षित कर रहे थे। किंतु कृष्णकांत का भ्रम तब टूटता है जब वे सुमन के लिए एक योग्य वर ढूंढने निकलते हैं। उन्हें यह देखकर सदमा पहुँचता है कि विवाह को लोगों ने लेन-देन, सौदेबाजी का बाजार बना रखा हैं। वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है। छः महिनों के निरंतर प्रयास के बाद भी जब कृष्णचंद्र बेटी सुमन के लिए योग्य वर नहीं ढूंढ पाये तो उन्हें अपने आदर्शों और ईमानदारी पर अफसोस होता है। वे सोचते हैं- "यदि में पाप से न डरता तो आज भुझे यों ठोकरें न खानी पड़तीं।" कृष्णचंद्र अपनी पत्नी के समक्ष अपनी हार मानते हुए अपने माध्यम से जमाने के नैतिक पतन मूल्यहीनता को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं- "देख लिया, संसार में सन्मार्ग पर चलने का यह फल होता है। यदि आज मैने लोगों को लूट कर अपना घर भर लिया होता तो लोग मुझसे संबंध करना अपना सौभाग्य समझते; नहीं तो कोई सीधे मुँह बात नहीं करता है।" विवाह की मंडी में मोल-भाव की औकात उनकी थी नहीं और बेटी को वे किसी कंगाल के हाथ सौंपना नहीं चाहते थे अतः लाचार होकर रिश्वत की ठानते हैं-

"धर्म का मजा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख चुका। अब लोगों को खूब दबाऊँगा, खूब रिश्वतें लूँगा, यही अंतिम उपाय है।"

बूढ़े दरिद्र चेतन की हत्या का मामला आने पर कृष्णचंद्र को लगता है मानो "ईश्वर ने घर बैठे बैठाये सोने की चिड़िया उनके पास भेज दी।" तहकीकात के दौरान उन्हें रिश्वत के रास्ते रूपयों का ढेर एवं चिंता व्यधि से मुक्ति का मार्ग दीखता है; किंतु आत्मा के सर्वनाश के भय से दुविधा में पड़े मन को स्वयं ही तसल्ली देते हैं- "तुमसे जब तक निभ सका निबाहा। भोग-विलास के पीछे व्यर्थ नहीं किया, लेकिन जब देश, काल, प्रथा और अपने बंधुओं का लोभ तुम्हें कुमार्ग की ओर ले जा रहे हैं तो तुम्हारा दोष ? तुम्हारी आत्मा अब भी पवित्र है।"

मुख्तार एवं कृष्णचंद्र के प्रसंग के दौरान गंगाजलीका मौन प्रश्न अत्यंत मार्मिक ढंग से कलेजे को बेध जाता है। वह मानो पति से पूछती हो - "बचे या डूबे।"

इस रिश्वत-प्रसंग के माध्यम से प्रेमचंद तत्कालीन समाज में बढ़ते धन के बोलबाले का संकेत करते हैं। दारोगा कृष्णचंद्र जैसे लोग उस समाज में अपना अस्तित्व बनाये रखने में स्वयं को असहाय होते देख रहे थे। बेटी की जिम्मेदारी से मुक्त होने के लिए रिश्वत लेते हैं और "जन्मभर की नेकनामी।" गँवा बैठते हैं। पकड़े जाते हैं और जेल जाते हैं। लेकिन अपना अपराध स्वीकार कर मानो पाप-मुक्त होना चाहते हैं- "मैंने अपराध किया है और उसका कठोर से कठोर दण्ड मुझे दिया जाय। मेरा मुँह काला करके मुझे सारे कस्बे में घुमाया जाय।"

कृष्णचंद्र प्रायश्चित से अपने पाप धोना चाहते हैं। पत्नी को बेटी सुमन के विवाह में पैसे खर्च करने का अनुरोध करते हैं- "मुझे संतोष रहेगा कि मैं एक ऋण से मुक्त हो गया।"

जेल से मुक्त होकर आने के बाद वे मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाते हैं। बेटी का पतन उन्हें और निराश करता है और वे गंगा नदी में डूबकर अपनी जान देने से पहले बेटी सुमन को क्षमा कर देते हैं।

इस तरह ईमानदार दारोगा कृष्णचंद की त्रासद परिणिति के दिखाकर प्रेमचंद समाज से गायब होती नैतिकता, मानव-मूल्यों की दुखद अवनति प्रस्तुत करते हैं।

२. सुमन –

सुंदर, चंचल और अभिमानिन बालिका सुमन का चरित्र किशोरावस्था में लगभग दुगने उम्र के दुहाजू व्यक्ति से शादी हो जाने पर एक नया मोड लेता है। पिता के घर में वह लाड़-प्यार से पली थी। घर की जिम्मेदारियों काम-काज में उसकी रूचि नहीं थी। वह एक चंचल स्वभाव की चटोरी बालिका थी। उसे अच्छा खाने, उत्तम वस्त्र पहिनने की आदत थी। किंतु एक मामूली आमदनी-पंद्रह रुपये मात्र कमानेवाला पति उसकी इन कामनाओं को पूरा नहीं कर पाता। टोके जाने पर वह पति से चुराकर अपनी जिहा (याजिम) तृप्त करती है। पास-पड़ोस की स्त्रियों से वह अपने आपको विशिष्ट मानती है और रेश्मी साड़ियाँ पहनकर प्रदर्शन भी करती है। सुमन एक औसत स्त्री के रूप में सामने आती है। पति उसके लिए इंद्रिय-सुख, सुंदर आभूषण, उत्तम वस्त्रों, स्वादिष्ट भोजन का ज़रिया मात्र था।

पड़ोस में रहने वाली वेश्या-भोली का ठाटमय जीवन उसे जीवन का दूसरा झटका देता है। उसके बचपन के संस्कार, शिक्षा एवं शिक्षित व्यक्तियों के प्रति यहाँ तक कि 'धर्मात्मा' समझे जाने वाले लोगों के आचरण उसे आहत करते हैं। वह देखती है कि "लोक धन के घमण्ड में धर्म की परवाह नहीं करते।" ऐसे में पति की रोक-टोक उसे खलती है। वह पति से बहस करती है। सारे धन पतियों, धर्मात्माओं के साथ-साथ अपने पति गजाधर को भी भोली के मुज़रे में देखकर प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। मंदिर का जलसा; उसमें शमिल तथाकथित 'सम्य', 'सुशिक्षित', 'धर्मात्माओं' की उपस्थिति उसके धार्मिक संस्कार को चोट पहुँचाते हैं, वह सोचती है- ''जिसे मैं अपने धर्म से परास्त करना चाहती हूँ, यहाँ महात्माओं की सभा में, ठाकुरजी के पवित्र निवास स्थान में आदर और सम्मान का पात्र बनी हुई है और मेरे लिए खड़े होने की जगह नहीं।''

इस तरह का सामाजिक तिरस्कार, दोहरे मानदंड उसके जीवन की दिशा बदल देते हैं। वह भोली के साधारण रूप-रंग से अपनी तुलना करती है। उसके सामाजिक रुतवे की ओर आकर्षित होती है और भोली के साथ रहने लगती है। प्रेमचंद की टिप्पणी- ''स्त्री को कोई सहारा नहीं होता तो लज्जाहीन हो जाती है।'' सुमन के आगामी जीवन की जानकारी देती है- वह महाराजिन से 'सुमनबाई' बन जाती है। इस तरह अपने जीवन के आरंभ में कुछ भूलें करने का दुष्परिणाम सुमन झेलती है। गलती का एहसास होने पर वह विधवाश्रम में रहते हुए तपस्विनियों जैसा जीवन व्यतित करती है तथा अपने अनथक-सेवाभाव से सभी के दिलों में अपनी जगह बनातीहै। शांता के दरवाजे से बरात लौटालाने वाले सदन को फटकारती है, भूल-सुधार करवाती है; दोनों को सुखद गृहस्थाश्रम की ओर ले जाती है। उपन्यास को अंत में वेश्या-पुत्रियों की शिक्षा दीक्षा के लिए समर्पित होती है। अपनी सात्विक प्रवृत्तियों के सहारे शांता एवं पूर्व प्रेमी सदन की गृहस्थी में हाथ बंटाती है। लेकिन विवाहोपरांत शांता एवं सदन की उपेक्षा; सदन के माता-पिता के तानों से आहत होकर आत्महत्या करना चाहती है। स्वामी गजानंद की कुटी के द्वार पर पहुँचती है। गजानंद के उपदेश और परामर्श को मान कर वह सेवासदन नामक अनाथालय में सेवा-भार संभालती है।

इस तरह सुमन के आरंभिक जीवन के अवगुणों की दुखद परिणति होती है। इन दु:खद अनुभवों से गुजरते हुए सुमन भूल-सुधार का प्रयास करती है। अपने मानवीय गुणों की रक्षा करती है। वह चंचला, अभिमानिनी, आडम्बरप्रिय स्त्री से बदल कर परदुख-कातर स्त्री के रूप में उभरती है। जीवन की ठोकरें खाने के बाद सांस्कृतिक आस्थाओं को पुनर्जीवित करती है। सुमन की जीवन-यात्रा साधारण से असाधारण की यात्रा है। पतन से उत्थान की यात्रा। अपने इन्हीं गुणों के कारण सुमन 'सेवासदन' उपन्यास का प्राणतत्व बनती है, प्रमुख नायिका बनती है।

सुमन के चरित्रांकन में लेखक का स्त्री-विमर्श भी दृष्टत्व है। स्त्रियों के मौलिक स्वभाव; उनका मनोविज्ञान समझाते हुए लेखक स्त्री के प्रति समाज के गलत रुख की चर्चा करते हैं। स्त्री के स्नेहमयी, क्षमाशील, सहनशील स्वभाव की याद दिलाते हैं। सुमन के वेश्या जीवन में से प्रेमचंद ने सामाजिक मुद्दों को उठाया है। अनमेल विवाह, दहेज, नारी के आदर और समाज की समस्या की निमित्त है- सुमन, जिसके माध्यम से प्रेमचंदने वेश्यावृत्ति की मूल प्रेरक शक्तियों को कठघरे में खड़ा कर दिया है। प्रेमचंद ने विस्तार से दिखलाया है कि समाज के सदाचार के रक्षक वेश्या-वृत्ति को प्रज्रय ही नहीं देते, वेश्याओं को जन्म भी देते हैं। सुमन व्यापक फलक पर संघर्ष-कथा प्रस्तुत करती है। प्रेमचंद भारतीय परिवार को बड़ी जीवनी शक्ति मानते हैं। परिवार छोड़ने के दु:खद परिणाम और फिर उससे निकल आना; सुमन का एक क्रांतिकारी कदम है।

३. गजाधर अथवा गजानन्द-

गजाधर से गजानंद बने पात्र का चरित्र-चित्रण 'सेवासदन' उपन्यास के मंतव्य को रेखांकित, करनेवाला चित्रण है। गजाधर १५ रू. मासिक वेतन पाने वाला तीस वर्षिय दुहाज (विधुर) है। स्वयं से लगभग आधी आयु की सुमन से विवाह करने के बाद वह आत्महीनता का शिकार हो जाता है। माता-पिता के घर लाड-प्यार से पली सुमन से वह घर की जिम्मेदारियों की उम्मीद नहीं रखता। शुरू-शुरू में बाजार से पूरियां लाकर काम चलाया; चौका-बर्तन भी खुद किया। वह सुमन को प्रसन्न रखना चाहता था। किंतु दोनों की मनोवृत्तियों में आकाश-पाताल का अंतर था। गजाधर स्वभाव से कृपण थे तो सुमन अल्हड, और चटोरी। खुले हाथों खर्च करने से घर की स्थिति दयनीय होने लगी। आर्थिक अभाव के कारण दोनों में कटुता आती है। कारखाने के अतिरिक्त एक दूसरी दूकान पर हिसाब-किताब का काम करते है। सुमन की प्रदर्शन-प्रियता और पड़ोस की वेश्या-भोली के मेल-जोल से गजाधर नाराज होते हैं। सुमन को अपने शासनाधिकार में रखना चाहते हैं। वकील पद्मसिंह की पत्नी सुभद्रा से सखिभाव के नाते सुमन उनके यहां जान-आना शुरू करती है। एक दिन वकील पद्मसिंह के यहाँ मुज़रा में लेट हो जाने पर गजाधर उसे बर्दाश्त नहीं कर पाते। भोली से उसका मेल-जोल उन्हें खल रहा था और अब मुज़रा मोह ? गजाधर पत्नी-सुमन को घर से निकल जाने को कहते हैं।

एक पति के रूप में गजाधर औंसत पति हैं। पत्नी पर शासनाधिकार की चेतना एक सहज पुरूष-चेतना है। स्वभिमानी सुमन की प्रतिक्रिया गजाधर को आहत करती है। वह पद्मसिंह और सुमन की निंदा करते हैं। लेकिन पद्मसिंह द्वारा सुमन के निष्पाप रूप को जानने के बाद गजाधर-आत्मपरिताप से भर उठते हैं। प्रायश्चित स्वरूप संन्यास धारण करते हैं, वेश्या-कन्याओं के लिए शिक्षा एवं आश्रम की देख-रेख में स्वयं को लगा देते हैं। सुमन की बहन शांता

के विवाहार्थ १५०० रूपये देते हैं, कृष्णचंद से अपने अपराध और सुमन के निरपराध होने की बात बताते हैं; उन्हें आत्महत्या से रोकते हैं। आत्महत्या करने पर उतारू सुमन के पैरों में गिरकर क्षमा याचना करते हैं, उसे आत्महत्या करने से रोकते हैं। मानव जीवन की सार्थकता को ''सेवाधर्म'' में देखते हुए स्वयं वकील पद्मसिंह द्वारा संचालित सेवासदन नामक अनाथालय की व्यवस्था देखते हैं। अपनी गलती का एहसास हो जाने के बाद गजाधर से स्वामी गजानंद बनते हैं। सुमन को सेवा-भाव का महत्त्व समझाते हैं और वेश्या-कन्याओं को शिक्षित करने की जिम्मेदारी देते हैं।

इस तरह एक सामान्य, शंकालु वृत्ति के पति की निर्दयता और चंचल, विलास, प्रिय पत्नी की त्रासद अवस्था को दिखा कर प्रेमचंद अपने कथा की गहराई में जाते हैं। पति की शंकालु वृत्ति एवं पत्नी की अव्यावहारिक विलास-प्रियता के दुष्परिणाम के साथ ही प्रेमचंद घर-परिवार, समाज में आये दिन स्त्रियों के अपमान, उनके अभिमान के आहत-प्रसंगद्वारा स्त्री – पुरुष दोनों ही को उनकी भूल, का एहसास कराते हैं। सुमन के घर से चले जाने के बाद गजाधर एक मंदिर में पुजारी बन जाते हैं। मंदिर में आने वाले साधुओं के ज्ञान – धर्म से प्रभावित होकर अपने स्वार्थ, आलस्य एवं पुरुष स्वभाव पर अफसोस जाहिर करते हैं। अपनी भूलों के सुधार हेतु परमार्थ काम से जुड़ जाते है। सुमन के श्रद्धा-भाव, उसकी कर्तव्य-निष्ठा के माध्यम से प्रेमचंद स्त्रियों के नारी-सुलभ गुणों की चर्चा करते हैं। गजाधर अपराध बोध व्यक्त करते हुए जिस तरह सुमन से क्षमा-याचना करते हैं, गजाधर का व्यक्तित्व आदर्श-व्यक्तित्व बनकर उभरता हैं।

गजाधर से गजानंद बने पात्र का अस्तित्व मानवीय दुर्बलताओं का व्यक्तित्व है साथ ही भूल सुधार की संभावनाओं का भी।

१५

उपन्यास के प्रमुख पात्र

४. वकील पद्मसिंह :

वकील पद्मसिंह परोपकारी वृत्ति के सहृदय प्राणी हैं। उपन्यास के प्रायः सभी पात्रों से उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध है। वे एक आदर्श भाई हैं देवर हैं, चाचा हैं और सामाजिक धरातल पर पीड़ितों के संरक्षक। वकील पद्मसिंह एक ऐसे सुशिक्षित पात्र हैं जो पारंपरिक दुर्गुणों, दुष्प्रवृत्तियों का अंत करना चाहते हैं। सुधार का यह कार्य, वे परिवार एवं समाज दोनों धरातल पर करते है।

एक आदर्श अनुज के रूप में, वे बड़े भाई के उपकारों को भूलना नहीं चाहते बल्कि उसके ऐवज में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को कटिबद्ध हैं। भतीजा सदन के विवाह के समय उनके सामने वेश्या-नाच के प्रबंध की समस्या आती है। भाई मदन सिंह की नाराजगी को दूर करने हेतु पद्मसिंह गरीबों में कंबल बांटने का प्रस्ताव रखते हैं अथवा उस गांव में एक कुंआ खुदवा देने का प्रस्ताव रखते हैं। म्युनिसपैलिटी का चुनाव जीतने पर उनके मित्र भोली का मुजरा रखने का प्रस्ताव रखते हैं तो पद्मसिंह अपने सिद्धांत के टूटने की चिंता से ग्रस्त हो जाते हैं। पत्नी के सुझाव से वे मुजरा करवाने को तैयार होते हैं। उनके द्वारा आयोजित मुजरे को देखकर ही सुमन के जीवन का संघर्ष शुरू होता हैं। एक ओर वकील पद्मसिंह जैसे आदर्श व्यक्ति को अपने सिद्धांतों से डिगते देख वह विचलित होती है, दूसरी ओर इसी मुजरे से लौटने में देरी के कारण पति गजाधर नाराज होते हैं, घर से निकल जाने का आदेश देते हैं। अपनी सारी सहृयता एवं पर दुख-कातरता के बावाजूद विट्ठलदास द्वारा फैलाये जाने वाले अफवाह से वकील पद्मसिंह दुखी होते हैं और पत्नी सुभद्रा के शरण में आयी सुमन को घर से निकाल देते हैं। उनके घर से निकलने के बाद ही सुमन के जीवन में पतन का दौर शुरु होता है। वह वेश्या भोली के आश्रय में जाती है। पद्मसिंह स्वयं को सुमन के इस पतन का जिम्मेदार मानते हैं और अपराध बोध से भर उठते हैं। अपने इस अपराध का प्रायश्चित करने हेतु वे सुमन की मुक्ति के लिए ५०/- (पचास रूपए) मासिक गुजारा देना शुरू करते हैं। अपने भतीजे सदन का सुमन के दरबार में जाने की सूचना से वे दुखी होते हैं। सामाजिक स्तर पर नयी पीढ़ी को वेश्या-वृत्ति से बचाने के लिए वे वेश्याओं को नगर से दूर बसाने तथा उनके सुधार के कार्य में जी-जान से जुट जाते हैं। लोक निन्दा के भय से मुक्त होकर पद्मसिंह वेश्या उद्धार के कार्य में जुट जाते हैं। वेश्याओं को धर्म का मार्ग दिखाते हैं; उनकी बेटियों के लिए अनाथालय की स्थापना करते हैं।

इस तरह वकील पद्मसिंह एक नेक और रहम दिल पात्र हैं। शांता की बारात वापस आ जाने के बाद शांता उनसे. अपने उद्धार की प्रार्थना करती है। पद्मसिंह अपने बड़े भाई के मान-

सम्मान की खातिर उसे अपने यहां नहीं ला पाते लेकिन विधवाश्रम में ठहराते हैं। सुमन उन्हीं के हात संचालित सेवासदन में कार्य करती है लेकिन पद्मसिंह लज्जावश सेवासदन नहीं जाते। स्वयं को सुमन का अपराधी मानकर उससे बचना चाहते हैं। कृतज्ञ और आज्ञाकारी भाई के रूप में वे बड़े भाई भाभी के पसंद-नापसंद की चिंता करते हैं। शादी-ब्याह जैसे मौकों पर वेश्या-नाच जैसी कुप्रवृत्ति की जगह परोपकार; समाज-सुधार के कामों की सलाह देते हैं। गरीबों को कंबल बाँटने अथवा गांव में कुंआ खुदवा देने की सलाह देते हैं। पद्मसिंह के चरित्र में समाज-सुधार और मानवीय करूणा कूट कूटकर भरी हैं। हर किसी का दुःख बांटने को तत्पर रहते हैं; हरदिल अजीज बनने की कोशिश करते हैं। शुरू-शुरू में पारिवारिक तथा सामाजिक लोक-लाज की चिंता से हुइ गलतियों के बुरे परिणाम देखने के बाद वे स्वयं को सिध्दांतों के प्रति दृढ़ बनाते हैं; साहस जुटाते हैं और अशिक्षा अनैतिकता जैसे मानवीय दोष के निराकरण में जुट जाते हैं। व्यापक मानवतावादी विचारधारा का चुनाव करते हैं।

सदन :

उपन्यास के सामाजिक संदेश को प्रमाणित करने वाला पात्र है सदन। कतिपय समीक्षक सदन को इस उपन्यास का नायक मानने के पक्ष में है। प्रेमचंद की आदर्शो मुखी यथार्थ की सोच का साकार रूप है सदन। पं. मदनसिंह एवं मामा का इकलौता बेटा है सदन। लाड़ प्यार में हुए लालन पालन का उस पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लेखक के शब्दो में – "माँ-बाप का इकलौता बेटा– - - - - सदन बाल्य काल में ढ़ीठ और हठी लड़का था। व्यस्क होने पर आलसी, क्रोधी और बड़ा उद्दंड हो गया।"

अपने चाचा वकील पद्मसिंह के रहन-सहन के प्रति उसके मन में आकर्षण है। अपने इन्हीं शौख को पूरा करने के लिए वह माता-पिता को बिना बताये चाचा पद्मसिंह के यहां आ जाता है। शहर में आकर उसकी शौकीन मिजाजी और बढ़ जाती है। "गाँव के युवकों को शहर की हवा लग जाने" की उक्ति सदन के चरित्र पर पूर्णतया सटीक उतरती है। चाचा पद्मसिंह द्वारा शिक्षक का इंतजाम करने के बावजूद उसका मन पढने में नहीं लगता। वह मीना-बाजारके चक्कर लगाते रहता है। सदाचार की रक्षा करने का नैतिक बस उसमें नहीं है। वह दालमण्डी की युवतियों की ओर आकर्षित होता है; स्वयं को रसिया दिखाना चाहता है। पद्मसिंह से घोड़ा खरीदवाता है। जब से सुमन दालमंडी में दीखने लगी वह किसी न किसी बहाने उसके छज्जे के सामने ठहरता है, धीरे-धीरे उससे मिलने का निश्चय करता है। और उसके यहाँ जाना शुरू कर देता है। पिता से झूठ बताकर पैसे मंगाता है और उन पैसों से सुमन के लिए साड़ी खरीदता है। अपनी चाची के कंगन चुराकर भेंट करता है। सुमन के प्रबोधन से लज्जा महसूस करता है। किशोर एवं युवा वय के तमाम नकारात्मक यथार्थ अब आदर्श का रूक करते हैं। परिवार द्वारा शादी तय कर दिये जाने पर सिर्फ धुड़सवारी ही नहीं करता बल्कि शांता से मात्र इस कारण विवाह टूट जाने पर कि उसकी बडी बहन वेश्या है; अपनी भूल स्वीकार करता है। प्रायश्चित करता है और उसे पत्नी का दर्जा तथा सम्मान देता है। विवाहोपरांत सुमन उनके साथ रहती है किंतु उसके मन में कोई कुवासना नहीं जागती। वेश्या-वृत्ति के उन्मुलन संबंधी व्याख्यानों का उस पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और दालमंडी के सुधार की दिशा में कार्यरत होता है। सदन के मन में आत्म –सुधार की भावना जागती है।

अपने आरंभिक जीवन में सदन जितना विलास-प्रिय और अकर्मण्य था, उसके परवर्ती भाग में वह उतना ही अदिक कर्मठ हो जाता है। वह ठोकर लगकर सम्हल जाने वाले युवकों में से है। वह मल्लाहों का नेता बन जाता है और स्वयं नाव चलाने लगता है। अपना झोपड़ा बनाता है। अपने चाचा पद्मसिंह से कहा गया वाक्य सदन के सद्वृत्ति का परिचायक है। वह कहता है- "माता-पिता की आज्ञा से मैं अपनी जान दे सकता हूँ, जो उन्हीं की दी हुई है, लेकिन किसी निरपराध की गर्दन पर तलवार नहीं चला सकता। "

सदन के स्वभाव में कायापलट होता है । वह प्रेम का आनंद भोग करने में तन्मय हो जाता है। सुमन पर दया करते हुए उसे अपनी कुटीया में रखता है लेकिन उसके समीप नहीं जाता। स्वयं के परिश्रम से दिन-दूनी, तरक्की करता है। पुत्र के जन्म के बाद माता-पिता भी आकर मिलते हैं।

इस तरह उपन्यास के उत्तरार्ध्द में सदन का चरित्र सभी तरह से उत्तम चरित्र है। वह कृषकों के सुधार के लिए स्थापित संस्था में भी हाथ बँटाता है। गाँव का हठी, उच्छृंखल, उद्दण्ड सदन नगर में आकर सुमन के सम्पर्क में आता है। सुमन के उपदेशों के प्रभाव में आकर सरल, संयत, शांत तथा उदात्त हो जाता है। अपनी गलतियों का प्रायश्चित कराता है; स्वयं को आदर्श बनाने का हर संभव प्रयास करता है।

१६

संदर्भ सहित व्याख्या

प्रश्न १. पश्चाताप के कड़वे फल कभी-कभी सभी को चखने पड़ते हैं, लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं, दारोगा कृष्णचंद्र अपनी भलाइयों पर पढता रहे थे।

संदर्भ- प्रस्तुत वाक्य उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास 'सेवासदन' का प्रथम वाक्य है। इस प्रथम वाक्य के माध्यम से उन्होंने पाठकों के हृदय में एक कौतूहल जाग्रत कर दिया है कि दारोगा कृष्णचंद्र के पश्चाताप का कारण क्या था? यह वाक्य एक ओर कृष्णचंद्र के ईमानदार चरित्र की जानकारी देता है तो दूसरी ओर आज की भ्रष्ट व्यवस्था का संकेत भी करता है।

व्याख्या-पश्चाताप मनुष्य की नियति का हिस्सा है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कभी न कभी पछतावा करना पड़ता है। पछतावा का संबंध अनिवार्य रूप से गलतियों, भूलों अथवा अपराध से होता है। दारोगा कृष्णचंद्र जीवन के प्रति नैतिक दृष्टि को महत्त्व देते हैं। पुलिस जैसे भ्रष्ट; रिश्वतखोर लेकर विभाग में काम करते हुए भी उन्होंने पचीस सालों तक स्वयं को ईमानदार बनाये रखा था। कभी कोई गलत काम नहीं किया । किंतु बड़ी बेटी सुमन के विवाह के समय जब उन्होंने लोगों के व्यवहार का दोगलापन देखा, करनी और कथनी का फर्क देखा तो वे आहत हो उठे। बेटी का विवाह एक ज़िम्मेदारी थी; उसे वह किसी कंगाल के हाथ सौंप नहीं सकते थे और योग्य वर बिना दहेज के मिलना असंभव था। ऐसे में दारोग विवश होते हैं; भ्रष्ट दुनियादरी के भ्रष्टाचार उनके जीवन भर की समस्या, निष्ठा, ईमानदारी की मानो परीक्षा लेते हैं। योग्य वर का मोल-भाव उन्हें आहत करता है। शिक्षित लोगों की बौद्धिक चतुराई देखकर; उनके सामने अपनी नैतिक हार की संभावना दारोगा कृष्णचंद्र के मन को पश्चाताप से भरता है। पहलीबार उन्हें नेकनीयती पर अफसोस होता है। वे सोचते हैं "आज से मैं भी वही करूँगा जो सब लोग करते हैं।" नहीं चाहते हुए भी अपनी आत्मा के सर्वनाश की लाचारी से वे पछता रहे थे।

इस तरह इस एक वाक्य के माध्यम से प्रेमचंद आज की भ्रष्ट व्यवस्था में दारोगा कृष्णचंद जैसे लोगों की लाचारगी व्यक्त करते हैं। सच्चाई और ईमानदारी पर दारोगा कृष्णचंद्र का पश्चाताप एक ओर कृष्णचंद्र के ईमानदार चरित्र पर प्रकाश डालता है तो दूसरी ओर समाज – व्यवस्था के भ्रष्टाचार पर भी।

प्रश्न २ अंगरेजी शिक्षा ने लोगों को उदार बना दिया है।

संदर्भ- प्रस्तुत वाक्य मुंशी प्रेमचन्द के प्रख्यात उपन्यास "सेवासदन" के पॉचवे अध्याय से लिया गया है। समाज के भले-बुरे सभी लोगों को वेश्या भोली के जलसे में देखकर सुमन को अचंभा होता है। समाज में हीन-दृष्टि से देखी जानेवाली वेश्या के दरवाजे पर भले लोगों के जमघट के प्रति वह अपने पति गजाधर से प्रश्न करती है। सुमन के प्रश्न के जवाब में गजाधर पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता के कुप्रभाव की बात बताता है।

व्याख्या-यह वाक्य गजाधर अपनी पत्नी सुमन से कहता है। एक वेश्या के दरवाजे पर अच्छे लोगों का जमघट देखकर सुमन परेशान होती है। वेश्याओं की सामाजिक स्थिति पर अपने पति से चर्चा करती है। पती गजाधर, सुमन को अँगरेजी शिक्षा के प्रभाव में आए समाज के खुलेपन, बदलाव की बात बताता है। अँगरेजी शिक्षा का अनिवार्य प्रभाव लोगों के चरित्र पर पड़ता है। आत्मा की ग्लानि को लोग "अंगरेजों की प्रगतिशीलता" की आड़ लेकर दबा लेते हैं। अंगरेजी शिक्षा के रास्ते आयी इस अपसंस्कृति से प्रेमचंद दुखी हैं। जबान की गुलामी को वे असली गुलामी मानते थे। भाषा अपने साथ अपनी संस्कृति लेकर आती ही है। अतः त्याग, संयम, मर्यादा-धर्म में आती गिरावट पर प्रेमचंद अपनी व्यथा को गजाधर की व्यंग्य-वाणी का जामा देते हैं। लोगों के सामाजिक जीवन में आयी अभद्रता, ऐय्याशी को "उदारे" कहकर व्यंग्यांकित करते हैं। कटु सत्य को हँस कर पचाना आसान होता है। अतः गजाधर अपनी पत्नी सुमन से उपरोक्त वाक्य कहते हैं।

वास्तव में यह वाक्य भारतीय संस्कृति में निरंतर आ रही गिरावट की अभिव्यक्ति है। सामाजिक मान-मर्यादा, संयम के प्रति लोगों के आचरण में आ रहे अधोमुखी, पतनशील प्रवृत्ति पर प्रहार हैं इसमें

प्रश्न ३ वे दया और धर्म के सागर हैं। इस जीवन में उनसे उऋण नहीं हो सकती।

संदर्भ- प्रस्तुत वाक्य प्रख्यात उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास "सेवासदन" के इल्कीसवें अध्याय से लिया गया है। सुमन वकील पद्मसिंह के प्रति अपनी गलत धारणा और कटुता को मिटाते हुए, उनके बड़पन की तारीफ करते हुए यह वाक्य विट्ठलदास से कहती है। वकील पद्मसिंह जैसे नीर-क्षीर विवेकी पुरूष ने त्यक्ता सुमन को अपने घर में आश्रय देने से इन्कार कर दिया और उसे अपने घर से निकल जाने का आदेश दिया। सुमन पद्सिंह को अपने पतन का जिम्मेदार मानती थी; किंतु विट्ठलदास द्वारा पद्मसिंह की उदात्त व्यग्रता को सुनकर स्वयं को दोषी मानती है और यह उद्गार व्यक्त करती है।

व्याख्या-पतिद्वारा प्रताडित सुमन वकील पद्मसिंह से इंसानियत की उम्मीद रखती थी किंतु पद्मसिंह जब सामाजिक अफवाह से डर कर सुमन को अपने घर में आश्रय नहीं देते तो सुमन का मन उनके प्रति कटुता से भर गया था। लेकिन विट्ठलदास से यह जानकर कि सुमन ने वेश्या का जीवन स्वीकार कर लिया है। पद्मसिंह ग्लानि से भर उठते हैं। स्वयं को सुमन का अपराधी मानने लगते हैं और उसके पुनर्वास के लिए आर्थिक तंगी के बावजूद आजीवन ५० रूपये मासिक खर्च देने का संदेश विट्ठलदास के मार्फत भेजते हैं। सुमन पद्मसिंह की इस उदारता से अभिभूत हो

उठती है। उसके मन से पद्मसिंह के प्रति कटुता समाप्त हो जाती है। जिसे वह अपने पतन का जिम्मेदार मानती थी; अपना 'अपराधी' मानती थी; उसी पद्मसिंह की इंसानियत से परिचित होने के बाद वह पद्मसिंह को दया और धर्म का सागर कहती है। स्वयं को उनके ऋणोंतले दबी महसूस करती है। उन्हें अपना उद्धारक मानती है।

इस उद्धरण के माध्यम से लेखक प्रेमचन्द इंसानी अच्छाइयों के प्रति आश्वस्त करते हैं। वकील पद्मसिंह एवं सुमन दोनों कोही अपनी अपनी गलत धारणा के प्रति दुखी बताकर तथा दोनों ही के माध्यम से भूल-सुधार का संदेश देते हुए लेखक सामाजिक आदर्श के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। इंसानी कमज़ोरियों को परख कर उनसे निकल आने की प्रेरणा देते हैं।

प्रश्न ४ आदर या प्रेम-विहीन महिला महलों में भी सुख से नहीं रह सकती, पर मैं अज्ञान, अविद्या के अंधकार में पड़ा हुआ था।

संदर्भ- प्रस्तुत वाक्य मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' से लिया गया है। एक पति के रूप में गजाधर ने सुमन के साथ अत्याचार किया था। अपने इस आचरण का प्रायश्चित करते हुए गजाधर; गजानंद नाम से अनाथालय में वेश्या-कन्याओं की देख-रेख करते हैं। दूसरी और सुमन अपने बुरे कर्मों के प्रति, अपनी विलास लालसा के प्रतिदु:खी होकर मुक्ति की कामना से व्यग्र हो उठती है। स्वप्न में उसे स्वामी गजानंद दीखते हैं और वह वैचारिक ऊहा-पोह में स्वामी गजानंद की कुटीया में पहुँचती है। स्वामी गजानंद भी उस समय स्वप्न में सुमन को 'सेवा-धर्म' का उपदेश दे रहे थे। इस उपदेश के मूल में गजाधर नामक पुरूष-पति की ज्यादतियाँ हैं, स्त्री का अपमान और उसके प्रति अपराध बोध है। गजानंद के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद स्त्री-संबंधी अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।

व्याख्या- मुंशी प्रेमचंद आदर्शोन्मुख यथार्थ के चितेरे रहे हैं। समाज में स्त्रियों की दशा एवं दिशा के प्रति सतत चिंतनशील थे। सेवासदन उपन्यास का तो मूल ही "स्त्री-अवस्था और उसकी मुक्ति कामना है।" प्रेमचंद की स्पष्ट मान्यता थी कि स्त्री स्वभाव से स्नेह, वात्सल्य, दया, क्षमा जैसे कोमल भावों की साम्राज्ञी होती है। सरल स्नेह, निरपेक्ष-वासत्सल्य का दान देते हुए वह अपने पुरुष-साथी से इसी की कामना भी करती है। किंतु पुरुष प्राय: उस पर विश्वास नहीं करते; उसे अपमान और अनादर ही देते हैं। प्रेमचंद इस कटु सामाजिक सच को स्वामी गजानंद के माध्यम से व्यक्त करते हैं। गजानंद मानते हैं कि स्त्री को मान-सन्मान, प्यार, अपनापन मिले तो वह झोपड़ी में भी सुखी रहते हुए सेवाभाव से समर्पित रहती है। यदि स्त्री को उसका प्राप्य: स्नेह, सम्मान, आदर नहीं मिलता तो वह महलों के सुख-साधन के बीच पाकर भी सुखी नहीं रह पाती। गजानंद सुमन कोअपमानित करने के प्रति अपराध भाव से भर उठते हैं। स्वयं को अज्ञानी और अविद्या का शिकार मानते हैं। गजानंद के माध्यम से लेखक स्त्री-पुरुष के सामाजिक सह-अस्तित्व के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हैं।

इस तरह गजानंद स्त्री के प्रति लेखक मुंशी प्रेमचंद के विचारों पर प्रकाश डालते हैं। स्त्री-अवहेलना के प्रति लेखकीय सरोकारों की चर्चा करते हैं। इंसानी कमज़ोरी के प्रति विवेक का अलख जगाते हुए आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

टिप्पणी-

१) गंगाजली-

गंगाजली दारोगा कृष्णचंद्र की पत्नी तथा उपन्यास की नायिका सुमन की मां का नाम है। वह सती-साध्वी स्त्री थी। चतुर तथा व्यावहारिक स्त्री थीं। अपनी औकात के हिसाब से ही खर्च करने में विश्वास करती थीं। दारोगा कृष्णचंद बच्चियों को शिक्षित एवं सुखी रखने हेतु सुविधाएं जुटाते तो गंगाजली लड़कियों के विवाह के खर्च एवं जिम्मेदारी की याद दिलाती। गंगाजली का चरित्र एक औसत स्त्री का चरित्र है। वह एक समर्पित पत्नी एवं माँ है। रिश्वतकांड में दारोगा कृष्णचंद्र के पकड़े जाने पर वह पति के मना करने के बावजूद उनके लिए वकील का इंतजाम करती है। भाई उमानाथ द्वारा अधेड़ उभ्र के दुआह (विधुर) मात्र पंद्रह रूपए की नौकरी करने वाले गजाधर का नाम सुनकर वह चिंतित और व्यथित होती है। दामाद को देखकर वह रो पडी; उसे लगा मानो किसी ने बेटी सुमन को कुएँ में डाल दिया। एक औसत भारतीय माँ एवं पत्नी की चिंता गंगाजली की चिंता है। पति की परेशानियों से वह चिंतित होती है, मानो पूछ रही हो कि बचे या डूबे ? पति के जेल जाने के बाद लाचारी में मायके जाना उसे खलता है, लेकिन वह लाचार है। रिश्वत के पैसे उसने कृष्णचंद्र को सजा से मुक्त कराने हेतु मुकदमे में फूंक दिए। वर की तलाश में भाई उमानाथ की भाग-दौड़ उसे अपराध बोध से भरती है। एक ओर बेटी के भविष्य की चिंता, पति एवं बेटी के सपनों की चिंता दूसरी ओर विपरीत परिस्थितियों की लाचारगी। दामाद की उम्र सुमन से लगभग दुगुनी होना, मात्र पंद्रह रूपयों की नौकरी और किराए का घर उसे व्यथित करते हैं। लेकिन वह परिस्थितियों को स्वीकार करती है स्वयं को सहज बनाए रखती है।

२. शांता-

शांता दारोगा कृष्णचंद की दूसरी बेटी है। बड़ी बेटी सुमन चंचल और अभिमानी थी; शांता भोली, गंभीर एवं सुशील। दोनों बहनों की सोच एवं स्वभाव में अंतर तथा उनके जीवन के अंतर को दिखा कर प्रेमचंद जीवन में सही सोच, धीर-गंभीर सूझ-बूझ के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। सुमन अपनी चंचलता, स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान को सर्वोपरि मानती है। पति के न चाहने पर भी पड़ोस की वेश्या भोली से मेल जोल बढ़ाती है जबकि शांता का स्वभाव एकदम विपरीत है। दरवाजे से बारात के लौट जाने पर वह हाय-तौबा नहीं मचाती न स्वयं को अपराध-भाव से भरती है। उसने बारात लेकर आए सदन को मन से पति मान लिया था। अतः उसी को अपना पति मानती है। मामा उमानाथ तथा अन्य लोगों द्वारा उसका विवाह कहीं और किए जाने की तैयारी से वह चिंतित होती है और सदन के बड़े भाई वकील पद्मसिंह को विनय भरा पत्र लिखती है। उन्हें धर्म पिता का दर्जा देते हुए एक सप्ताह के अंदर लिबा जाने का आग्रह करती है-

''पिताजी गंगा में डूब गये। यहाँ आप लोगों पर मुकदमा चलने का प्रस्ताव हो रहा है। मेरे पुनर्विवाह की बातचीत हो रही है। शीघ्र सुधि-लीजिए। एक सप्ताह तक आपकी राह देखूंगी। उसके बाद फिर आप इस अबला की पुकार न सुनेंगे।''

बिदाई के समय वह मामी के गले लगकर रोयी। मामी उमानाथ के पैरों से लिपट बेटियों का कपड़े-गहने देने एवं तीज-त्यौहार पर बुलाने की बात करते हुए स्वयं के लिए मात्र दो अक्षरों का पत्र लिखते रहने की बिनती करती है।

वकील पद्मसिंह बड़े भाई के डर से शांता को घर नहीं ले जा पाते वे उसे सुमन के आश्रम में पहुँचाते हैं। सुमन के मन का अपराध बोध देखकर शांता एक बार पुनः अपने धीर-गंभीर स्वभाव का परिचय देती है, सुमन को सहज बनाने की कोशिश करती है।

शांता के इस सुझ-बुझ और समझदारी की सुखद, परिणिति दिखा कर प्रेमचंद मानव स्वभाव एवं उसके जीक का अनिवार्य संबंध दिखाते हैं। ''जैसी करनी वैसी भरनी'' का जीता-जागता प्रमाण है शांता।

शांता एक भरे-पूरे परिवार की सदस्य बनती है। पति के साथ-साथ सास-ससुर की स्वीकृति भी अंततः उसे मिलती है।

सेवासदन उपन्यासके संभावित अवतरण

१) संदर्भ सहित व्याख्या-

''जन्म-भर निर्लोभ रहने के बाद इस समय अपनी आत्मा का बलिदान करने में दरोगाजी को बड़ा दुख हो रहा था।''

२) ''भोली क सामने केवल धन ही सिर नहीं झुकाता, धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है।''

३) ''जब हिंदू जाति को खुद ही लाज नहीं है तो फिर हम जैसी अबलाएँ उसकी रक्षा कहाँ तक कर सकती हैं?''

४) ''इस उदासीनता में मलिनता न थी, वरन् एक प्रकार का संयम था, उसमें त्याग और विचार आभासित हो रहा था।''

५) ''मुझ जैसा दुष्ट, दुरात्मा मनुष्य उसके योग्य न था।''

संदर्भ सहित व्याख्या लिखते समय उपन्यास का नाम, लेखक का नाम देते हुए पूछे गये अंश के संदर्भ को लिखना चाहिए। पूछा गया अवतरण किसने, किससे और किस उद्देश्य से कहा है, उसका संक्षिप्त परिचय देने के बाद व्याख्या लिखनी चाहिए।

प्रसंग को स्पष्ट समझा देने के बाद पूछे गए प्रसंग अथवा अवतरण संबंधी लेखक के उद्देश्य की चर्चा भी करनी चाहिए।

संभावित प्रश्न

१) सेवासदन की कथावस्तु पर संक्षप में प्रकाश डालिए।
२) ''शांता परंपरागत सती नारियों का प्रतिनिधित्व करती है।'' कथन से आप कितना सहमत हैं ?
३) पं. उमानाथ के चारित्रिक गुण-दोषों पर प्रकाश डालिए।
४) सेवासनप के स्त्री-पात्रों पर प्रकाश डालिए।
५) सेवासदन में अभिव्यक्त धार्मिक एवं सामाजिक पक्षों की चर्चा कीजिए।

वस्तु निष्ठ प्रश्न

१) सुमन की मां का नाम क्या था ?
२) दारोगा कृष्णचंद्र बेटियों के विवाह के लिए कैसा परिवार चाहते थे ?
३) महंत रामदास के यहाँ सारा कारोबार किसके नाम पर होता था ?
४) ठाकुर जी को किस अहीर से हार माननी पड़ी ?
५) लोग पद्मसिंह की सफलता के उत्सव के लिए क्या चाहते थे ?
६) पद्मसिंह को विनय भरा पत्र किसने लिखा ?
७) पद्मसिंह स्वयं के आश्रम सेवासदन में क्यों नही जाते थे ?
८) पद्मसिंह की पत्नी का नाम क्या था ?
९) शांता का विवाह किससे संपन्न हुआ ?
१०) सुभद्रा ने गीत से प्रसन्न होकर लड़कियों को इनाम में कितने रूपए दिए ?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

१) आपकी महाराजिन ——————— हो गयीं।
२) ——————— शहर की सभी सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण थे।
३) सुमन के ——————— का उत्तरदाता कौन है ?
४) लेकिन मैंने ———————को निकाला———————के कारण।
५) इस क्षेत्र से कठिन-से-कठिन समय भी तुम्हारा मन——————— न होगा।
६) कृष्णचन्द्र संसार से——————— हो गया था।
७) सच्ची हिताकांक्षा कभी ——————— नहीं होती।
८) मेरे——————— की बातचीत हो रही है।
९) शीघ्र——————— लीजिए।
१०) कोई———————कन्याँए होंगी।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों एवं रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए उपन्यासको मनोयोग से पढ़ना जरुरी है। सेवासदन एक शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। - डॉ. शशि मिश्रा.

प्रश्न-पत्र-नमूना

प्र. १ निम्नलिखित अवतरण की संदर्भ सहित व्याख्या लिखिए। (२)

अ) जन्म-भर निर्लोभ रहने के बाद इस समय अपनी आत्मा का बलिदान करने में दारोगाजी को बड़ा दुख होता था।

अथवा

इसी लजा ने, इसी उपहास के भय ने मुझे दूसरे की चेरी बना रख्खा है।

प्र. २ निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर लिखिए: (१२)

क) सेवासदन उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

अथवा

वकील पद्मसिंह एवं गजाधर का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत कीजिए।

प्र. ३ निम्नलिखित टिप्पणी लिखिए: (५)

१) शांता का चरित्र चित्रण

अथवा

सदन

प्र. ४ एक वाक्य में उत्तर लिखिए: (५)

१) गजाधर की आर्थिक स्थिति कैसी थी ?

२) गजाधर का घर किसने बिगाड़ा ?

३) पद्मसिंह ने किस डर से सुमन को अपने आश्रय से निकाल दिया ?

४) शांता के द्वार से बारात क्यों लौट गयी ?

५) शांता ने अपने उध्दार के उद्देश्य से किसकों पत्र लिखा ?

(टिपण्णी – एक वाक्य के उत्तर के स्थान पर रिक्त स्थान की पूर्ति करने को भी कहा जा सकता है)

❖❖❖❖